ग़बन

प्रेमचंद

●

हंस प्रकाशन,
इलाहाबाद

प्रकाशक	मुद्रक
हंस प्रकाशन	भार्गव प्रेस
इलाहाबाद	इलाहाबाद
२७ वाँ संस्करण	सर्वाधिकार
५००० अगस्त १९६०	सुरक्षित हैं

मूल्य रु० ५·००

ग़बन

१

बरसात के दिन हैं, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छायी हुई हैं। रह-रहकर रिम-झिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है; पर ऐसा मालूम हो रहा है, शाम हो गयी। आमों के बागों में झूला पड़ा हुआ है। लड़कियाँ भी झूल रही हैं और उनकी माताएँ भी। दो-चार झूल रही हैं, दो-चार झुला रही हैं। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। इस ऋतु में महिलाओं की बाल-स्मृतियां भी जाग उठती हैं। ये फुहारें मानों चिन्ताओं को हृदय से धो डालती हैं, मानो मुरझाये हुए मन को भी हरा कर देती हैं। सबके दिल उमंगों से भरे हुए हैं। धानी साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है।

इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला बन्द हो गया। छोटी-बड़ी सबों ने आकर उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना सन्दूक खोला और चमकती-चमकती चीजें निकाल कर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने थे, कच्चे लैस और गोटे, रंगीन मोजे; खूबसूरत गुड़ियां और गुड़ियों के गहने, बच्चों के लट्टू और झुनझुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आंखों वाली बालिका ने वह चीज पसन्द की, जो उन चमकती हुई चीजों में सबसे सुन्दर थी। वह फिरोजी रंग का एक चन्द्रहार था। मां से बोली—अम्मा; मैं हार लूंगी।

मां ने बिसाती से पूछा—बाबा, यह हार कितने का है?

बिसाती ने हार को रूमाल से पोंछते हुए कहा—खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहें दे दें।

माता ने कहा—यह तो बड़ा महंगा है। चार दिन में इस की चमक-दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिला कर कहा—बहू जी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायगा!

माता के हृदय पर इन सहृदयता से भरे हुए शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया।

बालिका के आनन्द की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनंद न होता। उसे पहन कर वह सारे गांव में नाचती फिरी। उसके पास जो बाल-सम्पत्ति थी, उसमें सबसे मूल्यवान्, सबसे प्रिय यही बिल्लौर का हार था।

लड़की का नाम जालपा था, माता का मानकी।

२

महाशय दीनदयाल प्रयाग के एक छोटे से गांव में रहते थे। वह किसान न थे पर खेती करते थे। वह जमींदार न थे पर जमींदारी करते थे। थानेदार न थे पर थानेदारी करते थे। वह थे जमींदार के मुख्तार। गांव पर उन्हीं की धाक थी। उनके पास चार चपरासी थे, एक घोड़ा, कई गायें-भैंसें। वेतन कुल पांच रुपये पाते थे, जो उनके तम्बाकू के खर्च को भी काफी न होता था। उनकी आय के और कौन से मार्ग थे, यह कौन जानता है! जालपा उन्हीं की लड़की थी। पहले उसके तीन भाई और थे; पर इस समय वह अकेली थी। उससे कोई पूछता—तेरे भाई क्या हुए, तो वह बड़ी सरलता से कहती—बड़ी दूर खेलने गए हैं! कहते हैं, मुख्तार साहब ने एक गरीब आदमी को इतना पिटवाया था कि वह मर गया था। उसके तीन वर्ष के अन्दर तीनों लड़के जाते रहे। तब से बेचारे बहुत सँभलकर चलते थे। फूँक-फूँक कर पांव रखते; दूध के जले थे, छांछ भी फूँक-फूँक कर पीते थे। माता-पिता के जीवन में और क्या अवलम्ब!

दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते, तो जालपा के लिये कोई-न-कोई आभूषण जरूर लाते। उनकी व्यावहारिक बुद्धि में यह विचार ही न आता था कि जालपा किसी और चीज से अधिक प्रसन्न हो सकती है। गुड़िया और खिलौने वह व्यर्थ समझते थे, इसलिए जालपा आभूषणों से ही खेलती थी, यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार, जो उसने बिसाती से लिया था, अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय ही नहीं हुई थी। गांव में कोई उत्सव होता

या कोई त्योहार पड़ता, तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसकी आंखों में जँचता ही न था।

एक दिन दीनदयाल लौटे तो मानकी के लिए एक चन्द्रहार लाये। मानकी को यह साध बहुत दिनों से थी। यह हार पाकर वह मुग्ध हो गई।

जालपा को अब अपना हार अच्छा न लगता। पिता से बोली—बाबूजी, मुझे भी ऐसा ही हार ला दीजिए।

दीनदयाल ने मुसकराकर कहा—ला दूँगा, बेटी!

'कब ला दीजिएगा?'

'बहुत जल्द।'

बाप के शब्दों से जालपा का मन न भरा। उसने माता से जाकर कहा—अम्माजी, मुझे भी अपना-सा हार बनवा दो।

मां—वह तो बहुत रुपयों में बनेगा बेटी!

जालपा—तुमने अपने लिए बनवाया है, मेरे लिए क्यों नहीं बनवातीं!

मां ने मुसकराकर कहा—तेरे लिए तेरी ससुराल से आएगा।

यह हार छः सौ में बना था। इतने रुपये जमा कर लेना दीनदयाल के लिए आसान न था। ऐसे कौन बड़े ओहदेदार थे। बरसों में कहीं यह हार बनने की नौबत आयी थी। जीवन में फिर कभी इतने रुपये आयेंगे इसमें उन्हें सन्देह था।

जालपा लजा कर भाग गयी; पर यह शब्द उसके हृदय में अंकित हो गए। ससुराल उसके लिए अब उतनी भयंकर न थी। ससुराल से चन्द्रहार आयगा, वहां के लोग उसे माता-पिता से अधिक प्यार करेंगे। तभी तो जो चीज ये लोग नहीं बनवा सकते, वह वहां से आएगी।

लेकिन ससुराल से न आए तो? उसके सामने तीन लड़कियों के विवाह हो चुके थे, किसी की ससुराल से चन्द्रहार न आया था। कहीं उसकी ससुराल से भी न आया तो? उसने सोचा—तो क्या माताजी अपना हार मुझे न दे देंगी? अवश्य दे देंगी।

इस तरह हंसते-हँसते सात वर्ष कट गए। और वह दिन भी आ गया, जब उसकी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होगी।

३

मुंशी दीनदयाल की जान-पहचान के आदमियों में एक महाशय दयानाथ थे—बड़े ही सज्जन और सहृदय। कचहरी में नौकर थे, और पचास रुपये वेतन पाते थे। दीनदयाल अदालत के कीड़े थे। दयानाथ को उनसे सैकड़ों ही बार काम पड़ चुका था। चाहते तो हजारों वसूल करते पर कभी एक पैसे के भी रवादार नहीं हुए। कुछ दीनदयाल के साथ ही उनका यह सलूक न था—यह उनका स्वभाव था। यह बात भी न थी कि वह बहुत ऊँचे आदर्श के आदमी हों; पर रिश्वत को हराम समझते थे! शायद इसलिए कि वह अपनी आँखों से इसके कुफल देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था, किसी को संतान से हाथ धोते; किसी को कुव्यसनों के पंजे में फँसते; उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने रिश्वत लेकर चैन किया हो। उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि हराम की कमाई हराम ही में जाती है। यह बात वह कभी न भूलते।

इस जमाने में ५०) की भुगत ही क्या! पांच आदमियों का पालन बड़ी मुश्किल से होता था। लड़के अच्छे कपड़ों को तरसते, स्त्री गहने को तरसती पर दयानाथ विचलित न होते थे। बड़ा लड़का दो ही महीने तक कालेज में रहने के बाद पढ़ना छोड़ बैठा। पिता ने साफ कह दिया—मैं तुम्हारी डिगरी के लिए सबको भूखा और नंगा नहीं रख सकता। पढ़ना चाहते हो, तो अपने पुरुषार्थ से पढ़ो। बहुतों ने किया है, तुम भी कर सकते हो। लेकिन रमानाथ में इतनी लगन न थी। इधर दो साल से वह बिलकुल बेकार था। शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता और मां और छोटे भाइयों पर रोब जमाता। दोस्तों की बदौलत शौक पूरा होता रहता था। किसी का चेस्टर मांग लिया और शाम को हवा खाने निकल गये। किसी का पंप-शू पहन लिया, किसी की घड़ी कलाई पर बांध ली। कभी बनारसी फैशन में निकले, कभी लखनवी फैशन में। दस मित्रों ने एक-एक कपड़ा बनवा लिया, तो दस सूट बदलने का साधन हो गया। सहकारिता का यह बिल्कुल नया उपयोग था। इसी युवक को दीनदयाल ने जालपा के लिए पसन्द किया। दयानाथ शादी नहीं करना चाहते थे। उनके पास न रुपये थे और न एक नये परिवार का भार उठाने की हिम्मत; पर जागेश्वरी ने त्रिया-हठ से

काम लिया और इस शक्ति के सामने पुरुष को झुकना पड़ा। जागेश्वरी बरसों से पुत्र वधू के लिए तड़प रही थी। जो उसके सामने बहुएँ बनकर आयीं, वे आज पोते खिला रही हैं, फिर दुखिया को कैसे धैर्य होता? वह कुछ-कुछ निराश हो चली थी। ईश्वर से मनाती थी कि कहीं से बात आए। दीनदयाल ने सन्देशा भेजा, तो उसको आंखें-सी मिल गयीं। अगर कहीं यह शिकार हाथ से निकल गया, तो फिर न जाने कितने दिनों और राह देखनी पड़े। कोई यहां क्यों आने लगा। न धन ही है, न जायदाद, लड़के पर कौन रीझता है, लोग तो धन देखते हैं। इसलिए उसने इस अवसर पर सारी शक्ति लगा दी और उसकी विजय हुई।

दयानाथ ने कहा—भाई, तुम जानो तुम्हारा काम जाने। मुझमें समाई नहीं है। जो आदमी अपने पेट को फिक्र नहीं कर सकता, उसका विवाह करना मुझे तो अधर्म-सा मालूम होता है। फिर रुपये की भी तो फिक्र है। एक हजार तो टीमटाम के लिए चाहिए, जोड़े और गहने के लिए अलग। (कानों पर हाथ रखकर) न बाबा! यह बोझ मेरे मान का नहीं!

जागेश्वरी पर इन दलीलों का कोई असर न हुआ। बोली—वह भी तो कुछ देगा।

'मैं उससे मांगने तो जाऊँगा नहीं।'

'तुम्हारे मांगने की जरूरत ही न पड़ेगी। वह खुद ही देंगे। लड़की के ब्याह में पैसे का मुँह कोई नहीं देखता। हाँ, मुकद्दर चाहिए, सो दीन-दयाल पोढ़े आदमी हैं। और फिर यही एक सन्तान है, बचाकर रखेंगे, तो किसके लिए?

दयानाथ को अब कोई बात न सूझी, केवल यही कहा—वह चाहे लाख दें चाहे एक न दें, मैं न कहूँगा कि दो, न कहूँगा कि मत दो। कर्ज मैं लेना नहीं चाहता और लूँ, तो दूँगा किसके घर से!

जागेश्वरी ने इस बाधा को मानो हवा में उड़ाकर कहा—मुझे तो विश्वास है कि वह टीके में एक हजार से कम न देंगे। तुम्हारे टीमटाम के लिए इतना बहुत है। गहनों का प्रबन्ध किसी सराफ से कर लेना। टीके में एक हजार देंगे तो क्या द्वार पर एक हजार भी न देंगे? वही

रुपये सराफ़ को दे देना। दो-चार सौ बाकी रहे, वह धीरे-धीरे चुक जायँगे। बच्चा के लिए कोई-न-कोई द्वार खुलेगा ही।

दयानाथ ने उपेक्षा-भाव से कहा—खुल चुका। जिसे शतरंज और सैर-सपाटे से फुरसत न मिले, उसे सभी द्वार बन्द मिलेंगे।

जागेश्वरी को अपने विवाह की याद आयी। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे; लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की फिक्र कैसी सिर पर सवार हो गयी थी। साल भर भी न बीतने पाया था कि नौकर हो गये। बोली—बहू आ जायगी, तो उसकी आंखें भी खुलेंगी, देख लेना। अपनी बात याद करो। जब तक गले में जूआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेलें हैं। जूआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर लाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।

जब दयानाथ परास्त हो जाते थे, तो अखबार पढ़ने लगते थे। अपनी हार को छिपाने का उनके पास यही साधन था।

४

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे, जो सीधों के साथ सीधे होते हैं, पर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं, शैतान हो जाते हैं। दयानाथ बड़ा-सा मुँह खोलते, हजारों की बातचीत करते, तो दीनदयाल उन्हें ऐसा चकमा देते कि वह उम्र भर याद करते। दयानाथ की सज्जनता ने उन्हें वशीभूत कर लिया। उनका विचार एक हज़ार देने का था; पर एक हजार टीके में दे आये। मानकी ने कहा—जब टीके में एक हजार दिया, तो इतना घर पर भी देना पड़ेगा। आएगा कहां से!

दीनदयाल चिढ़कर बोले—भगवान मालिक हैं। जब उन लोगों ने उदारता दिखायी और लड़का मुझे सौंप दिया, तो मैं भी दिखा देना चाहता हूँ कि हम भी शरीफ हैं और शील का मूल्य पहचानते हैं। अगर उन्होंने हेकड़ी जताई होती, तो अलबत्ता उनकी खबर लेता।

दीनदयाल एक हजार तो दे आये, पर दयानाथ का बोझ हल्का करने के बदले और भारी कर दिया। वह कर्ज से कोसों भागते थे। इस शादी में उन्होंने 'मियां की जूती मियां के सर' वाली नीति निभाने की ठानी थी; पर दीनदयाल की सहृदयता ने उनका संयम तोड़ दिया। वे सारे टीमटाम

नाच-तमाशे, जिनकी कल्पना का गला उन्होंने घोंट दिया था, बृहद् रूप धारण करके सामने आ गये। बँधा हुआ घोड़ा थान से खुल गया, उसे कौन रोक सकता है। धूमधाम से विवाह करने की ठन गयी। पहले जोड़े-गहने को उन्होंने गौण समझ रखा था, अब वही सबसे मुख्य हो गया। ऐसा चढ़ाव हो कि मड़वेवाले देखकर फड़क उठें। सबकी आंखें खुल जायँ। कोई तीन हजार का सामान बनवा डाला। सराफ़ को एक हजार के लिए एक सप्ताह का वादा हुआ तो उसने कोई आपत्ति न की। सोचा दो हजार सीधे हुए जाते हैं, पांच-सात सौ रुपये रह जायेंगे, वह कहां जाते हैं। व्यापारी की लागत निकल आती है, तो नफे को तत्काल पाने के लिए आग्रह नहीं करता। फिर भी चन्द्रहार की कसर रह गयी। जड़ाऊ चन्द्रहार एक हजार से नीचे अच्छा नहीं मिल सकता था। दयानाथ का जी तो लहराया कि लगे हाथ उसे भी ले लो, किसी को नाक सिकोड़ने की जगह तो न रहेगी, पर जागेश्वरी इस पर राजी न हुई।

बाजी पलट चुकी थी।

दयानाथ ने गर्म होकर कहा—तुम्हें क्या, तुम तो घर में बैठी रहोगी। मौत मेरी होगी, जब उधर के लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे।

जागेश्वरी—दोगे कहां से, कुछ सोचा है ?

दयानाथ—कम-से-कम एक हजार वहां मिल जायेंगे।

जागेश्वरी—खून मुँह लग गया क्या ?

दयानाथ ने शरमाकर कहा—नहीं-नहीं मगर आखिर वहां भी तो कुछ मिलेगा ?

जागेश्वरी—वहां मिलेगा तो वहां खर्च भी होगा। नाम जोड़े गहने से नहीं होता, दान-दक्षिणा से होता है।

इस तरह चन्द्रहार का प्रस्ताव रद्द हो गया।

मगर दयानाथ दिखावे और नुमाइश को चाहे अनावश्यक समझें, रमानाथ उसे परमावश्यक समझता था। बारात ऐसे धूमधाम से जानी चाहिए कि गांव भर में शोर मच जाय। पहले दूल्हे के लिए पालकी का विचार था। रमानाथ ने मोटर पर जोर दिया। उसके मित्रों ने इसका अनुमोदन किया, प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दयानाथ एकान्तप्रिय जीव थे,

न किसी से मित्रता थी, न किसी से मेलजोल । रमानाथ मिलनसार युवक था। उसके मित्र ही इस समय हर एक काम में अग्रसर हो रहे थे । जो काम करते, दिल खोलकर । आतिशबाजियां बनवाईं, तो अव्वल दर्जे की । नाच ठीक किया तो अव्वल दर्जे का, गाजे-बाजे भी अव्वल दर्जे के । दोयम या सोयम का वहां जिक्र ही न था । दयानाथ उसकी उच्छृंखलता देखकर चिंतित हो जाते थे, पर कुछ कह न सकते थे । क्या कहते ?

५

नाटक उस वक्त 'पास' होता है; जब रसिक समाज उसे पसन्द कर लेता है । बारात का नाटक उस वक्त पास होता है, जब राह चलते आदमी उसे पसन्द कर लेते हैं । नाटक की परीक्षा चार-पांच घंटे तक होती रहती है, बारात की परीक्षा के लिए केवल इतने ही मिनटों का समय होता है । सारी सजावट, सारी दौड़ धूप और तैयारी का निपटारा पांच मिनटों में हो जाता है । अगर सबके मुँह से 'वाह-वाह' निकल गया, तो तमाशा पास, नहीं फेल ! रुपया, मेहनत, फिक्र, सब अकारथ । दयानाथ का तमाशा पास, हो गया । शहर में वह तीसरे दर्जे में आता, गांव में अव्वल दर्जे में आया । कोई बाजों की घों-घों पों-पों सुनकर मस्त हो रहा था, कोई मोटर को आंखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था, कुछ लोग फुलवारियों के तख्ते देखकर लोट-लोट जाते थे । आतिशबाजी सबके मनोरंजन का केन्द्र थी । हवाइयाँ जब सन्न-से ऊपर जातीं, और आकाश में लाल, हरे, नीले, पीले कुमकुमे से बिखर जाते और जब चर्खियां छूटतीं और उनमें नाचते हुए मोर निकल आते, तो लोग मंत्र-मुग्ध से हो जाते थे । वाह, क्या कारीगरी है ।

जालपा के लिए इन चीजों में लेशमात्र भी आकर्षण न था । हां, वह वर को एक आँख देखना चाहती थी, वह भी सबसे छिपाकर; पर उस भीड़-भाड़ में ऐसा अवसर कहां । द्वारचार के समय उसकी सखियां उसे छत पर खींच ले गयीं और उसने रमानाथ को देखा। उसका सारा विराग, सारी उदासीनता मानों छूमन्तर हो गयी थी । मुँह पर हर्ष की लालिमा छा गयी । अनुराग स्फूर्ति का भंडार है ।

द्वारचार के बाद बारात जनवासे चली गयी । भोजन की तैयारियाँ होने लगीं । किसी ने पूरियां खायीं, किसी ने उपलों पर खिचड़ी पकायी ।

देहात के तमाशा देखनेवालों के मनोरंजन के लिए नाच-गाना होने लगा।

दस बजे सहसा फिर बाजे बजने लगे। मालूम हुआ कि चढ़ाव आ रहा है। बारात में हर एक रस्म डंके की चोट अदा होती है। दूल्हा कलेवा करने आ रहा है, बाजे बजने लगे। समधी मिलने आ रहा है, बाजे बजने लगे। चढ़ाव ज्योंही पहुँचा, घर में हलचल मच गयी। स्त्री, पुरुष, बूढ़े, जवान, सब चढ़ाव देखने के लिए उत्सुक थे। ज्योंही किश्तियाँ मंडप में पहुँचीं, लोग सब काम छोड़कर देखने दौड़े। आपस में धक्कम-धक्का होने लगा। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूखा जाता था, चढ़ाव आते ही प्यास भाग गयी। दीनदयाल मारे भूख-प्यास के निर्जीव से पड़े थे। यह समाचार सुनते ही सचेत होकर दौड़े। मानकी एक-एक चीज को निकाल-निकाल कर देखने-दिखाने लगी। वहाँ सभी इस कला के विशेषज्ञ थे। मर्दों ने गहने बनवाए थे, औरतों ने पहने थे, सभी आलोचना करने लगे। चूहेदन्ती कितनी सुन्दर है, कोई दस तोले की होगी। वाह! साढ़े ग्यारह तोले से रत्ती भर भी कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊँ! यह शेरदहाँ तो देखो, क्या हाथ की सफाई है! जी चाहता है कारीगर के हाथ चूम लें। यह भी बारह तोले से कम न होगा। वाह! कभी देखा भी है, सोलह तोले से कम निकल जाये तो मुँह न दिखाऊँ। हाँ, माल उतना चोखा नहीं है। यह कंगन तो देखो, बिलकुल पक्की जुड़ाई है, कितना बारीक काम है, कि आँख नहीं ठहरती। कैसा दमक रहा है। सच्चे नगीने हैं। झूठे नगीनों में यह आब कहाँ! चीज तो यह गुलूबंद है, कितने खूबसूरत फूल हैं! और उनके बीच के हीरे कैसे चमक रहे हैं! किसी बंगाली ने बनाया होगा! क्या बंगालियों ने कारीगरी का ठेका ले लिया है? हमारे देश में एक-से-एक कारीगर पड़े हुए हैं। बंगाली सुनार बेचारे उनकी क्या बराबरी करेंगे।

इसी तरह एक-एक चीज की आलोचना होती रही। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या?

मानकी ने रोनी सूरत बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया।

एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं आया!

दीनदयाल ने गम्भीर भाव से कहा—और सभी चीजें तो हैं; एक चन्द्रहार ही तो नहीं है।

उसी महिला ने मुँह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात और है।

मानकी ने चढ़ाव को सामने से हटाकर कहा—बेचारी के भाग में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।

इस गोलाकार जमघट के पीछे अँधेरे में, आशा और आकांक्षा की मूर्ति-सी जालपा भी खड़ी थी। और सब गहनों के नाम कान में आते थे, चन्द्रहार का नाम न आता था। उसकी छाती धक्-धक् कर रही थी। चन्द्रहार नहीं है क्या ? शायद सबके नीचे हो। इस तरह वह मन को समझाती रही। जब मालूम हो गया, चन्द्रहार नहीं है, तो उसके कलेजे पर चोट-सी लग गई। मालूम हुआ देह में रक्त की एक बूँद भी नहीं है। मानों उसे मूर्च्छा आ जायगी। वह लालसा जो सात वर्ष हुए उसके हृदय में अंकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया। वह हरा-भरा लहलहाता हुआ पौदा जल गया—केवल उसकी राख रह गयी। आज ही के दिन पर तो उसकी समस्त आशाएँ अवलम्बित थीं। दुर्दैव ने आज वह अवलम्ब भी छीन लिया। उस निराशा के आवेश में उसका ऐसा जी चाहने लगा कि अपना मुँह नोच डाले। उसका वश चलता तो वह चढ़ाव को उठाकर आग में फेंक देती। कमरे में एक आले पर शिव की मूर्ति रखी हुई थी। उसने उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसकी आशाओं की भाँति वह चूर-चूर हो गयी। उसने निश्चय किया कि मैं कोई अभूषण न पहनूँगी आभूषण पहनने से होता ही क्या है ? जो रूप विहीन हों, वे अपने को गहने से सजाएँ, मुझे तो ईश्वर ने यों ही सुन्दरी बनाया है। मैं गहने न पहन कर बुरी न लगूँगी। सस्ती चीजें उठा लाए, जिसमें रुपये खर्च होते थे, उसका नाम ही न लिया। अगर गिनती ही गिनानी थी, तो इतने ही दामों से इसके दूने गहने आ जाते !

वह उसी क्रोध में भरी बैठी थी, कि उसकी तीन सखियाँ आकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने समझा था, जालपा को अभी चढ़ाव की कुछ खबर नहीं है, जालपा ने उन्हें देखते ही आँखें पोंछ डालीं और मुस्कराने लगी।

राधा मुस्कराकर बोली—जालपा, मालूम होता है, तूने बड़ी तपस्या

की थी, ऐसा चढ़ाव मैंने आज तक नहीं देखा था। अब तो तेरी सब साध पूरी हो गयी ?

जालपा ने अपनी लम्बी-लम्बी पलकें उठाकर उसकी ओर ऐसे नेत्रों से देखा, मानों जीवन में अब उसके लिए कोई आशा नहीं है—हाँ बहन, सब साध पूरी हो गयी !

इन शब्दों में कितनी अपार मर्मान्तिक वेदना भरी हुई थी, इसका अनुमान तीनों युवतियों में कोई भी न कर सकीं ! तीनों कुतूहल से उसकी ओर ताकने लगीं, मानों उसका आशय उनकी समझ में न आया हो।

वासन्ती ने कहा—जी चाहता है, कारीगर के हाथ चूम लूँ।

शहजादी बोली—चढ़ाव ऐसा ही होना चाहिए कि देखनेवाले फड़क उठें।

वासन्ती—तुम्हारी सास बड़ी चतुर जान पड़ती हैं, कोई चीज नहीं छोड़ी।

जालपा ने मुँह फेरकर कहा—ऐसा ही होगा।

राधा—और तो सब कुछ है, केवल चन्द्रहार नहीं है।

शहजादी—एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन, उसकी जगह गुलूबन्द तो है।

जालपा ने वक्रोक्ति के भाव से कहा—हाँ, देह में एक आँख के न होने से क्या होता है ! और सब अंग होते ही हैं, आँखें हुई तो क्या, न हुई तो क्या !

बालकों के मुँह से गम्भीर बातें सुनकर जैसे हमें हँसी आ जाती है, उसी तरह जालपा के मुँह से यह लालसा-भरी हुई बातें सुनकर, राधा और वासन्ती अपनी हँसी न रोक सकीं। हाँ शहजादी को हँसी न आयी। यह आभूषण-लालसा उसके लिए हँसने की बात नहीं, रोने की बात थी। कृत्रिम सहानुभूति दिखाती हुई बोली—सब न जाने कहाँ के जंगली हैं कि और सब चीजें तो लाये, चन्द्रहार न लाये, जो सब गहनों का राजा है। लाला अभी आते हैं तो पूछती हूँ कि तुमने यह कहाँ की रीति निकाली है—ऐसा अनर्थ भी कोई करता है।

राधा और वासन्ती दिल में काँप रही थीं कि जालपा कहीं ताड़ न जाय। उनका बस चलता, तो शहजादी का मुँह बन्द कर देतीं, बार-बार उसे चुप

रहने का इशारा कर रही थीं; मगर जालपा को शहजादी का व्यंग, सम-वेदना से परिपूर्ण जान पड़ा। सजल नेत्र होकर बोली—क्या करोगी पूछकर बहन, जो होना था सो हो गया!

शहजादी—तुम पूछने को कहती हो, मै रुलाकर छोड़ूँगी। मेरे चढ़ाव पर कंगन नहीं आया था उस वक्त मन ऐसा खट्टा हुआ कि सारे गहनों पर लात मार दूँ। जब तक कंगन न बन गये, मैं नींद भर सोई नहीं।

राधा—तो क्या तुम जानती हो, जालपा का चन्द्रहार न बनेगा?

शहजादी—बनेगा तब बनेगा, इस अवसर पर तो नहीं बना। दस-पाँच की चीज तो नहीं, कि जब चाहा बनवा लिया, सैकड़ों का खर्च है। फिर कारीगर तो हमेशा अच्छे नहीं मिलते।

जालपा का भग्न हृदय शहजादी की इन बातों से मानों जी उठा, वह रुँधे कण्ठ से बोली—यही तो मैं भी सोचती हूँ बहन, जब आज न मिला तो फिर क्या मिलेगा!

राधा और वासन्ती मन-ही-मन शहजादी को कोस रही थीं और थप्पड़ दिखा-दिखाकर धमका रही थीं; पर शहजादी को इस वक्त तमाशे का मजा आ रहा था। बोली—नहीं, यह बात नहीं है जल्ली, आग्रह करने से सब कुछ हो सकता है। सास ससुर को बार-बार याद दिलाती रहना। बहनोई जी से दो-चार दिन रूठे रहने से भी बहुत कुछ काम निकल सकता है। बस, यही समझ लो कि घर वाले चैन न लेने पायें, यह बात हरदम उनके ध्यान में रहे। उन्हें मालूम हो जाय कि बिना चन्द्रहार बनाये कुशल नहीं। तुम जरा भी ढीली पड़ीं और काम बिगड़ा।

राधा ने हँसी को रोकते हुए कहा—इनसे न बने तो तुम्हें बुला लें, क्यों, अब उठोगी या सारी रात उपदेश ही करती रहोगी?

शहजादी—चलती हूँ, ऐसी क्या भगदड़ पड़ी है। हाँ, खूब याद आयी, क्यों जल्ली, तेरी अम्माँजी के पास बड़ा अच्छा चन्द्रहार है, तुझे न देंगी?

जालपा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्या कहूँ बहन, मुझे तो आशा नहीं है।

शहजादी—एक बार कहकर देखो तो, अब उनके कौन पहनने-ओढ़ने के दिन बैठे हैं।

जालपा—मुझसे तो न कहा जायगा।

शहजादी—मैं कह दूँगी।

जालपा—नहीं-नहीं, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। मैं जरा उनके मातृ-स्नेह की परीक्षा लेना चाहती हूँ।

वासंती ने शहजादी का हाथ पकड़कर कहा—अब उठेगी भी कि यहाँ सारी रात उपदेश ही देती रहेगी।

शहजादी उठी, पर जालपा रास्ता रोककर खड़ी हो गई और बोली—नहीं अभी बैठो बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

शहजादी—जब यह दोनों चुड़ैलें बैठने भी दें। मैं तो तुम्हें गुर सिखाती हूँ, और यह दोनों मुझ पर झल्लाती हैं। सुन नहीं रही हो, मैं भी विष की गाँठ हूँ।

वासंती—विष की गाँठ तो तू है ही।

शहजादी—तुम भी तो ससुराल से साल भर बाद आयी हो, कौन-कौन-सी चीजें बनवा लायीं?

वासंती—और तुमने तीन साल में क्या बनवा लिया?

शहजादी—मेरी बात छोड़ो, मेरा खसम तो मेरी बात ही नहीं पूछता।

राधा—प्रेम के सामने गहनों का कोई मूल्य नहीं।

शहजादी—तो सूखा प्रेम तो तुम्हीं को फले!

इतने में मानकी ने आकर कहा—तुम तीनों यहाँ बैठकर क्या कर रही हो? चलो, वहां लोग खाने आ रहे हैं।

तीनों युवतियां चली गयीं। जालपा माता के गले में चन्द्रहार की शोभा देखकर मन-ही-मन सोचने लगी—गहनों से इनका जी अब तक नहीं भरा।

६

महाशय दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गये थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया लेकिन वहां से जो कुछ मिला, वह सब नाच-तमाशे, नेग-चार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये खर्च किये? इसकी जरूरत ही क्या थी? ज्यादा-से-ज्यादा लोग यही कहते—महाशय बड़े कृपण हैं। इतना सुन लेने में क्या हानि थी? मैंने गांव वालों को तमाशा

दिखाने का ठीका तो नहीं लिया था। यह सब रमा का साहस है, उसी ने सारे खर्च बढ़ा-बढ़ाकर मेरा दिवाला निकाल दिया। और सब के तक़ाजे तो दस-पांच दिन टल भी सकते थे, पर सराफ़ किसी तरह न मानता था। शादी के सातवें दिन उसे एक हजार रुपये देने का वादा किया था। सातवें दिन सराफ़ आया; मगर यहाँ रुपये कहाँ थे ? दयानाथ में लल्लो-चप्पो की आदत न थी; मगर आज उन्होंने चकमा देने की खूब कोशिश की। किस्त बांधकर सब रुपये छः महीने में अदा कर देने का वादा किया। फिर तीन महीने पर आये; मगर सराफ़ भी एक ही घुटा हुआ आदमी था, उसी वक्त टला जब दयानाथ ने तीसरे दिन बाकी रकम की चीजें लौटा देने का वादा किया, और यह भी उसकी सज्जनता ही थी। वह तीसरा दिन भी आ गया, और अब दयानाथ को अपनी लाज रखने का कोई उपाय न सूझता था। कोई चलता हुआ आदमी शायद इतना व्यग्र न होता, हीले-हवाले करके महाजन को महीनों टालता रहता; लेकिन, दयानाथ इस मामले में अनाड़ी थे।

जागेश्वरी ने आकर कहा—भोजन कब से बना ठंडा हो रहा है। खाकर तब बैठो।

दयानाथ ने इस तरह गर्दन उठायी, मानो सिर पर सैकड़ों मन का बोझ लदा हुआ है। बोले—तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है।

जागेश्वरी—भूख क्यों नहीं है, रात भी तो कुछ नहीं खाया था ? इस तरह दाना पानी छोड़ देने से महाजन के रुपये थोड़े ही अदा हो जायँगे।

दयानाथ—मैं सोचता हूँ, उसे आज क्या जवाब दूँगा ? मैं तो विवाह करके बुरा फँस गया ? बहू कुछ गहने लौटा तो देगी ?

जागेश्वरी—बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी आशा रखते हो। उसकी टेक है कि जब तक चन्द्रहार न बन जायगा, कोई गहना ही न पहनूंगी। सारे गहने सन्दूक में बन्द कर रखे हैं। बस, वही एक बिल्लौरी हार गले में डाले हुए है। बहुएँ बहुत देखीं पर ऐसी बहू न देखी थी। फिर कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आई बहू, उससे गहने छीन लिए जायँ।

दयानाथ ने चिढ़कर कहा—तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो,

बुरा मालूम होता है, तो लाओ एक हजार निकाल कर दे दो, महाजन को दे आऊँ, देती हो ? बुरा मुझे खुद मालूम होता है; लेकिन उपाय क्या है ? गला कैसे छूटेगा ?

जागेश्वरी—बेटे का ब्याह किया है कि ठट्ठा है ? शादी-ब्याह मे सभी कर्ज लेते हैं, तुमने कोई नयी बात नहीं की। खाने-पहनने के लिये कौन कर्ज़ लेता है। धर्मात्मा बनने का कुछ फल मिलना चाहिये या नहीं ? तुम्हारे ही दर्जे पर सत्यदेव हैं, पक्का मकान खड़ा कर दिया, जमींदारी खरीद ली, अपनी बेटी के ब्याह में कुछ नहीं तो पांच हजार तो खर्च किये ही होंगे !

दयानाथ—जभी दोनों लड़के भी तो चल दिये ?

जागेश्वरी—मरना-जीना तो संसार की गति है। लेते हैं वह भी मरते हैं, नही लेते वह भी मरते हैं। अगर तुम चाहो तो छः महीने में सब रुपये चुका सकते हो।

दयानाथ ने त्योरी चढ़ाकर कहा—जो बात जिन्दगी भर नहीं की, वह अब आखिरी वक्त नहीं कर सकता। बहू से साफ-साफ कह दो, उससे परदा रखने की जरूरत ही क्या है, और परदा रह ही कै दिन सकता है ? आज नहीं तो कल उसे सारा हाल मालूम हो ही जायगा। बस, तीन-चार चीजें लौटा दे, तो काम बन जाय। तुम उससे एक बार कहो तो ?

जागेश्वरी झुँझलाकर बोली—उससे तुम्हीं कहो, मुझ से तो न कहा जायगा।

सहसा रमानाथ टेनिस रैकेट लिये बाहर से आया। सफेद टेनिस शर्ट था, सफेद पतलून, कैनवस का जूता—गोरे रंग और सुन्दर मुखाकृति पर इस पहनावे ने रईसों की शान पैदा कर दी। रूमाल में बेले के गजरे लिये हुए था। उससे सुगन्ध उड़ रही थी। माता-पिता की आँखें बचाकर वह जीने पर जाना चाहता था, कि जागेश्वरी ने टोका—इन्ही के तो सब कांटे बोये हुए हैं, इनसे क्यों नहीं सलाह लेते ? (रमा से) तुमने नाच-तमाशे में बारह-तेरह सौ रुपये उड़ा दिये, बतलाओ सराफ़ को क्या जवाब दिया जाय ? बड़ी मुश्किलों से कुछ गहने लौटाने पर राजी हुआ, मगर बहू से गहने माँगे कौन ? यह सब तुम्हारी ही करतूत है।

रमानाथ ने इस आक्षेप को अपने ऊपर से हटाते हुए कहा—मैंने क्या

खर्च किया। जो कुछ किया बाबूजी ने किया। हाँ, जो कुछ मुझसे कहा गया वह मैंने किया।

रमानाथ के कथन में बहुत कुछ सत्य था। यदि दयानाथ की इच्छा न होती, तो रमा क्या कर सकता था? जो कुछ हुआ उनकी अनुमति से हुआ। रमानाथ पर इल्ज़ाम रखने से तो कोई समस्या हल न हो सकती थी। बोले—मैं तुम्हें इल्ज़ाम नहीं देता भाई। किया तो मैंने ही; मगर यह बला तो किसी तरह सिर से टालनी चाहिए? सराफ़ का तकाज़ा है, कल उसका आदमी आवेगा। उसे क्या जवाब दिया जायगा? मेरी समझ में तो यही एक उपाय है कि उतने रुपये के गहने उसे लौटा दिये जायँ। गहने लौटा लेने में भी वह झंझट करेगा; लेकिन दस-बीस रुपये के लोभ में लौटाने पर राजी हो जायगा। तुम्हारी क्या सलाह है?

रमानाथ ने शरमाते हुए कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ। मगर मैं इतना कह सकता हूँ कि प्रस्ताव को वह खुशी से मंजूर न करेगी। अम्मा तो जानती हैं कि चढ़ावे में चन्द्रहार न जाने से उसे कितना बुरा लगा था। प्रण कर लिया है जब तक चन्द्रहार न बन जाएगा, कोई गहना न पहनूँगी।

जागेश्वरी ने अपने पक्ष का समर्थन होते देख, खुश होकर कहा—यही तो मैं इनसे कह रही हूँ।

रमानाथ—रोना-धोना मच जायगा और इसके साथ घर का पर्दा भी खुल जायगा।

दयानाथ ने माथा सिकोड़कर कहा—उससे परदा रखने की जरूरत ही क्या? अपनी यथार्थ स्थिति को वह जितनी जल्दी समझ ले, उतना ही अच्छा।

रमानाथ ने जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब डींग उड़ाई थी। खूब बढ़-बढ़कर बातें की थीं। जमींदारी है, उससे कई हजार का नफ़ा है। बैंक में रुपये हैं, उनका सूद आता है। जालपा से अब अगर गहने की बात कही गयी, तो रमानाथ को वह पूरा लबाड़िया समझेगी। बोला—पर्दा तो एक दिन खुल ही जायगा, पर इतनी जल्दी खोल देने का नतीजा यही होगा कि वह हमें नीच समझने लगेगी। शायद अपने घरवालों को भी लिख भेजे। चारों तरफ बदनामी होगी।

दयानाथ—हमने तो दीनदयाल से यह कभी न कहा था कि हम लखपती हैं।

रमा०—तो आपने यही कब कहा था कि हम उधार गहने लाये हैं और दो-चार दिन में लौटा देंगे? आखिर यह सारा स्वांग अपनी धाक बैठाने के लिये ही किया था या कुछ और।

दया०—तो फिर किसी दूसरे बहाने से माँगना पड़ेगा। बिना माँगे काम नहीं चल सकता। कल या तो रुपये देने पड़ेंगे, या गहने लौटाने पड़ेंगे। और कोई राह नहीं।

रमानाथ ने कोई जवाब न दिया। जागेश्वरी बोली—और कौन-सा बहाना किया जायगा? अगर कहा जाय, किसी को मंगनी देना है तो शायद वह देगी नहीं। देगी भी तो दो-चार दिन में लौटायेंगे कैसे?

दयानाथ को एक उपाय सूझा। बोले—अगर उन गहनों के बदले मुलम्मे के गहने दिये जायँ? मगर तुरन्त ही उन्हें ज्ञात हो गया कि यह लचर बात है। खुद ही उसका विरोध करते हुए कहा—हाँ बाद को जब मुलम्मा उड़ जायगा तो फिर लज्जित होना पड़ेगा। अक्ल कुछ काम नहीं करती। मुझे तो यही सूझता है, यह सारी स्थिति उसे समझा दी जाय। जरा देर के लिये उसे दुःख तो जरूर होगा; लेकिन आगे के वास्ते रास्ता साफ हो जायगा।

संभव था, जैसा दयानाथ का विचार था, कि जालपा रो-धोकर शान्त हो जायगी; पर रमा की इसमें किरकिरी होती थी। फिर वह मुँह न दिखा सकेगा। जब वह उससे कहेगी, तुम्हारी जमींदारी क्या हो गयी, बैंक के रुपये क्या हुए, तो उसे क्या जवाब देगा? विरक्त भाव से बोला—इसमें बेइज्जती के सिवा और कुछ न होगा। आप क्या सराफ़ को दो-चार-छः महीने नहीं टाल सकते? आप देना चाहें, तो इतने दिनों में हजार-बारह सौ रुपये बड़ी आसानी से दे सकते हैं।

दयानाथ ने पूछा—कैसे?

रमा०—उसी तरह जैसे आपके और भाई करते हैं।

दया०—रमा, वह मुझसे नहीं हो सकता।

तीनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। दयानाथ ने अपना फैसला सुना दिया। जागेश्वरी और रमा को यह फैसला मंजूर न था। इसलिए अब इस गुत्थी को

सुलझाने का भार उन्हीं दोनों पर था। जागेश्वरी ने भी एक तरह से निश्चय कर लिया था। दयानाथ को झख मारकर अपना नियम तोड़ना पड़ेगा। यह कहाँ की नीति है कि हमारे ऊपर संकट पड़ा हुआ हो, और हम अपने नियमों का राग अलापे जायँ ? रमानाथ बुरी तरह फँसा था। वह खूब जानता था कि पिताजी ने जो काम कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। उन्हें जालपा से गहने-माँगने में कोई संकोच न होगा और यही वह चाहता था। वह पछता रहा था कि मैंने क्यों जालपा से डींगे मारीं। अब अपने मुँह की लाली रखने का सारा भार उसी पर था। जालपा की अनुपम छवि ने पहले ही दिन उस पर मोहनी डाल दी थी। वह अपने सौभाग्य पर फूला न समाता था। क्या यह घर ऐसी अनन्य सुन्दरी के योग्य था ? जालपा के पिता पाँच रुपये के नौकर थे; पर जालपा ने कभी अपने घर में झाड़ू न लगाई थी, कभी अपनी धोती न छांटी थी, अपना बिछवना न बिछाया था, यहाँ तक कि अपनी धोती की खोंच तक न सी थी। दयानाथ पचास रुपया पाते थे; पर यहाँ केवल चौका-बासन करने के लिए महरी थी। बाकी सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। जालपा शहर और देहात का फर्क क्या जाने ? शहर में रहने का उसे कभी अवसर ही न पड़ा था। वह कई बार पति और सास से साश्चर्य पूछ चुकी थी, क्या यहाँ कोई नौकर नहीं है ? जालपा के घर दूध-दही की कमी नहीं थी। यहाँ बच्चों को दूध मयस्सर न था। इन सारे अभावों की पूर्ति के लिये रमानाथ के पास मीठी-मीठी बड़ी-बड़ी बातों के सिवा और क्या था। घर का किराया पाँच रुपया था, रमानाथ ने पन्द्रह बतलाये थे। लड़कों की शिक्षा का खर्च मुश्किल से दस रुपये था, रमानाथ ने चालीस बतलाये थे। उस समय उसे इसकी जरा भी शंका न थी कि एक दिन सारा भन्डा फूट जायगा। मिथ्या दूरदर्शी नहीं होती; लेकिन वह दिन इतनी जल्दी आएगा, यह कौन जानता था ? अगर उसने ये डींगें न मारी होतीं, तो जागेश्वरी की तरह वह भी सारा भार दयानाथ पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाता लेकिन इस वक्त वह अपने ही बनाये जाल में फँस गया था। कैसे निकले ?

उसने कितने ही उपाय सोचे, लेकिन कोई ऐसा न था, जो आगे चलकर उसे उलझनों में डाल देता, दलदल में न फँसा देता। एकाएक उसे एक चाल

सूझी । उसका दिल उछल पड़ा; पर इस बात को वह मुँह तक न ला सका। ओह ! कितनी नीचता है ! कितना कपट, कितनी निर्दयता ! अपनी प्रेयसी के साथ ऐसी धूर्तता ! उसके मन ने धिक्कारा । अगर इस वक्त उसे कोई हज़ार रुपया दे देता, तो वह उसका उम्र-भर के लिये गुलाम हो जाता ।

दयानाथ ने पूछा—कोई बात सूझी ?

'मुझे तो कुछ नहीं सूझती ।'

'कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा ।'

'आप ही सोचिए, मुझे तो कुछ नहीं सूझता ।'

'क्यों नहीं उससे दो-तीन गहने माँग लेते ? तुम चाहो, तो ले सकते हो । हमारे लिये मुश्किल है ।'

'मुझे शर्म आती है ।'

'तुम विचित्र आदमी हो, न खुद माँगोगे, न मुझे माँगने दोगे, तो आखिर यह नाव कैसे चलेगी ? मैं एक बार नहीं हजार बार कह चुका कि मुझसे कोई आशा मत रक्खो । मैं अपने आखिरी दिन जेल में नहीं काट सकता । इसमें शर्म की क्या बात है, मेरी समझ में नहीं आता । किसके जीवन में ऐसे कुअवसर नहीं आते ? तुम्हीं अपनी मां से पूछो ।

जागेश्वरी ने अनुमोदन किया—मुझसे तो नहीं देखा जाता था कि अपना आदमी चिन्ता में पड़ा रहे, मैं गहने पहने बैठी रहूँ । नहीं तो आज मेरे पास भी गहने न होते ? एक-एक करके सब निकल गये । विवाह में पाँच हजार से कम का चढ़ावा नहीं गया था; मगर पाँच ही साल में सब स्वाहा हो गया । तब से एक छल्ला बनवाना भी न नसीब हुआ ।

दयानाथ जोर देकर बोले—शर्म करने का यह अवसर नहीं है । इन्हें माँगना पड़ेगा !

रमानाथ ने झेंपते हुए कहा—मैं माँग तो नहीं सकता, कहिये उठा लाऊँ ।

यह कहते-कहते लज्जा, क्षमा और अपनी नीचता के ज्ञान से उसकी आँखें सजल हो गयीं ।

दयानाथ ने भौंचक्के होकर कहा—उठा लाओगे, उससे छिपाकर ?

रमानाथ ने तीव्र कंठ से कहा—और आप क्या समझ रहे हैं ?

दयानाथ ने माथे पर हाथ रख लिया, और एक क्षण के बाद आहत कंठ से बोले—नहीं मैं ऐसा न करने दूँगा। मैंने जाल कभी नहीं किया, और न कभी करूँगा। वह भी अपनी बहू के साथ। छि: छि: जो काम सीधे से चल सकता है, उसके लिये एक फ़रेब ? कहीं उसकी निगाह पड़ गयी, तो समझते हो वह तुम्हें दिल में क्या समझेगी ? माँग लेना इससे कहीं अच्छा है।

रमा०—आपको उससे क्या मतलब ? मुझसे चीजें ले लीजियेगा। मगर जब आप जानते थे, यह नौबत आएगी, तो इतने जेवर ले जाने की जरूरत ही क्या थी ? व्यर्थ की विपत्ति मोल ली। इससे कई लाख गुना अच्छा था, कि आसानी से जितना ले जा सकते, उतना ही ले जाते। उस भोजन से क्या लाभ कि पेट में पीड़ा होने लगे ? मैं तो समझ रहा था कि आपने कोई मार्ग निकाल लिया होगा। मुझे क्या मालूम था कि आप मेरे सिर यह मुसीबतों की टोकरी पटक देंगे ? वरना मैं उन चीजों को कभी न ले जाने देता।

दयानाथ कुछ लज्जित होकर बोले—इतने पर भी केवल चन्द्रहार न होने से वहाँ हाय-तोबा मच गयी।

रमा०—उस हाय तोबा से हमारी क्या हानि हो सकती थी ? जब इतना करने पर भी हाय-तोबा मच गयी, तो मतलब भी तो न पूरा हुआ। उधर बदनामी हुई। इधर यह आफत सिर पर आयी। मैं यह नहीं दिखाना चाहता कि हम इतने फटे-हाल हैं। चोरी हो जाने पर तो सब करना ही पड़ेगा।

दयानाथ चुप हो गये। उस आवेश में रमा ने उन्हें खूब खरी-खरी सुनायी और वह चुपचाप सुनते रहे। आखिर जब न सुना गया, तो उठकर पुस्तकालय चले गये। यह उनका नित्य का नियम था। जब तक दो-चार पत्र-पत्रिकाएँ न पढ़ लें, उन्हें खाना न हजम होता था। उसी सुरक्षित गढ़ी में पहुँचकर घर की चिन्ताओं और बाधाओं से उनकी जान बचती थी।

रमा भी वहाँ से उठा, पर जालपा के पास न जाकर अपने कमरे में गया। उसका कोई कमरा अलग तो था नहीं, एक यही मर्दाना कमरा था। इसी में दयानाथ अपने दोस्तों से गप-शप करते, दोनों लड़के पढ़ते और रमा मित्रों के साथ शतरंज खेलता। रमा कमरे में पहुँचा तो दोनों लड़के ताश खेल रहे थे। गोपी का तेरहवाँ साल था, विश्वम्भर का नवाँ। दोनों रमा से थरथर काँपते थे। रमा खुद खूब ताश और शतरंज खेलता था, पर भाइयों को खेलते

देखकर उसके हाथ में खुजली होने लगती थी। खुद चाहे दिन भर सैर-सपाटे किया करे, मगर क्या मजाल कि भाई कहीं घूमने निकल जायँ। दयानाथ खुद लड़कों को कभी न मारते। अवसर मिलता, तो उनके साथ खेलते थे। उन्हें कनकौवे उड़ाते देखकर उनकी बाल-प्रकृति सजग हो जाती थी, दो-चार पेंच लड़ा देते। बच्चों के साथ कभी गुल्ली-डंडा भी खेलते। इसलिये लड़के जितना रमा से डरते उतना ही पिता से प्रेम करते थे।

रमा को देखते ही लड़कों ने ताश को टाट के नीचे छिपा दिया और पढ़ने लगे। सिर झुकाये चपत की प्रतीक्षा कर रहे थे; पर रमानाथ ने चपत नहीं लगायी। मोढ़े पर बैठकर गोपीनाथ से बोले—तुमने भाँग की दूकान देखी है न, नुक्कड़ पर ?

गोपीनाथ प्रसन्न होकर बोला—हाँ, देखी क्यों नहीं ?

'जाकर चार पैसे का माजूम ले लो, दौड़े हुए आना। हाँ ! हलवाई की दूकान से आधा सेर मिठाई भी लेते आना ! यह रुपया लो !'

कोई पन्द्रह मिनट में रमा ये दोनों चीजें ले, जालपा के कमरे की ओर चला।

७

रात के दस बज गये थे। जालपा खुली छत पर लेटी हुई थी। जेठ की सुनहरी चांदनी में सामने फैले हुए नगर के कलश, गुम्बद, और वृक्ष स्वप्न-चित्रों से लगते थे। जालपा की आँखें चन्द्रमा की ओर लगी थीं। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मैं चन्द्रमा की ओर उड़ी जा रही हूँ। उसे अपनी नाक में खुश्की, आँखों में जलन और सिर में चक्कर मालूम हो रहा था। कोई बात ध्यान में आते ही भूल जाती, और बहुत याद करने पर भी याद न आती थी। एक बार घर की याद आ गई, रोने लगी। एक क्षण में सहेलियों की याद आ गई, हँसने लगी। सहसा रमानाथ हाथ में एक पोटली लिये, मुस्कराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया।

जालपा ने उठकर पूछा—पोटली में क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ।

जालपा—हँसी का गोलगप्पा है ! (कह कर हँसने लगी।)

रमा०—गलत।

जालपा—नींद की गठरी होगी ?

रमा०—गलत।

जालपा—तो प्रेम की पिटारी होगी।

रमानाथ—ठीक। आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊँगा।

जालपा खिल उठी। रमा ने बड़े अनुराग से उसे फूलों के गहने पहनाने शुरू किये, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से जालपा के कोमल शरीर में गुदगुदी-सी होने लगी। उन्हीं फूलों की भाँति उसका एक-एक रोम प्रफुल्लित हो गया।

जालपा ने कुछ उत्तर न दिया। इस वेश में पति की ओर ताकते हुए भी उसे संकोच हुआ। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि जरा आईने में अपनी छबि देखे। सामने कमरे में लैम्प जल रहा था, वह उठकर कमरे में गयी, और आईने के सामने खड़ी हो गई। नशे की तरंग में उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सचमुच फूलों की देवी हूँ। उसने पानदान उठा लिया और बाहर आकर पान बनाने लगी।

रमा को इस समय अपने कपट व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। जालपा ने कमरे से लौटकर प्रेमोल्लसित नेत्रों से उसकी ओर देखा, तो उसने मुँह फेर लिया। उस सरल विश्वास से भरी हुई आँखों के सामने वह ताक न सका। उसने सोचा—मैं कितना बड़ा कायर हूँ। क्या मैं बाबूजी को साफ़-साफ़ जवाब न दे सकता था ? मैंने हामी ही क्यों भरी ? क्या जालपा से घर की दशा साफ-साफ कह देना मेरा कर्त्तव्य न था ? उसकी आँखें भर आयीं। जाकर मुंडेर के पास खड़ा हो गया। प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार उसे किसी भयंकर जन्तु की भाँति घूरता हुआ जान पड़ता था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई कि एक बार जी में आया, सारा कपट-व्यवहार खोल दूँ; लेकिन सँभल गया। कितना भयंकर परिणाम होगा ! जालपा की नजरों से गिर जाने की कल्पना ही उसके लिये असह्य थी।

जालपा ने प्रेम-सरस नेत्रों से देखकर कहा—मेरे दादाजी तुम्हें देखकर गये, और अम्माजी से तुम्हारा बखान करने लगे, तो मैं सोचती थी, तुम कैसे होगे। मेरे मन में तरह-तरह के चित्र आते थे।

रमानाथ ने एक लम्बी साँस खींची। कुछ जवाब न दिया।

जालपा ने फिर कहा—मेरी सखियां तुम्हें देखकर मुग्ध हो गयीं। शहजादी तो खिड़की के सामने से हटती ही न थी। तुमसे बातें करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जब तुम अन्दर गये थे, तो उसी ने तुम्हें पान के बीड़े दिये थे, याद है ?

रमा ने कोई जवाब न दिया।

जालपा—अजी, वही जो रंग-रूप में सबसे अच्छी थी, जिसके गाल पर एक तिल था, तुमने उसकी ओर बड़े प्रेम से देखा था, बेचारी लाज के मारे मर गयी थी। मुझसे कहने लगी, जीजा तो बड़े रसिक जान पड़ते हैं। सखियों ने उसे खूब चिढ़ाया, बेचारी रुआँसी हो गयी। याद है ?

रमा ने मानो नदी में डूबते हुए कहा—मुझे तो याद नहीं आता।

जालपा—अच्छा, अबकी चलोगे तो दिखा दूँगी। आज तुम बाजार की तरफ गये थे कि नहीं ?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—आज तो फुरसत नहीं मिली।

जालपा—जाओ, मैं तुमसे न बोलूँगी। रोज हीले-हवाले करते हो। कल ला दोगे न ?

रमानाथ का कलेजा मसोस उठा। यह चन्द्रहार के लिए इतनी विकल हो रही है। इसे क्या मालूम कि दुर्भाग्य इसका सर्वस्व लूटने का सामान कर रहा है। जिस सरल बालिका पर उसे अपने प्राणों को न्योछावर करना चाहिए था, उसी का सर्वस्व अपहरण करने पर वह तुला हुआ है ? वह इतना व्यग्र हुआ कि जी में आया, कोठे से कूदकर प्राणों का अन्त कर दे।

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा चोर की भाँति एक वृक्ष की आड़ से झाँक रहा था। जालपा पति के गले में हाथ डाले हुए निद्रा में मग्न थी। रमा मनमें विकट संकल्प करके धीरे से उठा, पर निद्रा की गोद में सोये हुए पुष्प प्रदीप ने उसे अस्थिर कर दिया। वह एक क्षण खड़ा मुग्ध नेत्रों से जालपा के निद्रा-विहसित मुख की ओर देखता रहा। कमरे में जाने का साहस न हुआ। फिर लेट गया।

जालपा ने चौंककर पूछा—कहाँ जाते हो, क्या सबेरा हो गया ?

रमा०—अभी तो बड़ी रात है।

जालपा—तो तुम बैठे क्यों हो ?

रमा०—कुछ नहीं, जरा पानी पीने उठा था।

जालपा ने प्रेमातुर होकर रमा के गले में बाँहें डाल दीं और उसे सुलाकर कहा—तुम इस तरह मुझपर टोना करोगे, तो मैं भाग जाऊँगी। न जाने किस तरह ताकते हो, क्या करते हो, क्या मंत्र पढ़ते हो, कि मेरा मन चंचल हो जाता है। वासन्ती सच कहती थी, पुरुषों की आँख में टोना होता है।

रमा ने फूटे हुए स्वर में कहा—टोना नहीं कर रहा हूँ, आँखों की प्यास बुझा रहा हूँ। दोनों फिर सोये, एक उल्लास में डूबी हुई, दूसरा चिन्ता में मग्न।

तीन घंटे और गुजर गये, द्वादशी के चाँद ने अपना विश्व-दीपक बुझा दिया। प्रभात की शीतल समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी। आधी रात तक जागनेवाला बाजार भी सो गया। केवल रमा अभी तक जाग रहा था। मन में भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क उठने के कारण वह बार-बार उठता था, और फिर लेट जाता था। आखिर जब चार बजने की आवाज कान में आयी, तो घबराकर उठ बैठा और कमरे में जा पहुँचा। गहनों का सन्दूकचा आलमारी में रखा हुआ था। रमा ने उसे उठा लिया, और थर-थर काँपता हुआ नीचे उतर गया। इस घबराहट में उसे इतना अवकाश न मिला कि वह कुछ गहने छाँटकर निकाल लेता।

दयानाथ नीचे बरामदे में सो रहे थे। रमा ने उन्हें धीरे से जगाया, उन्होंने हकबकाकर पूछा—कौन ?

रमा ने ओठ पर उँगली रखकर कहा—मैं हूँ। यह सन्दूकची लाया हूँ। रख लीजिये।

दयानाथ सावधान होकर बैठ गये। अभी तक केवल उनकी आँखें जागी थीं, अब चेतना भी जाग्रत हो गयी। रमा ने जिस वक्त उनसे गहने उठा लाने की बात कही थी उन्होंने समझा था, कि यह आवेश में ऐसा कह रहा है। उन्हें इसका विश्वास न आया था कि रमा जो कुछ कह रहा है, उसे पूरा भी कर दिखाएगा। इन कमीनी चालों से वह अलग ही रहना चाहते थे। ऐसे कुत्सित कार्य में पुत्र से साँठ-गाँठ करना उनकी अन्तरात्मा को किसी तरह स्वीकार न था। पूछा—इसे क्यों उठा लाये ?

रमा ने धृष्टता से कहा—आप ही का तो हुक्म था !

दया०—झूठ कहते हो।

रमा०—तो फिर क्या रख आऊँ?

रमा के इस प्रश्न ने दयानाथ को संकट में डाल दिया। झेंपते हुए बोले—अब क्या रख आओगे? कहीं देख ले, तो ग़ज़ब ही हो जाय। वही काम करोगे, जिसमें जग हँसाई हो। खड़े क्या हो, सन्दूकची मेरे बड़े सन्दूक में रख आओ और जाकर लेट रहो। कहीं जाग पड़े तो बस!

बरामदे के पीछे दयानाथ का कमरा था। उसमें एक देवदार का पुराना सन्दूक रखा था। रमा ने सन्दूकचो उसके अन्दर रख दी और बड़ी फुर्ती से ऊपर चला गया। छत पर पहुँचकर उसने आहट ली, जालपा पिछले पहर की सुखद निद्रा में मग्न थी।

रमा ज्योंही चारपाई पर बैठा, जालपा चौंक पड़ी और उससे चिपट गयी। रमा ने पूछा—क्या है, तुम चौंक पड़ीं।

जालपा ने इधर-उधर प्रसन्न नेत्रों से ताककर कहा—कुछ नहीं, एक स्वप्न देख रही थी। तुम बैठे क्यों हो, कितनी रात है अभी?

रमा ने लेटते हुए कहा—सबेरा हो रहा है, क्या स्वप्न देखती थीं?

जालपा—जैसे कोई चोर मेरे गहनों की सन्दूकची उठाये लिए जाता हो।

रमा का हृदय इतने जोर से धक्-धक् करने लगा, मानों उस पर हथौड़े पड़ रहे हों। खून सर्द हो गया। परन्तु सन्देह हुआ, कहीं इसने मुझे देख तो नहीं लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ा—चोर! चोर!

नीचे बरामदे में दयानाथ भी चिल्ला उठे—चोर! चोर!

जालपा घबड़ाकर उठी। दौड़ी हुई कमरे में गयी, झटके से आलमारी खोली, सन्दूकची वहाँ न थी। मूर्छित होकर गिर पड़ी।

८

सबेरा होते ही दयानाथ गहने लेकर सराफ़ के पास पहुँचे और हिसाब होने लगा। सराफ़ के १५००) आते थे, मगर वह केवल १५००) के गहने लेकर सन्तुष्ट न हुआ। बिके हुए गहनों को वह बट्टे पर ही ले सकता था। बिकी हुई चीज कौन वापस लेता है? जाकड़ पर दिये होते, तो दूसरी बात थी। इन चीजों का सौदा हो चुका था। उसने कुछ ऐसी व्यापारिक सिद्धान्त की बातें कीं, दयानाथ को कुछ ऐसा शिकंजे में कसा, कि बेचारे

को हाँ-हाँ करने के सिवा और कुछ न सूझा। दफ्तर का बाबू चतुर दूकान-दार से पेश पाता? १५००) में २५००) के गहने भी चले गये, ऊपर से ५०) रु० और बाकी रह गये। इस बात पर पिता-पुत्र में कई दिन खूब वाद-विवाद हुआ। दोनों एक दूसरे को दोषी ठहराते रहे। कई दिन आपस में बोल-चाल बन्द रही; मगर इस चोरी का हाल गुप्त रखा गया। पुलिस को ख़बर हो जाती, तो भंडा फूट जाने का भय था। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नहीं व्यर्थ का झंझट भले ही होगा। जालपा ने भी सोचा, जब माल ही न मिलेगा, तो रपट व्यर्थ क्यों की जाय।

जालपा को गहनों से जितना प्रेम था; उतना कदाचित् संसार की और किसी वस्तु से न था; और उसमें आश्चर्य की कौन-सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उस वक्त उसके लिए सोने के चूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती, गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दुलहा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा। ठुमुक-ठुमुककर चलेगी।

जालपा पूछती—चाँदी के होंगे, कि सोने के दादी जी?

दादी कहती—सोने के होंगे बेटी, चाँदी के क्यों लावेगा? चाँदी के लावे तो तुम उठाकर उसके मुँह पर पटक देना।

मानकी छेड़कर कहती—चाँदी के तो लावेगा ही। सोने के उसे कहाँ मिले जाते हैं।

जालपा रोने लगती, इस पर बूढ़ी दादी, मानकी, घर की महरियाँ, पड़ोसिनें और दीनदयाल—सब हँसते। उन लोगों के लिए यह विनोद का अशेष भंडार था।

बालिका जब जरा और बड़ी हुई तो गुड़ियों के ब्याह करने लगी। लड़के की ओर से चढ़ावे जाते, दुलहिन को गहने पहनाती, डोली में बैठा-कर बिदा करती, कभी-कभी दुलहिन अपने गुड्डे दूल्हे से गहनों के लिए माँग करती, गुड्डा बेचारा कहीं-न-कहीं से गहने लाकर स्त्री को प्रसन्न करता था। उन्हीं दिनों बिसाती ने उसे चन्द्रहार लाकर दिया, जो अब तक उसके पास सुरक्षित था।

जरा और बड़ी हुई तो बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर गहने की बातें सुनने लगी। महिलाओं के उस छोटे-से संसार में इसके सिवा और कोई चर्चा ही

नहीं थी। किसने कौन-कौन गहने बनवाये, कितने दाम लगे, ठोस हैं या पोल, जड़ाऊ हैं या सादे, किस लड़की के विवाह में कितने गहने आये—इन्हीं महत्व-पूर्ण विषयों पर नित्य आलोचना-प्रत्यालोचना, टीका-टिप्पणी होती रहती थी। कोई दूसरा विषय इतना रोचक, इतना ग्राह्य हो ही न सकता था।

इस आभूषण-मंडित संसार में पली हुई जालपा का यह आभूषण प्रेम स्वाभाविक ही था। महीने भर से ऊपर हो गया, उसकी दशा ज्यों-की-त्यों है, न कुछ खाती-पीती है, न किसी से हँसती-बोलती है। खाट पर पड़ी हुई शून्य नेत्रों से शून्याकाश की ओर ताकती रहती है। सारा घर समझाकर हार गया, पड़ोसिनें समझाकर हार गयीं, दीनदयाल आकर समझा गये; पर जालपा ने रोग-शय्या न छोड़ी। उसे अब घर में किसी पर विश्वास नहीं है. यहाँ तक कि रमा से भी उदासीन रहती है। वह समझती है, सारा घर मेरी उपेक्षा कर रहा है। सब-के-सब मेरे प्राण के ग्राहक हो रहे हैं। जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बन-वाते? जिसे हम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, उसी पर सबसे अधिक रोष भी करते हैं। जालपा को सबसे अधिक क्रोध रमानाथ पर था। अगर यह अपने माता-पिता से जोर देकर कहते, तो कोई इनकी बात न टाल सकता; पर यह कुछ कहें भी? इनके मुँह में तो दही जमा है। मुझसे प्रेम होता तो यों निश्चिन्त न बैठे रहते। जब तक सारी चीज न बनवा लेते, रात को नींद न आती। मुँह देखे की मुहब्बत है, माँ-बाप से कैसे कहें, जायेंगे तो अपनी ओर, मैं कौन हूँ?

वह रमा से केवल खिंची न रहती थी, वह कभी कुछ पूछता, तो दो-चार जली-कटी सुना देती। बेचारा अपना-सा मुँह लेकर रह जाता। गरीब अपनी ही लगायी हुई आग में जला जाता था। अगर वह जानता कि उन डींगों का यह फल होगा, तो वह जबान पर मुहर लगा लेता। चिंता और ग्लानि उसके हृदय को कुचले डालती थी। कहाँ सुबह से शाम तक हँसी-कहकहे, सैर-सपाटे में कटते थे, कहाँ अब नौकरी की तलाश में ठोकरें खाता फिरता था। सारी मस्ती गायब हो गयी। बार-बार अपने पिता पर क्रोध आता, यह चाहते तो दो-चार महीने में सब रुपये अदा हो जाते; मगर इन्हें क्या फिक्र? मैं चाहे मर जाऊँ पर यह अपनी टेक नहीं

छोड़ेंगे । उसी प्रेम से भरे हुए निष्कपट हृदय में आग-सुलगती रहती थी। जालपा का मुरझाया हुआ मुख देख कर उसके मुँह से ठंडी साँस निकल जाती थी। वह सुखप्रद प्रेम-स्वप्न इतनी जल्द भंग हो गया, क्या वे दिन फिर कभी आयेंगे? तीन हजार के गहने कैसे बनेंगे? अगर नौकर भी हुआ, तो ऐसा कौन-सा बड़ा उहदा मिल जायेगा? तीन हजार शायद तीन जन्म में भी न जमा हो। वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहता था, जिससे वह जल्द-से-जल्द अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाये। कहीं उसके नाम कोई लॉटरी निकल आती! फिर तो वह जालपा को आभूषणों से मढ़ देता। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाता। उसमें हीरे जड़े होते। अगर इस वक्त उसे जाली नोट बनाना आ जाता, तो वह अवश्य बनाकर चला देता।

एक दिन वह शाम तक नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिरता रहा। शतरंज की बदौलत उसका कितने ही अच्छे-अच्छे आदमियों से परिचय था; लेकिन वह संकोच और डर के कारण किसी से अपनी स्थिति प्रकट न कर सकता था। वह भी जानता था कि यह मान-सम्मान उसी वक्त तक है, जब तक किसी के सामने मदद के लिए हाथ नहीं फैलाता। यह आन टूटी, फिर कोई बात भी न पूछेगा। कोई ऐसा भलेमानस न दीखता था जो सब कुछ बिना कहे ही समझ जाय, और उसे कोई अच्छी सी जगह दिला दे। आज उसका चित्त बहुत खिन्न था। मित्रों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि एक-एक को फटकारे और आयें तो द्वार से दुत्कार दे। अब किसी ने शतरंज खेलने को बुलाया, तो ऐसी फटकार सुनाऊँगा कि बचा याद करें, मगर वह जरा गौर करता, तो उसे मालूम हो जाता, कि इस विषय में मित्रों का उतना दोष न था, जितना खुद उसका। कोई ऐसा मित्र न था, जिससे उसने बढ़-बढ़कर बातें न की हों। यह उसकी आदत थी। घर की असली दशा को वह सदैव बदनामी की तरह छिपाता रहा। और यह उसी का फल था कि इतने मित्रों के होते हुए भी वह बेकार था। वह किसी से अपनी मनोव्यथा न कह सकता था और मनोव्यथा सांस की भाँति अन्दर असह्य हो जाती है। घर में आकर मुँह लटकाए हुए बैठ गया।

जागेश्वरी ने पानी लाकर दिया और पूछा—आज तुम दिन भर कहाँ रहे? लो हाथ-मुँह धो डालो।

रमा ने लोटा उठाया ही था कि जालपा ने आकर उग्र भाव से कहा—मुझे मेरे घर पहुँचा दो, इसी वक्त ।

रमा ने लोटा रख दिया और उसकी ओर इस तरह ताकने लगा, मानों उसकी बात समझ में न आई हो ।

जागेश्वरी बोली—भला इस तरह कहीं बहू-बेटियाँ बिदा होती हैं । कैसी बात कहती हो बहू ।

जालपा—मैं उन बहू-बेटियों में नहीं हूँ । मेरा जिस वक्त जी चाहेगा जाऊँगी, जिस वक्त जी चाहेगा आऊँगी । मुझे किसी का डर नहीं है । जब यहाँ कोई मेरी बात नहीं पूछता, तो मैं भी किसी को अपना नहीं समझती । सारे दिन अनाथों की तरह पड़ी रहती हूँ; कोई झाँकता तक नहीं । मैं चिड़िया नहीं हूँ, जिसका पिंजड़ा दाना-पानी रखकर बन्द कर दिया जाये । मैं भी आदमी हूँ ! अब इस घर में मैं क्षण-भर न रुकूँगी । अगर कोई मुझे भेजने न जायगा, तो अकेली चली जाऊँगी । राह में कोई भेड़िया नहीं बैठा है, जो मुझे उठा ले जायेगा और उठा भी ले जाय, तो क्या गम । यहाँ कौन-सा सुख भोग रही हूँ !

रमा ने सावधान होकर कहा—आखिर कुछ मालूम भी तो हो, क्या बात हुई ?

जालपा—बात कुछ नहीं हुई, अपना जी है, यहाँ नहीं रहना चाहती ।

रमानाथ—भला इस तरह जाओगी तो तुम्हारे घरवाले क्या कहेंगे । कुछ यह भी तो सोचो ।

जालपा—यह सब सोच चुकी हूँ, और ज्यादा नहीं सोचना चाहती हूँ । मैं जाकर अपने कपड़े बाँधती हूँ और इसी गाड़ी से जाऊँगी ।

यह कहकर जालपा ऊपर चली गई । रमा भी पीछे-पीछे यह सोचता हुआ चला, इसे कैसे शान्त करूँ ?

जालपा अपने कमरे में आकर बिस्तर लपेटने लगी कि रमा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—तुम्हें मेरी क़सम जो इस वक्त जाने का नाम लो !

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—तुम्हारी क़सम की हमें कुछ परवा नहीं है !

उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर बिछावन लपेटने लगी। रमा खिसियाना-सा होकर एक किनारे खड़ा हो गया। जालपा ने बिस्तरबन्द से बिस्तरे को बाँधा और फिर अपने सन्दूक को साफ करने लगी; मगर अब उसमें वह पहले-सी तत्परता न थी, बार-बार सन्दूक बन्द करती और खोलती। वर्षा बन्द हो चुकी थी, केवल छत पर रुका हुआ पानी टपक रहा था।

आखिर वह उसी बिस्तर के बण्डल पर बैठ गयी, और बोली—तुमने मुझे कसम क्यों दिलाई?

रमा के हृदय में आशा की गुदगुदी हुई। बोला इसके सिवा मेरे पास तुम्हें रोकने का और क्या साधन था?

जालपा—क्या तुम जानते हो कि मैं यहीं घुट-घुटकर मर जाऊँ?

रमा०—तुम ऐसे मनहूस शब्द क्यों मुँह से निकालती हो? मैं तो चलने को तैयार हूँ, न मानोगी तो पहुँचाना ही पड़ेगा। जाओ, मेरा ईश्वर मालिक है; मगर कम-से-कम बाबूजी और अम्मा से पूछ लो।

बुझती हुई आग में तेल पड़ गया। जालपा तड़पकर बोली—वह मेरे कौन होते हैं जो उनसे पूछूँ?

रमा०—कोई नहीं होते?

जालपा—कोई नहीं! अगर कोई होते, तो मुझे यों न छोड़ देते। रुपये रखते हुए कोई अपने प्रियजनों का कष्ट नहीं देख सकता। ये लोग क्या मेरे आँसू न पोंछ सकते थे? मैं दिन-के-दिन यहाँ पड़ी रहती हूँ। कोई झूठों भी पूछता है? मुहल्ले की स्त्रियाँ मिलने आती हैं, कैसे मिलूँ? यह सूरत अब मुझसे नहीं दिखाई जाती। न कहीं आना, न जाना, न किसी से बात न चीत, ऐसे कोई कै दिन रह सकता है? मुझे इन लोगों से अब कोई आशा नहीं रही। आखिर दो लड़के और भी तो हैं, उनके लिए भी कुछ जोड़ेंगे कि तुम्हीं को दे दें!

रमा को बड़ी-बड़ी बातें करने का फिर अवसर मिला। वह खुश था कि इतने दिनों के बाद आज उसे प्रसन्न करने का मौका मिला। बोला—प्रिये, तुम्हारा खयाल बहुत ठीक है। जरूर यही बात है। नहीं तो ढाई-तीन हजार उनके लिए क्या बड़ी बात थी? पचासों हजार बैङ्क में जमा हैं, दफ्तर तो केवल दिल बहलाने जाते हैं।

जालपा—मगर हैं मक्खीचूस पल्ले सिरे के !

रमा०—मक्खीचूस न होते, तो इतनी सम्पत्ति कहाँ से आती ?

जालपा—मुझे तो किसी की परवा नहीं है जी, हमारे घर किस बात की कमी है ! दाल-रोटी वहाँ मिल जायेगी। दो-चार सखी-सहेलियाँ हैं, खेत-खलिहान हैं, बाग-बगीचे हैं,जी बहलता रहेगा।

रमा०—और मेरी क्या दशा होगी, जानती हो? घुल-घुलकर मर जाऊँगा। जब से चोरी हुई है, मेरे दिल पर जैसी गुज़रती है, वह दिल ही जानता है। अम्माँ और बाबूजी से एक बार नहीं, लाखों बार कहा, ज़ोर देकर कहा कि दो-चार चीजें तो बनवा ही दीजिये; पर किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी। न जाने क्यों मुझसे आँखें फेर लीं।

जालपा—जब तुम्हारी नौकरी कहीं लग जाये तो मुझे बुला लेना।

रमा०—तलाश कर रहा हूँ। बहुत जल्द मिलनेवाली है। हजारों बड़े-बड़े आदमियों से मुलाकात है, नौकरी मिलते क्या देर लगती है, हाँ, ज़रा अच्छी जगह चाहता हूँ।

जालपा—मैं इन लोगों का रुख समझती हूँ। मैं भी यहाँ अब दावे के साथ रहूँगी। क्यों, किसी से नौकरी के लिए कहते नहीं हो?

रमा०—शर्म आती है किसी से कहते हुए।

जालपा—इसमें शर्म की कौन-सी बात है? कहते शर्म आती हो, तो खत लिख दो।

रमा उछल पड़ा, कितना सरल उपाय था, और अभी तक यह सीधी-सी बात उसे न सूझी थी। बोला—हाँ, यह तुमने बहुत अच्छी तरकीब बतलाई। कल ज़रूर लिखूँगा।

जालपा—मुझे पहुँचाकर आना, तो लिखना। कल ही थोड़े लौट आओगे।

रमा०—तो क्या तुम सचमुच जाओगी? तब मुझे नौकरी मिल चुकी और मैं खत लिख चुका! इसी वियोग के दुःख में बैठकर रोऊँगा कि नौकरी ढूँढूँगा। नहीं, इस वक्त जाने का विचार छोड़ो। नहीं, सच कहता हूँ, मैं कहीं भाग जाऊँगा। मकान का हाल देख चुका। तुम्हारे सिवा और कौन बैठ हुआ है, जिसके लिए यहाँ पड़ा सड़ा करूँ? हटो तो ज़रा मैं बिस्तर खोल दूँ।

जालपा ने बिस्तर पर से जरा खिसककर कहा—मैं बहुत जल्द चली आऊँगी। तुम गये और मैं आयी।

रमा ने बिस्तर खोलते हुए कहा—जी नहीं, माफ़ कीजिए, इस धोखे में नहीं आता। तुम्हें क्या, तुम तो सहेलियों के साथ विहार करोगी, मेरी खबर तक न लोगी, यहाँ मेरी जान पर बन आयेगी। इस घर में फिर कैसे कदम रखा जायेगा।

जालपा ने एहसान जताते हुए कहा—आपने मेरा बँधा-बँधाया बिस्तर खोल दिया, नहीं तो आज कितने आनन्द से घर पहुँच जाती। शहजादी सच कहती थी, मर्द बड़े टोनहे होते हैं। मैंने आज पक्का इरादा कर लिया था कि चाहे ब्रह्मा भी उतर आवें, पर मैं न मानूंगी। पर तुमने दो ही मिनट में सारे मंसूबे चौपट कर दिये। कल खत लिखना जरूर। बिना कुछ पैदा किये अब निर्वाह नहीं है।

रमा०—कल नहीं, मैं इसी वक्त जाकर दो-तीन चिट्ठियाँ लिखता हूँ।

जालपा—पान तो खाते जाओ।

रमानाथ ने पान खाया और मर्दाने कमरे में खत लिखने बैठे।

मगर फिर कुछ सोचकर उठ खड़े हुए और एक तरफ को चल दिये। स्त्री का सप्रेम आग्रह पुरुष से क्या नहीं करा सकता!

६

रमा के परिचितों में एक रमेश बाबू म्युनिसिपल बोर्ड में हेड क्लर्क थे। उम्र तो चालीस के ऊपर थी, पर थे बड़े रसिक। शतरंज खेलने बैठते तो सबेरा कर देते, दफ्तर भी भूल जाते। न आगे नाथ न पीछे पगहा। जवानी में स्त्री मर गयी थी, दूसरा विवाह नहीं किया। उस एकांत जीवन में सिवा विनोद के और क्या अवलम्ब था। चाहते तो हजारों के वारे-न्यारे करते, पर रिश्वत की कौड़ी भी हराम समझते थे। रमा से बड़ा स्नेह रखते थे। और कौन ऐसा निठल्ला था, जो रात-रात भर उनसे शतरंज खेलता! आज कई दिन से बेचारे बहुत व्याकुल हो रहे थे। शतरंज की एक बाजी भी न हुई। अखबार कहाँ तक पढ़ते। रमा इधर दो-एक बार आया अवश्य, पर बिसात पर न बैठा। रमेश बाबू ने मुहरे बिछा दिये, उसको पकड़कर

बठाया पर वह बैठा नहीं। वह क्यों शतरंज खेलने लगा? बहू आयी है, उसका मुँह देखेगा, उससे प्रेमालाप करेगा कि उस बूढ़े के साथ शतरंज खेलेगा। कई बार जी में आया, उसे बुलवायें; पर यह सोचकर कि वह क्यों आने लगा, रह गये। कहाँ जायें? सिनेमा देख आवें? किसी तरह समय तो कटे। सिनेमा से उन्हें बहुत प्रेम न था; पर इस वक्त उन्हें सिनेमा के सिवा और कुछ न सूझा। कपड़े पहने और जाना ही चाहते थे कि रमा ने कमरे में कदम रखा।

रमेश उसे देखते ही गेंद की तरह लुढ़ककर द्वार पर जा पहुंचे। और उसका हाथ पकड़कर बोले—आइये, आइये, बाबू रमानाथ साहब बहादुर! तुम तो इस बुड्ढे को बिलकुल भूल ही गये। हाँ भाई, अब क्यों आओगे? प्रेमिका की रसीली बातों का आनन्द यहाँ कहाँ। चोरी का कुछ पता चला?

रमा०—कुछ भी नहीं।

रमेश—बहुत अच्छा हुआ, थाने में रपट नहीं लिखायी। नहीं सौ-दो-सौ के मत्थे और जाते। बहू को तो बड़ा दुःख हुआ होगा?

रमा०—कुछ पूछिए मत, तभी से दाना-पानी छोड़ रखा है। मैं तो तंग आ गया। जी में आता है, कहीं भाग जाऊं। बाबूजी सुनते ही नहीं।

रमेश०—बाबूजी के पास क्या कारूँ का खजाना रखा हुआ है? अभी चार-पांच-हजार खर्च किये हैं, फिर कहाँ से लाकर गहने बनवा दें? दस-बीस हजार रुपये होंगे, तो अभी तो बच्चे भी तो सामने हैं और नौकरी का भरोसा ही क्या। ५०) होते ही क्या हैं?

रमा०—मैं तो मुसीबत में फँस गया। अब मालूम होता है, कहीं नौकरी करनी पड़ेगी। चैन से खाते और मौज उड़ाते थे, नहीं तो बैठे-बैठाये इस मायाजाल में फँसे। अब बतलाइए, है कहीं नौकरी-चाकरी का सहारा।

रमेश ने ताक पर से मुहरे और बिसात उतारते हुए कहा—आओ एक बाजी हो जाये। फिर इस मसले को सोचें। इसे जितना आसान समझ रहे हो, उतना आसान नहीं है। अच्छे-अच्छे धक्के खा रहे हैं।

रमा०—मेरा तो इस वक्त खेलने को जी नहीं चाहता। जब तक यह प्रश्न हल न हो जाये, मेरे होश ठिकाने नहीं होंगे।

रमेश बाबू ने शतरंज के मुहरे बिछाते हुए कहा—आओ बैठो। एक बार तो खेल लो, फिर सोचें, क्या हो सकता है।

रमा०—जरा भी जी नहीं चाहता। मैं जानता कि सिर मुड़ाते ही ओले पड़ेंगे, तो मैं विवाह के नजदीक ही न जाता।

रमेश—अजी दो-चार चालें चलो तो आप-ही-आप जी लग जायगा। जरा अकल की गाँठ तो खोलो।

बाजी शुरू हुई। कई मामूली चालों के बाद रमेश बाबू ने रमा का रुख पीट लिया।

रमा०—ओह, क्या गलती हुई!

रमेश बाबू की आँखों में नशे की-सी लाली छाने लगी। शतरंज उनके लिए शराब का मादक नशा था। बोले—बोहनी अच्छी हुई! तुम्हारे लिए मैं एक जगह सोच रहा हूँ। मगर वेतन बहुत कम है, केवल तीस रुपये। वह रंगीन दाढ़ीवाले खाँ साहब नहीं हैं, उनसे काम नहीं होता, कई बार बचा चुका हूँ। सोचता था, जब तक किसी तरह काम चले, बने रहें। बाल-बच्चे वाले आदमी हैं। वह तो कई बार कह चुके हैं, मुझे छुट्टी दीजिए। तुम्हारे लायक तो वह जगह नहीं है, चाहो तो कर लो।

यह कहते-कहते रमा का फीला मार लिया।

रमा ने फीले को फिर उठाने की चेष्टा करके कहा—आप मुझे बातों में लगाकर मेरे मोहरें उड़ाते जाते हैं, इनकी सनद नहीं, लाओ मेरा फीला!

रमेश०—देखो भाई, बेईमानी मत करो। मैंने तुम्हारा फीला जबरदस्ती तो नहीं उड़ाया। हाँ, तुम्हें वह जगह मंजूर है?

रमा०—वेतन तो तीस ही है।

रमेश—हाँ, वेतन तो कम है, मगर शायद आगे चलकर बढ़ जाये। मेरी तो राय है कर लो।

रमा०—अच्छी बात है, आपकी सलाह है तो कर लूँगा।

रमेश०—जगह आमदनी की है। मियाँ ने उसी जगह पर रहते हुए लड़कों को एम० ए०, एल० एल० बी० करा लिया। दो कालेज में पढ़ते हैं। लड़कियों की शादियाँ अच्छे घरों में कीं। हाँ, जरा समझ-बूझकर काम करने की जरूरत है।

रमा०—आमदनी की मुझे परवा नहीं; रिश्वत कोई अच्छी चीज तो है नहीं।

रमेश०—बहुत खराब, मगर बाल-बच्चों के आदमी क्या करें। तीस रुपयों में गुजर नहीं हो सकती। मैं अकेला आदमी हूँ। मेरे लिए डेढ़ सौ ही काफी है, कुछ बचा भी लेता हूँ। लेकिन जिस घर में बहुत-से आदमी हों, लड़कों की पढ़ाई हो, लड़कियों की शादियाँ हों, वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे-छोटे आदमियों का वेतन इतना न हो जायेगा कि वह भलमनसी के साथ निर्वाह कर सकें तब तक रिश्वत बन्द न होगी। यही रोटी-दाल, घी-दूध, तो वह भी खाते हैं फिर एक को बीस रुपये और दूसरे को तीन सौ रुपये क्यों देते हो?

रमा का फर्जी पिट गया, रमेश बाबू ने बड़े जोर से कहकहा मारा।

रमा ने रोष के साथ कहा—अगर आप चुपचाप खेलते हैं तो खेलिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बातों में लगाकर सारे मुहरे उड़ा लिये।

रमेश०—अच्छा साहब, अब बोलूँ तो जबान पकड़ लीजिये यह लीजिये शय! तुम कल अर्जी दे दो। उम्मेद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जायेगी; मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेलना होगा।

रमा०—आप तो दो ही मातों में रोने लगते हैं।

रमेश०—अजी, वह दिन गये, जब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल चन्द्रमा बलवान है। इधर मैंने एक मन्त्र सिद्ध किया है। क्या मजाल कि कोई मात दे सके! फिर शय!

रमा०—जी तो चाहता है, दूसरी बाजी मात देकर जाऊँ, मगर देर होगी।

रमेश०—देर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का अरमान निकल जाय! यह शय और मात!

रमा०—अच्छा कल की रही। कल ललकारकर पाँच मातें न दीं तो कहिएगा।

रमेश०—अजी, जाओ भी; तुम मुझे क्या मात दोगे? हिम्मत हो तो अभी सही।

रमा०—अच्छा आइए, आप भी क्या कहेंगे; मगर मैं पाँच बाजियों से कम न खेलूँगा !

रमेश०—पाँच नहीं, तुम दस खेलो जी ! रात तो अपनी है। तो चलो फिर खाना खा लें। तब निश्चिन्त होकर बैठें। तुम्हारे घर कहलाये देता हूँ कि आज यहीं सोयेंगे इन्तजार न करें।

दोनों ने भोजन किया और फिर शतरंज पर बैठे। पहली बाजी में ग्यारह बज गये। रमेश बाबू की जीत रही। दूसरी बाजी भी उन्हीं के हाथ रही। तिसरी बाजी खतम हुई, तो दो बज गये।

रमा०—अब तो मुझे नींद आ रही है।

रमेश०—तो मुंह धो डालो, बरफ रखी हुई है। मैं पाँच बाजियाँ खेले बगैर सोने न दूँगा।

रमेश बाबू को यह विश्वास हो रहा था कि आज मेरा सितारा बुलन्द है। नहीं तो रमा को लगातार तीन मात देना आसान न था। वह समझ गये थे, इस वक्त चाहे जितनी बाजियाँ खेलूं जीत मेरी ही होगी; मगर चौथी बाजी हार गये, तो यह विश्वास जाता रहा। उलटे यह भय हुआ कि कहीं लगातार हारता न जाऊँ। बोले—अब तो सोना चाहिए।

रमा०—क्यों, पाँच बाजियाँ पूरी न कर लीजिये ?

रमेश०—कल दफ्तर भी तो जाना है।

रमा ने अधिक आग्रह न किया। दोनों सोये।

रमा यों ही आठ से पहले न उठता था फिर आज तो तीन बजे सोया था। आज तो उसे दस बजे तक सोने का अधिकार था। रमेश नियमानुसार पाँच बजे उठ बैठे, स्नान किया, संध्या की, घूमने गये और आठ बजे लौटे; मगर रमा तब तक सोता ही रहा। आखिर जब साढ़े नौ बज गये तो उन्होंने उसे जगाया।

रमा ने बिगड़कर कहा—नाहक जगा दिया ! कैसी मजे की नींद आ रही थी।

रमेश—अजी, वह अर्जी देना है कि नहीं तुमको ?

रमा०—आप दे दीजिएगा।

रमेश०—और जो कहीं साहब ने बुलाया, तो मैं ही चला जाऊँगा ?

रमा०—उँह, जो चाहे कीजिएगा, मैं तो सोता हूँ।

रमा फिर लेट गया, और रमेश ने भोजन किया, कपड़े पहने और दफ्तर चलने को तैयार हुए। उसी वक्त रमानाथ घबड़ाकर उठा और आँखें मलता हुआ बोला—मैं भी चलूँगा।

रमेश०—अरे! मुँह-हाथ तो धो लो भले आदमी!

रमा०—आप तो चले जा रहे हैं।

रमेश०—नहीं, अभी १५-२० मिनट तक रुक सकता हूँ तैयार हो जाओ।

रमा०—मैं तैयार हूँ। वहाँ से लौटकर भोजन करूँगा।

रमेश०—कहता तो हूँ, अभी आध घंटे तक रुका हुआ हूँ।

रमा ने एक मिनट में मुँह धोया, पाँच मिनट में भोजन किया और चटपट रमेश के साथ दफ्तर चला।

रास्ते में रमेश ने मुसकिराकर कहा—घर क्या बहाना करोगे, कुछ सोच रखा है?

रमा०—कह दूँगा, रमेश बाबू ने आने नहीं दिया।

रमेश—मुझे गालियाँ दिलाओगे और क्या। फिर कभी न आने पाओगे।

रमा०—ऐसा स्त्री भक्त नहीं हूँ। हाँ, यह तो बतलाइए, मुझे अर्जी लेकर तो साहब के पास न जाना पड़ेगा?

रमेश०—और क्या तुम समझते हो, घर बैठे जगह मिल जायेगी? महीनों दौड़ना पड़ेगा, महीनों! बीसियों सिफारिशें लानी पड़ेंगी; सुबह-शाम हाजिरी देनी पड़ेगी। क्या नौकरी मिलना आसान है?

रमा०—तो मैं ऐसी नौकरी से बाज आया। मुझे तो अर्जी लेकर जाते ही शर्म आती है, खुशामदें कौन करेगा। पहले मुझे क्लर्की पर बड़ी हँसी आती थी, मगर वही बला मेरे सिर पड़ी। साहब डाँट-वाँट तो न बतायेंगे?

रमेश०—बुरी तरह डाँटता है, लोग उसके सामने जाते हुए काँपते हैं।

रमा०—तो फिर मैं घर जाता हूँ। वह सब मुझसे न बर्दाश्त होगा।

रमेश—पहले सब ऐसे ही घबराते हैं, मगर सहते-सहते आदत पड़ जाती है। तुम्हारा दिल धड़क रहा होगा कि न जाने कैसी बीतेगी। जब

मैं नौकर हुआ, तो तुम्हारी ही उम्र मेरी भी थी, और शादी हुए तीन ही महीने हुए थे। जिस दिन मेरी पेशी होने वाली थी, ऐसा घबराया हुआ था, मानों फाँसी पाने जा रहा हुँ, मगर तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है। मैं सब ठीक कर दूँगा।

रमा०—आपको तो बीस-बाईस साल नौकरी करते हो गये होंगे?

रमेश०—पूरे पच्चीस हो गये साहब! बीस बरस तो स्त्री का देहान्त हुए हो गये। दस रुपये पर नौकर हुआ था।

रमा०—आपने दूसरी शादी क्यों नहीं की? तब तो आपकी उम्र पच्चीस से ज्यादा न रही होगी।

रमेश ने हँसकर कहा—बरफी खाने के बाद गुड़ खाने का किसका जी चाहता है? महल का सुख भोगने के बाद झोपड़ा किसे अच्छा लगता है? प्रेम आत्मा को तृप्त कर देता है। तुम तो मुझे जानते हो, अब तो बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मैं तुमसे सच कहता हूँ, इस विधुर जीवन में मैंने किसी स्त्री की ओर आँख तक नहीं उठाई। कितनी ही सुन्दरियाँ देखीं, कई बार लोगों ने विवाह के लिए घेरा भी; लेकिन इच्छा ही न हुई। उस प्रेम की मधुर स्मृतियों में मेरे लिए प्रेम का सजीव आनन्द भरा हुआ है।

यों बातें करते हुए, दोनों आदमी दफ्तर पहुँच गये।

१०

रमा दफ्तर से घर पहुँचा, तो चार बज रहे थे। वह दफ्तर ही में था कि आसमान पर बादल घिर आये। पानी आया ही चाहता था; पर रमा को घर पहुँचने की इतनी बेचैनी हो रही थी कि उससे रुका न गया। हाते के बाहर भी न निकलने पाया था कि जोर की वर्षा होने लगी। आषाढ़ का पहला पानी था, एक क्षण में वह लथ-पथ हो गया। फिर भी वह कहीं रुका नहीं। नौकरी मिल जाने का शुभ समाचार सुनाने का आनन्द इस दौंगड़े की क्या परवा कर सकता था? वेतन तो केवल तीस रुपये थे; पर जगह आमदानी की थी। उसने मन-ही-मन हिसाब लगा लिया था, कि कितनी मासिक बचत हो जाने से वह जालपा के लिए चन्द्रहार बनवा सकेगा। अगर पचास-साठ रुपये महीने भी बच जायें, तो पाँच साल में जालपा गहनों से लद जायेगी। कौन-सा आभूषण कितने का होगा, इसका भी उसने अनुमान

कर लिया था। घर पहुँचकर उसने कपड़े भी न उतारे, लथ-पथ जालपा के कमरे में पहुँच गया।

जालपा उसे देखते ही बोली—यह भींग कहाँ गये, रात कहाँ गायब थे?

रमा०—इसी नौकरी की फिक्र में पड़ा हुआ हूँ। इस वक्त दफ्तर से चला आता हूँ। म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर में मुझे एक जगह मिल गयी।

जालपा ने उछलकर पूछा—सच, कितने की जगह है?

रमा को ठीठ-ठीक बतलाने में संकोच हुआ। तीस की नौकरी बताना अपमान की बात थी। स्त्री के नेत्रों में तुच्छ बनना कौन चाहता है? बोला—अभी तो चालीस मिलेंगे, पर जल्द तरक्की होगी। जगह आमदनी की है।

जालपा ने उसके लिए किसी बड़े पद की कल्पना कर रखी थी। बोली—चालीस में क्या होगा! भला सत्तर तो होते?

रमा०—मिल तो सकती थी सौ रुपये की भी; पर यहाँ रोब है, और आराम है। पचास-साठ रुपये ऊपर से मिल जायेंगे।

जालपा—तो तुम घूस लोगे, गरीबों का गला काटोगे?

रमा ने हँसकर कहा—नहीं प्रिये, वह जगह ऐसी नहीं कि गरीबों का गला काटना पड़े। बड़े-बड़े महाजनों से रकमें मिलेंगी और वह खुशी से गले लगायेंगे। मैं जिसे चाहूँ दिन भर दफ्तर में खड़ा रखूँ। महाजनों का एक-एक मिनट अशरफी के बराबर है। जल्द-से-जल्द अपना काम कराने के लिए वे खुशामद भी करेंगे, पैसा भी देंगे।

जालपा सन्तुष्ट हो गयी, बोली—हाँ, तब ठीक है। गरीबों का काम यों ही कर देना।

रमा०—वह तो करूँगा ही।

जालपा—अम्माजी से तो नहीं कहा? जाकर कह आओ। मुझे तो सबसे बड़ी खुशी यही है कि मालूम होगा कि यहाँ मेरा भी कोई अधिकार है।

रमा—हाँ, जाता हूँ; मगर उनसे तो मैं बीस ही बताऊँगा।

जालपा ने उल्लसित होकर कहा—हाँ जी; बल्कि पन्द्रह कहना, ऊपर की आमदनी की तो चर्चा ही करना व्यर्थ है। भीतर का हिसाब वे ले सकते हैं। सबसे पहले चन्द्रहार बनवाऊँगी।

इतने में डाकिये ने पुकारा। रमा ने दरवाजे पर जाकर देखा, तो उसके नाम एक पारसल आया हुआ था। महाशय दीनदयाल ने भेजा था। लेकर खुश-खुश घर में आये और जालपा के हाथों में रखकर बोले—तुम्हारे घर से आया है, देखो इसमें क्या है।

रमा ने चटपट कैंची निकाली और पारसल खोला। उसमें देवदार की एक डिबिया निकली, उसमें एक चन्द्रहार रखा हुआ था। रमा ने उसे निकालकर देखा और हँसकर बोला—ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली; चीज तो बहुत अच्छी मालूम होती है।

जालपा ने कुण्ठित स्वर में कहा—अम्माजी को यह क्या सूझी, यह तो उन्हीं का हार है। मैं तो इसे न लूँगी। अभी डाक का वक्त हो तो लौटा दो।

रमा ने विस्मित होकर कहा—लौटाने की क्या जरूरत है, वह नाराज न होंगी?

जालपा ने नाक सिकोड़कर कहा—मेरी बला से, रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी। मैं उनकी दया के बिना भी जीती रह सकती हूँ। आज इतने दिनों के बाद उन्हें मुझ पर दया आयी है। उस वक्त दया न आयी थी, जब मैं उनके घर से बिदा हुई थी। उनके गहने उन्हें मुबारक हों! मैं किसी का एहसान नहीं लेना चाहती। अभी उनके ओढ़ने-पहनने के दिन हैं। मैं क्यों बाधक बनूं। तुम कुशल से रहोगे, तो मुझे बहुत गहने मिल जायेंगे। मैं अम्माजी को यह दिखाना चाहती हूँ कि जालपा तुम्हारे गहनों की भूखी नहीं है।

रमा ने सांत्वना देते हुए कहा—मेरी समझ में तो तुम्हें हार रख लेना चाहिए! सोचो, उन्हें कितना दुःख होगा। बिदाई के समय यदि न दिया, तो अच्छा ही किया। नहीं तो और गहनों के साथ यह भी चला जाता।

जालपा—मैं इसे लूँगी नहीं, यह निश्चय है।

रमा०—आखिर क्यों?

जालपा—मेरी इच्छा!

रमा०—इस इच्छा का कोई कारण भी तो होगा?

जालपा रुँधे हुए स्वर में बोली—कारण यही है कि अम्माजी इसे

खुशी से नहीं दे रही हैं। बहुत संभव है कि इसे भेजते समय वह रोई भी हों और इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि इसे वापस पाकर उन्हें सच्चा आनन्द होगा। देनेवाले का हृदय देखना चाहिए। प्रेम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दें, तो मैं दोनों हाथों से ले लूँ। जब दिल पर जब्र करके दुनिया की लाज से या किसी के धिक्कारने से दिया, तो क्या दिया। दान भिखारिनियों को दिया जाता है। मैं किसी का दान न लूँगी, चाहे वह माता ही क्यों न हों।

माता के प्रति जालपा का यह द्वेष देखकर रमा और कुछ कह न सका द्वेष तर्क और प्रमाण नहीं सुनता। रमा ने हार ले लिया, और चारपाई से उठता हुआ बोला—जरा अम्मा और बाबूजी को तो दिखा दूँ। कम-से-कम उनसे पूछ तो लेना ही चाहिए।

जालपा ने हार उसके हाथ से छीन लिया, और बोली—वे लोग मेरे कौन होते हैं, जो उनसे पूछूँ? केवल एक घर में रहने का नाता है। जब मुझे कुछ नहीं समझते, तो मैं भी उन्हें कुछ नहीं समझती।

यह कहते हुए उसने हार को उसी डिब्बे में रख दिया, और उस पर कपड़ा लपेटकर सीने लगी। रमा ने एक बार डरते-डरते फिर कहा—ऐसी जल्दी क्या है, दस-पाँच दिन में लौटा देना : उन लोगों की भी खातिर हो जायेगी।

इस पर जालपा ने कठोर नेत्रों से देखकर कहा—जब तक मैं इसे लौटा न दूँगी, मेरे दिल को चैन न आयेगा। मेरे हृदय में काँटा-सा खटकता रहेगा। अभी पारसल तैयार हुआ जाता है, हाल ही लौटा दो।

एक क्षण में पारसल तैयार हो गया और रमा उसे लिये हुए चिन्तित भाव से नीचे चला।

११

महाशय दयानाथ को जब रमा के नौकर हो जाने का हाल मालूम हुआ तो बहुत खुश हुए। विवाह होते ही वह इतनी जल्दी चेतेगा इसकी उन्हें आशा न थी। बोले—जगह तो अच्छी है। ईमानदारी से काम करोगे, तो किसी अच्छे पद पर पहुँच जाओगे। मेरा यही उपदेश है कि पराये पैसे को हराम समझना।

रमा के जी में तो आया कि साफ कह दूँ—अपना उपदेश आप अपने ही लिए रखिए, यह मेरे अनुकूल नहीं है ! मगर इतना बेहया न था।

दयानाथ ने फिर कहा—यह जगह तो तीस रुपये की थी, तुम्हें बीस क्यों मिले ?

रमा०—नये आदमी को पूरा वेतन कैसे देते ? शायद साल छः महीने में बढ़ जाये। काम बहुत है।

दया०—तुम जवान आदमी हो, काम से न घबड़ाना चाहिये।

रमा ने दूसरे दिन नया सूट बनवाया, और फैशन की कितनी ही चीजें खरीदीं। ससुराल से मिले हुए रुपये कुछ बच रहे थे। कुछ मित्रों से उधार ले लिये। वह साहबी ठाट बना कर सारे दफ्तर पर रोब जमाना चाहता था। चोई उससे वेतन तो पूछेगा नहीं; महाजन लोग उसका ठाट-बाट देख-कर सहम जायेंगे। वह जानता था, अच्छी आमदनी तभी हो सकती है, जब अच्छा ठाट बाट हो सड़क के चौकीदार को एक पैसा काफी समझा जाता हैं, लेकिन उसकी जगह सार्जेन्ट हो, तो किसी की हिम्मत न पड़ेगी कि उसे एक पैसा दिखाये। फटेहाल भिखारी के लिए एक चुटकी बहुत समझी जाती है; लेकिन गेरुये रेशम धारण करने वाले बाबाजी को लजाते-लजाते भी एक रुपया देना ही पड़ता है। भेख और भीख में सनातन से मित्रता है।

तीसरे दिन रमा कोट पेंट पहनकर और हेट लगाकर निकला तो उसकी शान ही कुछ और हो गई। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किये। रमेश बाबू से मिलकर जब वह अपने काम का चार्ज लेने आया तो देखा एक बरामदे में फटी हुई मैली दरी पर एक मियाँ साहब सन्दूक पर रजिस्टर फैलाये बैठे हैं और व्यापारी लोग उन्हें चारों तरफ से घेरे खड़े हैं। सामने गाड़ियों, ठेलों और इक्कों का बाजार लगा हुआ है। सभी अपने-अपने काम की जल्दी मचा रहे हैं। कहीं लोगों में गाली-गलौज हो रही है, कहीं चप-रासियों में हँसी-दिल्लगी। सारा काम बड़े ही अव्यवस्थित रूप से हो रहा है। उस फटी-मैली दरी पर बैठना रमा को अपमानजनक जान पड़ा। वह सीधे रमेश बाबू से जाकर बोला—क्या मुझे भी इसी मैली दरी पर बैठाना चाहते हैं। एक अच्छी-सी मेज और कई कुर्सियाँ भेजवाइए और चपरासियों को

हुक्म दीजिए कि एक आदमी से ज्यादा मेरे सामने न आने पावे। रमेश बाबू ने मुस्कराकर मेज और कुर्सियाँ भिजवा दीं। रमा शान से कुर्सी पर बैठा। बूढ़े मुंशीजी उसकी उच्छृङ्खलता पर दिल में हँस रहे थे। समझ गये, अभी नया जोश है, नई सनक है। चार्ज दे दिया। चार्ज में था क्या, केवल आज की आमदनी का हिसाब समझा देना था। किस जिन्स पर किस हिसाब से चुंगी ली जाती है, इसकी छपी हुई तालिका मौजूद थी, रमा आध घंटे में अपना काम समझ गया। बूढ़े मुंशीजी ने यद्यपि खुद ही यह जगह छोड़ी थी; पर इस वक्त जाते हुए उन्हें दुःख हो रहा था। इसी जगह वह ३० साल से बराबर बैठते आये थे। इसी जगह की बदौलत उन्होंने धन और यश दोनों ही कमाया था। उसे छोड़ते हुए क्यों न दुःख होता? चार्ज देकर जब वह बिदा होने लगे तो रमा उनके साथ जीने के नीचे तक गया। खाँ साहब उसकी इस नम्रता से प्रसन्न हो गये। मुसकराकर बोले—हर एक बिल्टी पर एक आना बँधा हुआ है, खुली हुई बात है! लोग शौक से देते हैं। आप अमीर आदमी हैं; मगर रस्म न बिगाड़िएगा। एक बार कोई रस्म टूट जाती है, तो उसका फिर बँधना मुश्किल हो जाता हैं। इस एक आने में चपरासियों का हक है। जो बड़े बाबू पहले थे, वह पचीस रुपया महीना लेते थे, मगर यह कुछ नहीं लेते।

रमा ने अरुचि प्रकट करते हुए कहा—गंदा काम है, मैं सफाई से काम करना चाहता हूं।

बूढ़े मियाँ ने हँसकर कहा—अभी गन्दा मालूम होता है, लेकिन फिर इसी में मजा आयेगा।

खाँ साहब को बिदा करके रमा अपनी कुर्सी पर आ बैठा और एक चपरासी से बोला—इन लोगों से कहो, बरामदे के नीचे जायें। एक-एक करके नम्बरवार आवें; एक कागज पर सबके नाम नम्बरवार लिख लिया करो।

एक बनिया जो दो घंटे से खड़ा था, खुश होकर बोला—हाँ सरकार यह बहुत अच्छा होगा।

रमा०—जो पहले आवे, उसका काम पहले होना चाहिए। बाकी लोग अपना नम्बर आने तक बाहर रहें। यह नहीं कि सबसे पीछे वाले शोर

मचाकर पहले आ जायें और पहले वाले खड़े मुँह ताकते रहें।

कई व्यापारियों ने कहा—हाँ बाबूजी, यह इंतजाम हो जाय तो बहुत अच्छा हो। भम्भड़ में बड़ी देर हो जाती है।

इतना नियंत्रण रमा का रोब जमाने के लिए काफी था। वणिक् समाज में ही उसके रंग-ढंग की आलोचना और प्रशंसा होने लगी। किसी बड़े कालेज के प्रोफेसर को इतनी ख्याति उम्र भर में न मिलती।

दो-चार दिन के अनुभव से ही रमा को सारे दाँव-घात मालूम हो गये। ऐसी-ऐसी घातें सूझ गयीं जो खाँ साहब को ख्वाब में भी न सूझी थीं। माल की तौल, गिनती और परख में इतनी धांधली थी, जिसकी कोई हद नहीं। जब इस धांधली से व्यापारी लोग सैकड़ों की रकम डकार जाते हैं, तो रमा बिल्टी पर एक आना लेकर ही क्यों संतुष्ट हो जाये, जिसमें आध आना चपरासियों का है? माल का तौल और परख में नियमों का पालन करके वह धन और कीर्ति, दोनों ही कमा सकता है। यह अवसर वह क्यों छोड़ने लगा? विशेषकर जब बड़े बाबू उसके गहरे दोस्त थे! रमेश बाबू इस नये रङ्गरूट की कार्य पटुता पर मुग्ध हो गये! उसकी पीठ ठोंककर बोले—क़ायदे के अन्दर रहो और जो चाहो करो, तुम पर आँच तक न आने पावेगी।

रमा की आमदनी तेजी से बढ़ने लगी। आमदनी के साथ प्रभाव भी बढ़ा। सूखी कलम घिसनेवाले दफ़्तर के बाबुओं को सिगरेट, पान, चाय या जलपान की इच्छा होती, तो रमा के पास चले आते, उस बहती गंगा में सभी हाथ धो सकते थे। सारे दफ्तर में रमा की सराहना होने लगी। पैसे को तो ठीकरा समझता है। क्या दिल है कि वाह! और जैसा दिल है, वैसी ही जबान भी। मालूम होता है नस-नस में शराफत भरी हुई है। बाबुओं का जब यह हाल था, तो चपरासियों और मुहर्रिरों का पूछना ही क्या! सब-के-सब रमा के बिना दामों के गुलाम थे। उन गरीबों की आमदनी ही नहीं, प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ गयी थी। जहाँ गाड़ीवान तक फटकार दिया करते थे, वहाँ अब अच्छे-अच्छे की गर्दन पकड़कर नीचे ढकेल देते थे। रमानाथ की तूती बोलने लगी।

मगर जालपा की अभिलाषा अभी एक भी न पूरी हुई। नागपंचमी

के दिन मुहल्ले की कई युवतियाँ जालपा के साथ कजली खेलने आयीं; मगर जापला अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। भादों में जन्माष्टमी का उत्सव आया। पड़ोस ही में एक सेठ जी रहते थे, उनके यहाँ बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाया जाता था। वहाँ से सास और बहू को बुलावा आया। जागेश्वरी गयी, जालपा ने जाने से इनकार किया। इन तीन महीनों में उसने रमा से एक बार भी आभूषण की चर्चा न की; पर उसका एकान्त प्रेम, उसके आचरण से उत्तेजक था। इससे ज्यादा उत्तेजक वह पुराना सूचीपत्र था जो एक दिन रमा कहीं से उठा लाया था। इसमें भाँति-भाँति के सुन्दर आभूषणों के नमूने बने हुए थे। उनके मूल्य भी लिखे हुए थे। जालपा एकान्त में इस सूचीपत्र को बड़े ध्यान से देखा करती। रमा को देखते ही वह सूचीपत्र छिपा लेती थी। इस हार्दिक कामना को प्रकट करके वह अपनी हँसी न उड़वाना चाहती थी।

रमा आधी रात के बाद लौटा, तो देखा जालपा चारपाई पर पड़ी है। हँसकर बोला—बड़ा अच्छा गाना हो रहा था। तुम नहीं गयीं, बड़ी गलती की।

जालपा ने मुँह फेर लिया, कोई उत्तर न दिया।

रमा ने फिर कहा—यहाँ अकेले पड़े-पड़े तुम्हारा जी घबराता रहा होगा?

जालपा ने तीव्र स्वर में कहा—तुम कहते हो, मैंने गलती की। मैं समझती हूँ, मैंने अच्छा किया। वहाँ किसके मुँह में कालिख लगती?

जालपा ताना तो न देना चाहती थी; पर रमा की इन बातों ने उसे उत्तेजित कर दिया। रोष का एक कारण यह भी था कि उसे अकेला छोड़कर सारा घर उत्सव देखने चला गया था। अगर उन लोगों के हृदय होता, तो क्या वहाँ जाने से इन्कार न कर देते?

रमा ने लज्जित होकर कहा—कालिख लगाने की कोई बात न थी, सभी जानते हैं कि चोरी हो गयी है, और इस जमाने में दो-चार हजार के गहने बनवा लेना मुँह का कौर नहीं है।

चोरी का शब्द जबान पर लाते हुए रमा का हृदय धड़क उठा। जालपा पति की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर रह गयी। और कुछ बोलने

से बात बढ़ जाने का भय था, पर रमा को उसकी दृष्टि से ऐसा भासित हुआ, मानो उसे चोरी का रहस्य मालूम है और वह केवल संकोच के कारण उसे खोलकर नहीं कह रही है। उसे स्वप्न की बात भी याद आई, जो जालपा ने चोरी की रात को देखा था। वह दृष्टि बाण के समान उसके हृदय को छेदने लगी; उसने सोचा शायद मुझे भ्रम हुआ। इस दृष्टि में रोष के सिवा और कोई भाव नहीं है; मगर यह बोलती क्यों नहीं ? चुप क्यों हो गयी ! उसका चुप हो जाना ही गजब था। अपने मन का संशय मिटाने और जालपा के मन की थाह लेने के लिए रमा ने मानो डुबकी मारी—यह कौन जानता था कि डोली से उतरते ही यह विपत्ति तुम्हारा स्वागत करेगी।

जालपा आँखों में आँसू भरकर बोली—तो मैं तुमसे गहने के लिए रोती तो नहीं हूँ। भाग्य में जो लिखा था वह हुआ; आगे भी वही होगा, जो लिखा है। जो औरतें गहने नहीं पहनतीं, क्या उनके दिन नहीं कटते ?

इस वाक्य ने रमा का संशय तो मिटा दिया; पर इसमें जो तीव्र वेदना छिपी हुई थी, वह छिपी न रही। इन तीन महीनों में बहुत प्रयत्न करने पर भी वह सौ रुपये से अधिक संग्रह न कर सका था। बाबू लोगों के आदर-सत्कार में उसे बहुत-कुछ गलना पड़ता था; मगर बिना खिलाये-पिलाये काम भी तो न चल सकता था। सभी उसके दुश्मन हो जाते और उखाड़ने की बात सोचने लगते। मुफ्त का धन अकेले नहीं हजम होता, यह वह अच्छी तरह जानता था। वह स्वयं एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करता। चतुर व्यापारी की भाँति वह जो कुछ खर्च करता था, वह केवल कमाने के लिए। आश्वासन देते हुए बोला—ईश्वर ने चाहा, तो दो-एक महीने में कोई चीज बन जायेगी।

जालपा—मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो गहनों पर जान देती हैं। हाँ, इस तरह किसी के घर आते-जाते शर्म आती ही है।

रमा का चित्त ग्लानि से व्याकुल हो उठा। जालपा के एक-एक शब्द से निराशा टपक रही थी। इस अपार वेदना का कारण कौन था ? क्या यह भी उसी का दोष न था, कि इन तीन महीनों में उसने कभी गहनों की चर्चा नहीं की ? जालपा यदि संकोच के कारण इसकी चर्चा न करती थी

तो रमा को उसके आँसू पोंछने के लिए, क्या मौन के सिवा दूसरा उपाय न था ? मुहल्ले में रोज ही एक न-एक उत्सव होता रहता है, रोज ही पास-पड़ोस की औरतें मिलने आती हैं, बुलावे भी रोज आते ही हैं, बेचारी जालपा कब तक इस प्रकार आत्मा का दमन करती रहेगी, अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ती रहेगी ? हँसने बोलने को किसका जी नहीं चाहता, कौन कैदियों की तरह अकेला पड़ा रहना पसन्द करता है ? मेरे ही कारण तो इसे यह भीषण यातना सहनी पड़ रही है।

उसने सोचा, क्या किसी सराफ़ से गहने उधार नहीं लिए जा सकते ?

कई बड़े सराफ़ों से उसका परिचय था; लेकिन उनसे वह यह बात कैसे कहता ? कहीं वे इन्कार कर दें तो ? या संभव है, बहाना करके टाल दें। उसने निश्चय किया कि अभी उधार लेना ठीक न होगा। कहीं वादे पर रुपये न दे सका, तो व्यर्थ में थुक्का-फजीहत होगी। लज्जित होना पड़ेगा। अभी कुछ दिन और धैर्य से काम लेना चाहिये।

सहसा उसके मन में आया, इस विषय में जालपा की राय लूँ। देखूँ वह क्या कहती है। अगर उसकी इच्छा है तो किसी सराफ़ से वादे पर चीजें ले ली जायें; मैं इस अपमान और संकोच को सह लूँगा। जालपा को संतुष्ट करने के लिए उसे गहनों की कितनी फिक्र है ! बोला—तुमसे एक सलाह करना चाहता हूँ। पूछूँ या न पूछूँ।

जालपा को नींद आ रही थी। आँखें बन्द किये बोली—अब सोने दो भई, सबेरे उठना है।

रमा—अगर तुम्हारी राय हो, तो किसी सराफ़ से वादे पर गहने बनवा लाऊँ। इसमें कोई हर्ज तो नहीं ?

जालपा की आँखें खुल गयीं। कितना कठोर प्रश्न था ? किसी मेहमान से पूछना—कहिए तो आपके लिये भोजन लाऊँ, कितनी बड़ी अशिष्टता है ! इसका तो आशय है कि हम मेहमान को खिलाना नहीं चाहते। रमा को चाहिए था कि चीजें लाकर जालपा के सामने रख देता। उसके बार-बार पूछने पर भी यह कहना चाहिए था कि दाम देकर लाया हूँ तब वह अलबत्ता खुश होती। इस विषय में उसकी सलाह लेना घाव पर नमक छिड़कना था। रमा की ओर अविश्वास की आँखों से देखकर बोली—मैं तो

गहनों के लिए इतनी उत्सुक नहीं हूँ।

रमा०—नहीं, यह बात नहीं, इसमें क्या हर्ज है। किसी सराफ़ से चीजें ले लूँ, धीरे-धीरे उसके रुपये चुका दूँ।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नहीं, मेरे लिए कर्ज की जरूरत नहीं। मैं वेश्या नहीं कि तुम्हें नोच-खसोटकर अपना रास्ता लूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है। अगर मुझे सारी उम्र बेगहनों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी। औरतें गहनों की इतनी भूखी नहीं होतीं। घर के प्राणियों को संकट में डालकर गहने पहनने वाली दूसरी होंगी; लेकिन तुमने तो पहले कहा था कि जगह बड़ी आमदनी की है, मुझे तो कोई विशेष बचत दिखयी नहीं देती।

रमा०—बचत तो जरूर होती, और अच्छी होती; लेकिन जब अहलकारों के मारे बचने भी पाये। सब शैतान सिर पर सवार रहते हैं। मुझे पहले नहीं मालूम था कि यहाँ इतने प्रेतों की पूजा करनी होगी।

जालपा—तो अभी कौन-सी जल्दी है, बनते रहेंगे धीरे-धीरे।

रमा—खैर, तुम्हारी सलाह है तो एक-आध महीने और चुप रहता हूँ। मैं सबसे पहले कंगन बनवाऊँगा।

जालपा ने गद्गद् होकर कहा—तुम्हारे पास अभी उतने रुपये कहाँ होंगे?

रमा०—इसका उपाय तो मेरे पास है। तुम्हें कैसा कंगन पसन्द है? जालपा अब अपने कृत्रिम संयम को न निभा सकी। आलमारी में से आभूषणों का सूचीपत्र निकालकर रमा को दिखाने लगी। इस समय वह इतनी तत्पर थी, मानो सोना आकर रखा हुआ है, सुनार बैठा हुआ है, केवल डिजाइन ही पसन्द करना बाकी है। उसने सूची के दो डिजाइन पसन्द किये। दोनों वास्तव में बहुत ही सुन्दर थे। पर रमा उनका मूल्य देखकर सन्नाटे में आ गया। एक, एक हजार का था, दूसरा आठ सौ का।

रमा०—ऐसी चीज तो शायद यहाँ बन भी न सके; मगर कल मैं जरा सराफ़े की सैर करूँगा।

जालपा ने पुस्तक बन्द करते हुए करुण स्वर में कहा—इतने रुपये न जाने तुम्हारे पास कब तक होंगे? उँह, बनेंगे-बनेंगे, नहीं कौन कोई गहनों के बिना मरा जाता है।

रमा को आज इसी उधेड़बुन में बड़ी रात तक नींद न आयी। ये जड़ाऊ कंगन इन गोरी-गोरी कलाइयों पर कितने खिलेंगे ! यह मोह स्वप्न देखते-देखते उसे न जाने कब नींद आ गयी।

१२

दूसरे दिन सवेरे ही रमा ने रमेश बाबू के घर का रास्ता लिया। उनके यहाँ भी जन्माष्टमी में झाँकी होती थी। उन्हें स्वयं तो इससे कोई अनुराग न था; पर उनकी स्त्री उत्सव मनाती थीं, उसी की यादगार में अब तक यह उत्सव मनाते जाते थे। रमा को देखकर बोले—आओ जी; रात क्यों नहीं आये ? मगर यहाँ गरीबों के घर क्यों आते ? सेठ जी की झाँकी कैसे छोड़ देते ? खूब बहार रही होगी !

रमा०—आपकी-सी सजावट तो न थी, हाँ और सालों से अच्छी थी। कई कत्थक और वेश्याएँ भी आयी थीं ! मैं तो चला आया था, मगर सुना रात भर गाना होता रहा।

रमेश०—सेठजी ने तो वचन दिया था कि वेश्याएँ न आने पावेंगी, फिर यह क्या किया ! इन मूर्खों के हाथों हिन्दू-धर्म का सर्वनाश हो जायेगा। एक तो वेश्याओं का नाच यों भी बुरा, उस पर ठाकुरद्वारे में ! छिः छिः ! न जाने इन गधों को कब अक्ल आयेगी !

रमा०—वेश्याएँ न हों, तो झाँकी देखने जाये ही कौन ? सभी तो आपकी तरह योगी और तपस्वी नहीं हैं।

रमेश०—मेरा वश चले, तो मैं कानून से यह दुराचार बन्द कर दूँ। खैर, फुरसत हो, तो आओ एक-आध बाजी हो जाये।

रमा०—और आया किसलिए हूँ; मगर आज आपको मेरे साथ जरा सराफ़े तक चलना पड़ेगा। यों कई बड़ी-बड़ी कोठियों से मेरा परिचय है। मगर आपके रहने से कुछ और ही बात होगी।

रमेश०—चलने को चला चलूँगा; मगर इस विषय में मैं बिलकुल कोरा हूँ ? न कोई चीज बनवायी, न खरीदी। तुम्हें क्या कुछ लेना है ?

रमा०—लेना-देना क्या है, जरा भाव-ताव देखूँगा।

रमेश०—मालूम होता है, घर में फटकार पड़ी है।

रमा०—जी, बिलकुल नहीं। वह तो जेवरों का नाम तक नहीं लेती।

मैं कभी पूछता भी हूँ; तो मना करती है; लेकिन अपना कर्तव्य भी तो कुछ है ? जब से गहने चोरी चले गये, एक चीज़ भी नहीं बनी ।

रमेश०—मालूम होता है, कमाने का ढंग आ गया । क्यों न हो, कायस्थ के बच्चे हो । कितने रुपये जोड़ लिये ?

रमा०—रुपये किसके पास हैं, वादे पर लूँगा ?

रमेश०—इस ख़ब्त में न पड़ो । जब तक रुपये हाथ में न हों, बाजार की तरफ जाओ ही मत । गहनों से बुड्ढे नयी बीबियों का दिल खुश किया करते हैं । उन बेचारों के पास गहनों के सिवा होता ही क्या है । जवानों के लिए और बहुत से लटके हैं । यों मैं चाहूँ, तो दो-चार हजार का माल दिलवा सकता हूँ, मगर भाई, कर्ज की लत बुरी है ।

रमा०—मैं दो-तीन महीनों में सब रुपये चुका दूँगा । अगर मुझे इसका विश्वास न होता, तो मैं जिक्र ही न करता ।

रमेश०—तो दो-तीन महीने और सब्र क्यों नहीं कर जाते ? कर्ज से बड़ा पाप दूसरा नहीं । न इससे बड़ी विपत्ति दूसरी है । जहाँ एक बार धड़का खुला कि तुम आये दिन सराफ़ की दुकान पर खड़े नजर आओगे । बुरा न मानना । मैं जानता हूँ, तुम्हारी आमदनी अच्छी है, पर भविष्य के भरोसे पर और चाहे जो काम करो, लेकिन कर्ज कभी मत लो । गहनों का मरज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया । जिन लोगों को भोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं । हर साल अरबों रुपये केवल सोना-चाँदी खरीदने में व्यय हो जाते हैं । संसार के और किसी देश में इन धातुओं की इतनी खपत नहीं । तो बात क्या है ? उन्नत देशों में धन व्यापार में लगता है, जिससे लोगों की परवरिश होती है, और धन बढ़ता है । यहाँ धन शृंगार में खर्च होता है, उसमें उन्नति और उपकार की जो महान शक्तियाँ हैं, उन दोनों का ही अन्त हो जाता है । बस यही समझ लो कि जिस देश के लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहाँ जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा । यहाँ तो खैर नाक-कान छिदाकर ही रह जाते हैं, मगर कई ऐसे देश भी हैं, जहाँ ओठ छेदकर लोग गहने पहनते हैं ।

रमा ने कौतूहल से पूछा—वह कौन-सा देश है ?

रमेश—इस समय ठीक याद नहीं आता, पर शायद अफ्रीका हो ।

हमें यह सुनकर अचम्भा होता है; लेकिन अन्य देश वालों के लिए नाक-कान का छिदाना कुछ कम अचम्भे की बात न होगा। बुरा मरज हैं, बहुत ही बुरा। वह धन जो भोजन में खर्च होना चाहिए, बाल-बच्चों का पेट काटकर गहनों की भेंट कर दिया जाता है। बच्चों को दूध न मिले, न सही। घी की गंध तक उनकी नाक में न पहुँचे न सही। मेवों और फलों के दर्शन उन्हें न हों, कोई परावह नहीं। पर देवी जी गहनें जरूर पहनेंगी और स्वमीजी गहने जरूर बनवायेंगे। दस-दस, बीस-बीस रुपये पाने वाले क्लर्कों को देखता हूँ, जो सड़ी हुई कोठरियों में पशुओं की भाँति जीवन काटते हैं, जिन्हें सबेरे का जलपान तक मयस्सर नहीं होता, उन पर भी गहनों की सनक सवार रहती है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश होता जा रहा है। मैं तो कहता हूँ, यह गुलामी पराधीनता से कहीं बढ़कर है। इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, दैहिक, आर्थिक और धार्मिक पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते!

रमा०—मैं तो समझता हूँ, ऐसा कोई भी देश नहीं, जहाँ स्त्रियाँ गहने न पहनती हों। क्या योरप में गहनों का रिवाज नहीं है?

रमेश०—तो तुम्हारा देश योरप नहीं है। वहाँ के लोग धनी हैं। वह धन लुटायें, उन्हें शोभा देता है। हम दरिद्र हैं, हमारी कमाई का एक पैसा भी फजूल न खर्च होना चाहिये।

रमेश बाबू इस वाद विवाद में शतरंज भूल गये। छुट्टी का दिन था ही, दो-चार मिलनेवाले और आ गये, रमानाथ चुपके से खिसक आया। इस बहस में एक बात ऐसी थी, जो उसके दिल में बैठ गयी। उधार गहने लेने का विचार उसके मन से निकल गया। कहीं वह जल्दी रुपया न चुका सका तो कितनी बड़ी बदनामी होगी। सराफ़े तक गया अवश्य; पर किसी दूकान में जाने का साहस न हुआ। उसने निश्चय किया अभी तीन-चार महीने तक गहनों का नाम न लूँगा।

वह घर पहुँचा तो नौ बज गये थे। दयानाथ ने उसे देखा तो पूछा—आज सबेरे-सबेरे कहाँ चले गये थे?

रमा०—जरा बड़े बाबू से मिलने गया था।

दया०—घंटे-आध के लिये पुस्तकालय क्यों नहीं चले जाया करते?

गप-शप में दिन गवाँ देते हो। अभी तुम्हारी पढ़ने-लिखने की उम्र है। इम्तहान न सही, अपनी योग्यता तो बढ़ा सकते हो। एक सीधा-सा खत लिखना पड़ जाता है तो बगलें झाँकने लगते हो। असली शिक्षा स्कूल छोड़ने के बाद ही शुरू होती है; और वही हमारे जीवन में काम भी आती है। मैंने तुम्हारे विषय में कुछ ऐसी बातें सुनी हैं, जिनसे मुझे बहुत खेद हुआ है और तुम्हें समझा देना मैं अपना धर्म समझता हूँ। मैं यह हरगिज नहीं चाहता कि मेरे घर में हराम की कौड़ी भी आये। मुझे नौकरी करते तीस साल हो गये। चाहता तो अब तक हजारों रुपये जमा कर लेता; लेकिन मैं कसम खाता हूँ कि कभी एक पैसा भी हराम का नहीं लिया। तुममें यह आदत कहाँ से आ गई, यह मेरी समझ में नहीं आता।

रमा ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा—किसने आपसे कहा है? जरा उसका नाम तो बताइये? मूछें उखाड़ लूँ उसकी!

दया०—किसी ने भी कहा हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम उसकी मूछें उखाड़ लोगे, इसलिए बताऊँगा नहीं, लेकिन बात सच है या झूठ, मैं इतना ही पूछना चाहता हूँ।

रमा०—बिलकुल झूठ!

दया०—बिलकुल झूठ?

रमा०—जी हाँ, बिलकुल झूठ!

दया०—तुम दस्तूरी नहीं लेते?

रमा०—दस्तूरी रिश्वत नहीं है, सभी लेते हैं और खुल्लमखुल्ला लेते हैं। लोग बिना माँगे आप-ही-आप देते हैं, मैं किसी से माँगने नहीं जाता।

दया०—सभी खुल्लमखुल्ला लेते हैं, और लोग बिना माँगे देते हैं, इससे तो रिश्वत की बुराई कम नहीं हो जाती।

रमा०—दस्तूरी को बन्द कर देना मेरे वश की बात नहीं। मैं खुद न लूँ, लेकिन चपरासी और मुहर्रिर का हाथ तो नहीं पकड़ सकता। आठ-आठ नौ-नौ पाने वाले नौकर अगर न लें, तो उनका काम नहीं चल सकता। मैं खुद न लूँ, पर उन्हें नहीं रोक सकता।

दयानाथ ने उदासीन भाव से कहा—मैंने समझा दिया, मानने न मानने का अख्तियार तुम्हें है।

यह कहते हुए दयानाथ दफ्तर चले गये। रमा के मन में आया, साफ कह दे, आपने निस्पृह बनकर क्या कर लिया, जो मुझे दोष दे रहे हैं ? हमेशा पैसे-पैसे को मुहताज रहे। लड़कों को पढ़ा तक न सके। जूते-कपड़े तक न पहना सके। यह डींग मारना तब शोभा देता, जब कि नीयत भी साफ रहती, और जीवन भी सुख से कटता।

रमा घर में गया तो माता ने पूछा—आज कहाँ चले गये थे बेटा, तुम्हारे बाबू जी इसी पर बिगड़ रहे थे ?

रमा०—इस पर तो नहीं बिगड रहे थे; हाँ, उपदेश दे रहे थे कि दस्तूरी मत लिया करो, इससे आत्मा दुर्बल होती है और बदनामी होती है।

जागे०—तुमने कहा नहीं, आपने बड़ी ईमानदारी की तो कौन-से झंडे गाड़ दिये। सारी जिन्दगी पेट पालते रहे।

रमा०—कहना तो चाहता था, पर चिढ़ जाते। जैसे आप कौड़ी-कौड़ी को मुहताज रहे, वैसे मुझे भी बनाना चाहते हैं। आपको लेने का शऊर तो है नहीं। जब देखा कि यहाँ दाल नहीं गलती, तो भगत बन गये। यहाँ ऐसे घोंघाबसन्त नहीं हैं। बनियों के रुपये ऐंठने के लिए अक्ल चाहिये, दिल्लगी नहीं है। जहाँ किसी ने भगतपन किया और मैं समझ गया बुद्धू हैं। लेने की तमीज नहीं, क्या करे बेचारा। किसी तरह आँसू तो पोंछे।

जागे०—बस-बस यही बात है, बेटा ! जिसे लेना आवेगा, वह जरूर लेगा। इन्हें तो बस घर में कानून बघारना आता है। और किसी के सामने बात तक तो मुँह से निकलती नहीं, रुपये निकाल लेना तो मुश्किल है।

रमा दफ्तर जाते समय ऊपर कपड़े पहनने गया तो जालपा ने उसे तीन लिफाफे डाक में छोड़ने के लिए दिये। उस वक्त उसने तीनों लिफाफे जेब में डाल लिये, लेकिन रास्ते में उन्हें खोलकर चिट्ठियां पढ़ने लगा। चिट्ठियाँ क्या थीं विपत्ति और वेदना का करुण विलाप था जो उसने अपनी तीनों सहेलियों को सुनाया था। तीनों का विषय एक ही था। केवल भावों का अन्तर था—'जिन्दगी पहाड़ हो गयी है, न रात को नींद आती है, न दिन को आराम; पतिदेव को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभी हँस-बोल लेती हूँ; पर दिल हमेशा

रोया करता है। न किसी के घर जाती हूँ, न किसी को मुँह दिखाती हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि यह शोक मेरी जान ही लेकर छोड़ेगा। मुझसे वादे तो रोज किये जाते हैं, रुपये जमा हो रहे हैं, सुनार ठीक किया जा रहा है, डिजाइन तय किया जा रहा है; पर यह सब धोखा है और कुछ नहीं।

रमा ने तीनों चिट्ठियाँ जेब में रख लीं। डाकखाना सामने से निकल गया, पर उसने उन्हें छोड़ा नहीं। यह अभी तक यही समझती है कि मैं इसे धोखा दे रहा हूँ! क्या करूँ, कैसे विश्वास दिलाऊँ? अगर अपना वश होता तो इसी वक्त आभूषणों के टोकरे भर-भर जालपा के जामने रख देता; उसे किसी बड़े सराफ़ की दूकान पर ले जाकर कहता, तुम्हें जो-जो चीजें लेनी हों, ले लो। इतनी अपार वेदना है, जिसने विश्वास का भी अपहरण कर लिया! उसको आज उस चोट का सच्चा अनुभव हुआ, जो उसने झूठी मर्यादा की रक्षा से उसे पहुँचाई थी। अगर वह जानता, उस अभिनय का यह फल होगा, तो कदाचित् अपनी डींगों का परदा खोल देता। क्या ऐसी दशा में भी, जब जालपा इस शोक-ताप से फुँकी जा रही थी, रमा को कर्ज लेने में संकोच करने की जगह थी? उसका हृदय कातर हो उठा। उसने पहली बार सच्चे हृदय से ईश्वर से याचना की—भगवान्, मुझे चाहे जो दंड देना, पर मेरी जालपा को मुझसे मत छीनना। इसके पहले मेरे प्राण हर लेना। उसके रोम-रोम से आत्मध्वनि निकलने लगी—ईश्वर, ईश्वर, मेरी दीन दशा पर दया करो!

लेकिन इसके साथ ही उसे जालपा पर क्रोध भी आ रहा था। जालपा ने क्यों मुझसे यह बात नहीं कही? मुझसे क्यों परदा रखा और मुझसे परदा रखकर अपनी सहेलियों से यह दुखड़ा रोया?

बरामदे में माल तौला जा रहा था। मेज़ पर रुपये-पैसे रखे जा रहे थे और रमा चिन्ता में डूबा बैठा हुआ था। किससे सलाह ले। उसने विवाह ही क्यों किया? सारा दोष उसका अपना था। जब वह घर की दशा जानता था, तो क्यों उसने विवाह करने से इन्कार नहीं कर दिया? आज उसका मन काम में नहीं लगता था। समय से पहिले ही उठकर चला आया।

जालपा ने उसे देखते ही पूछा—मेरी चिट्ठियाँ छोड़ तो नहीं दीं?

रमा ने बहाना किया—अरे इनकी तो याद ही नहीं रही। जेब में पड़ी रह गयीं।

जालपा—यह बहुत अच्छा हुआ। लाओ मुझे दे दो, अब न भेजूँगी।

रमा०—क्यों, कल भेज दूँगा!

जालपा—नहीं अब मुझे भेजना ही नहीं है, कुछ ऐसी बातें लिख गयी थी, जो मुझे न लिखना चाहिये था। अगर तुमने छोड़ दी होती, तो मुझे दुःख होता। मैंने तुम्हारी निन्दा की थी।

यह कह कर वह मुस्कराई।

रमा०—जो बुरा है, दगाबाज है, धूर्त है, उसकी निंदा होनी ही चाहिए।

जालपा ने व्यग्र होकर पूछा—तुमने चिट्ठियाँ पढ़ लीं क्या?

रमा ने निःसंकोच भाव से कहा—हाँ, यह कोई अक्षम्य अपराध है?

जालपा कातर स्वर में बोली—तब तो तुम मुझसे बहुत नाराज़ होगे?

आँसुओं के आवेग से जालपा की आवाज रुक गयी। उसका सिर झुक गया और झुकी हुई आँखों से आँसुओं की बूँदें अञ्चल पर गिरने लगीं। एक क्षण में उसने स्वर को संभाल कर कहा—मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ है। जो चाहो सजा दो; पर मुझसे अप्रसन्न मत हो। ईश्वर जानते हैं, तुम्हारे जाने के बाद मुझे कितना दुःख हुआ। मेरी क़लम से न जाने कैसे ऐसी बातें निकल गयीं।

जालपा जानती थी कि रमा को आभूषणों की चिन्ता मुझसे कम नहीं है; लेकिन मित्रों से अपनी व्यथा कहते समय हम बहुधा अपना दुःख बढ़ाकर कहते हैं। जो बातें परदे की समझी जाती हैं, उनकी चर्चा करने से एक तरह का अपमान ज़ाहिर होता है। हमारे मित्र समझते हैं, हमसे ज़रा भी दुराव नहीं रखता और उन्हें हमसे सहानुभूति हो जाती है। अपनापन दिखाने की यह आदत औरतों में कुछ अधिक होती है।

रमा जालपा के आँसू पोंछते हुए बोला—मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ प्रिये, अप्रसन्न होने की तो कोई बात ही नहीं है। आशा का विलम्ब ही दुराशा है। क्या मैं इतना नहीं जानता? अगर तुमने मुझे मना न कर दिया होता, तो अब तक मैंने किसी-न-किसी तरह एक-दो चीजें अवश्य ही बनवा दी होतीं। मुझसे भूल यही हुई कि तुमसे सलाह ली। यह तो वैसा ही है जैसे मेहमान

को पूछ-पूछकर भोजन दिया जाये। उस वक्त मुझे ध्यान न रहा कि संकोच में आदमी इच्छा होने पर भी 'नहीं नहीं' करता है। ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें बहुत दिन तक इन्तजार न करना पड़ेगा।

जालपा ने सचिन्त नेत्रों से देखकर कहा—तो क्या उधार लाओगे?

रमा—हाँ, उधार लाने में कोई हर्ज नहीं है। जब सूद नहीं देना है, तो जैसे नकद वैसे उधार! ऋण से दुनिया का काम चलता है। कौन ऋण नहीं लेता? हाथ में रुपया आ जाने से अलल्ले-तलल्ले खर्च हो जाते हैं। कर्ज सिर पर सवार रहेगा तो उसकी चिन्ता हाथ रोके रहेगी।

जालपा—मैं तुम्हें चिन्ता में नहीं डालना चाहती। अब मैं भूलकर भी गहनों का नाम न लूँगी।

रमा०—नाम तो तुमने कभी नहीं लिया, लेकिन तुम्हारे नाम न लेने से मेरे कर्तव्य का अन्त नहीं हो जाता। तुम कर्ज से व्यर्थ इतना डरती हो। रुपये जमा होने के इन्तजार में बैठा रहूँगा, तो शायद कभी न जमा होंगे। इसी तरह लेते-देते साल में तीन-चार चीजें बन जायेंगी।

जालपा—मगर पहले कोई छोटी-सी चीज लाना।

रमा०—हाँ, ऐसा तो करूँगा ही।

रमा बाजार चला सो खूब अँधेरा हो गया था। दिन रहते जाता तो संभव था, मित्रों में किसी की निगाह उस पर पड़ जाती। मुंशी दयानाथ ही देख लेते! वह इस मामले को गुप्त ही रखना चाहता था।

१३

सराफ़े में गंगू की दूकान मशहूर थी। गंगू था तो ब्राह्मण, पर बड़ा ही व्यापार-कुशल। उसकी दूकान पर नित्य ग्राहकों का मेला लगा रहता था। उसकी कर्म-निष्ठा ग्राहकों में विश्वास पैदा करती थी। और दूकानों पर ठगे जाने का भय था। वहाँ किसी तरह का धोखा न था। गंगू ने रमा को देखते ही मुस्कराकर कहा—आइये बाबूजी, ऊपर आइए। बड़ी दया की। मुनीमजी, आपके वास्ते पान मँगवाओ! क्या हुक्म है बाबूजी, आप तो जैसे मुझसे नाराज़ हैं। कभी आते ही नहीं, गरीबों पर कभी-कभी दया किया कीजिए।

गंगू की शिष्टता ने रमा की हिम्मत खोल दी। अगर उसने इतने आग्रह

से न बुलाया होता, तो शायद रमा को दूकान पर जाने का साहस न होता। अपनी साख का उसे अभी तक अनुभव न हुआ था। दूकान पर जाकर बोला—यहाँ हम-जैसे मजदूरों का कहाँ गुजर है, महाराज! गाँठ में कुछ हो भी तो!

गंगू—यह आप क्या कहते हैं सरकार! आपकी दूकान है, जो चीज चाहिये ले जाइए। दाम आगे-पीछे मिलते रहेंगे। हम लोग आदमी पहचानते हैं बाबू साहब, ऐसी बात नहीं है। धन्य भाग कि आप हमारी दूकान पर आये तो। दिखाऊँ कोई जड़ाऊ चीजें? कोई कंगन, कोई हार। अभी हाल ही में दिल्ली से माल आया है।

रमा०—कोई हल्के दामों का हार दिखाइए।

गंगू—यही कोई सात-आठ सौ तक?

रमा०—अजी नहीं, हद चार सौ तक।

गंगू—मैं आपको दोनों दिखाये देता हूँ। जो पसन्द आये, ले लीजिएगा। हमारे यहाँ किसी तरह का दगल-फसल नहीं, बाबू साहब। इसकी आप ज·ा भी चिन्ता न करें। पाँच बरस का लड़का हो, या सौ बरस का बूढ़ा, सबके साथ एक बात रखते हैं। मालिक को भी एक दिन मुँह दिखाना है, बाबू जी!

संदूक सामने आया; गंगू ने हार निकाल-निकालकर दिखाने शुरू किये। रमा की आँखें खुल गयीं, जी लोट पोट हो गया। क्या सफाई थी! नगीनों की कितनी सुन्दर सजावट! कैसी आब-ताब! उनकी चमक दीपक को मात करती थी। रमा ने सोच रखा था, सौ रुपये से ज्यादा उधार न लगाऊँगा, लेकिन चार सौ वाला हार आँखों में कुछ जँचता न था। और जेब में कुल तीन सौ रुपये थे। सोचा, अगर यह हार ले गया और जालपा ने पसन्द न किया, तो फायदा ही क्या। ऐसी चीज ले जाऊँ कि वह देखते ही फड़क उठे। यह जड़ाऊ हार उसकी गर्दन में कितना शोभा देगा। यह हार एक सहस्र मणि-रंजित नेत्रों से उसके मन को खींचने लगा। वह अभिभूत होकर उसकी ओर ताक रहा था; पर मुँह से कुछ कहने का साहस न होता था। कहीं गंगू ने तीन सौ रुपये उधार लगाने से इनकार कर दिया, तो उसे कितना लज्जित होना पड़ेगा। गंगू ने उसके मन का संशय ताड़कर कहा—आपके लायक तो बाबूजी यही चीज है, अँधेरे घर में रख दीजिए तो उजाला हो जाये!

रमा—पसन्द तो मुझे भी यही है; लेकिन मेरे पास कुल तीन सौ रुपये हैं, यह समझ लीजिए।

शर्म से रमा के मुँह पर लाली छा गयी। वह धड़कते हुए हृदय से गंगू का मुँह देखने लगा।

गंगू ने निष्कपट भाव से कहा—बाबू साहब, रुपये की तो जिक्र ही न कीजिये। कहिये दस हजार का माल साथ भेज दूँ। दूकान आपकी है, भला कोई बात है। हुक्म हो तो एक आध चीज और दिखाऊँ। एक शीशफूल अभी बनकर आया है; बस, यही मालूम होता है गुलाब का फूल खिला हुआ है। देखकर जी खुश हो जायेगा। मुनीमजी, जरा वह शीशफूल दिखाना तो। और दाम का भी कुछ ऐसा भारी नहीं, आपको ढाई सौ में दे दूँगा।

रमा ने मुस्कराकर कहा—महाराज, बहुत बातें बनाकर कहीं उलटे छुरे से न मूड़ लेना, गहनों के मामलों में बिलकुल अनाड़ी हूँ।

गंगू—ऐसा न कहो बाबूजी ! आप चीज ले जाइये, बाजार में दिखा लीजिए, अगर कोई ढाई सौ से कौड़ी कम दे, तो मैं मुफ्त में दे दूँगा।

शीशफूल आया, सचमुच गुलाब का फूल था, जिस पर हीरे की कलियाँ ओस की बूँदों के समान चमक रही थीं। रमा की टकटकी बँध गयी, मानो कोई अलौकिक वस्तु सामने आ गयी हो।

गंगू—बाबूजी, ढाई सौ रुपये तो कारीगर की सफाई के इनाम हैं। यह एक चीज है।

रमा०—हाँ, है तो बहुत सुन्दर, मगर भाई ऐसा न हो कि कल ही से दाम का तक़ाजा करने लगो। मैं खुद ही जहाँ तक हो सकेगा, जल्दी दे दूँगा।

गंगू ने दोनों चीजें दो सुन्दर मखमली केसों में रखकर रमा को दे दीं। फिर मुनीमजी से नाम टंकवाया और पान खिलाकर बिदा किया।

रमा के मनोल्लास की इस समय सीमा न थी, किन्तु यह विशुद्ध उल्लास न था; इसमें एक शंका का भी समावेश था। यह उस बालक का आनंद न था जिसने माता से पैसे माँगकर मिठाई ली हो, बल्कि उस बालक का जिसने पैसे चुराकर ली हो। उसे मिठाइयाँ मीठी तो लगती हैं; पर दिल काँपता रहता है कि कहीं घर चलने पर मार न पड़ने लगे। साढ़े छः सौ रुपये चुका देने

की तो उसे विशेष चिन्ता न थी, घात लग जाये, तो वह छः महीने में चुका देगा। भय यही था, कि बाबूजी सुनेंगे तो जरूर नाराज होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता था जालपा को इन आभूषणों से शोभित देखने की उत्कंठा इस शंका पर विजय पाती जाती थी। घर पहुँचने की जल्दी में उसने सड़क छोड़ दी, और एक गली में घुस गया। सघन अंधेरा छाया हुआ था। बादल तो उसी वक्त छाये हुए थे, जब घर से चला था। गली में घुसा ही था, कि पानी की बूँदें सिर पर छर्रे की तरह पड़ीं। जब तक छतरी खोले, वह लथ-पथ हो चुक था। उसे शंका हुई, इस अन्धकार में कोई आकर दोनों चीजें छीन न ले; पानी की झरझर में कोई आवाज भी न सुने। अंधेरी गलियों में खून तक हो जाते हैं। पछताने लगा, नाहक इधर से आया। दो-चार मिनट देर ही में पहुँचता, तो ऐसी कौन-सी आफत आ जाती। असामयिक दृष्टि ने उसकी आनन्द-कल्पनाओं में बाधा डाल दी। किसी तरह गली का अन्त हुआ और सड़क मिली। लालटेनें दिखाई दीं। प्रकाश में कितना विश्वास उत्पन्न करनेवाली शक्ति है, आज इसका उसे यथार्थ अनुभव हुआ।

वह घर पहुँचा तो दयानाथ बैठे हुक्का पी रहे थे। वह उस कमरे में न गया। उनकी आँख बचाकर अन्दर जाना चाहता था, कि उन्होंने टोका—इस वक्त कहाँ गये थे?

रमा ने उन्हें जवाब न दिया। कहीं वह अखबार सुनाने लगे, तो घण्टों की खबर लेंगे। सीधा अन्दर जा पहुँचा। जालपा द्वार पर खड़ी उसकी राह देख रही थी, तुरन्त उसके हाथ से छतरी ले ली और बोली—तुम तो बिलकुल भीग गये। कहीं ठहर क्यों न गये?

रमा०—पानी का क्या ठिकाना, रात-भर बरसता रहे?

यह कहता हुआ रमा ऊपर चला गया। उसने समझा था, जालपा भी पीछे-पीछे आती होगी; पर वह नीचे बैठी अपने देवरों से बातें कर रही थी, मानो उसे गहनों की याद ही नहीं है। जैसे वह बिलकुल भूल गई है, कि रमा सराफ़े से आया है।

रमा ने कपड़े बदले, और मन में झुंझलाता हुआ नीचे चला आया। उसी समय दयानाथ भोजन करने आ गये। सब लोग भोजन करने बैठ गये। जालपा ने ज़ब्त तो किया था, पर इस उत्कंठा की दशा में आज

उससे कुछ खाया न गया। जब वह ऊपर पहुँची, तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। उसे देखते ही कौतुक से बोला—आज सराफ़े का जाना तो व्यर्थ हो गया। हार कहीं तैयार न था। बनाने को कह आया हूँ।

जालपा की उत्साह से चमकती हुई मुख-छबि मलिन पड़ गयी, बोली—वह तो पहले ही जानती थी, बनते-बनते पाँच-छः महीने तो लग ही जायँगे?

रमा०—नहीं जी, बहुत जल्द बना देगा, कसम खा रहा था।

जालपा—उँह, जब चाहे दे!

उत्कंठा की चरम सीमा ही निराशा है। जालपा मुँह फेरकर लौटने जा रही थी कि रमा ने जोर से कहकहा मारा। जालपा चौंक पड़ी। समझ गई, रमा ने शरारत की थी। मुसकराती हुई बोली—तुम भी बड़े नटखट हो! क्या लाये?

रमा०—कैसा चकमा दिया?

जालपा—यह तो मरदों को आदत ही है, तुमने नई बात क्या की?

जालपा दोनों आभूषणों को देखकर निहाल हो गई। हृदय में आनन्द की लहरें-सी उठने लगीं। वह मनोभावों को छिपाना चाहती थी कि रमा उसे ओछी न समझे; लेकिन एक एक अंग खिला जाता था। मुस्कराती हुई आँखें, दमकते हुए कपोल और खिले हुए अधर उसका भरम गँवाए देते थे। उसने हार गले में पहिना, शीशफूल जूड़े में सजाया, और सर्प-सी उन्मत्त होकर बोली—तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, ईश्वर तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी करें!

आज जालपा की वह अभिलाषा पूरी हुई जो बचपन ही से उसकी कल्पनाओं का एक स्वप्न, उसकी आशाओं का क्रीड़ास्थल बनी हुई थी। आज उसकी वह साध पूरी हो गई। यदि मानकी यहाँ होती, तो सबसे पहले यह हार उसे दिखाती और कहती—तुम्हारा हार तुम्हें मुबारक हो!

रमा पर घड़ों का नशा चढ़ा हुआ था। आज उसे अपना जीवन सफल जान पड़ा। अपने जीवन में आज पहली बार उसे विजय का आनन्द प्राप्त हुआ।

जालपा ने पूछा—जाकर अम्माजी को दिखा आऊँ?

रमा ने नम्रता से कहा—अम्माजी को दिखाने जाओगी? ऐसी कौन-सी बड़ी चीजें हैं?

जालपा—अब मैं तुमसे साल-भर तक और किसी चीज़ के लिए न कहूँगी। इसके रुपये देकर ही मेरे दिल का बोझ हल्का होगा।

रमा गर्व से बोला—रुपए की क्या चिन्ता? हैं ही कितने!

जालपा—ज़रा अम्माजी को दिखा आऊँ, देखें क्या कहती हैं?

रमा०—मगर यह न कहना उधार लाये हैं।

जालपा इस तरह दौड़ी हुई नीचे गई, मानो उसे वहाँ कोई निधि मिल जायगी।

आधी रात बीत चुकी थी। रमा आनन्द की नींद सो रहा था। जालपा ने छत पर आकर एक बार आकाश की ओर देखा। निर्मल चांदनी छिटकी हुई थी—वह कार्तिक की चांदनी जिसमें संगीत की शान्ति है, शान्ति का माधुर्य और माधुर्य का उन्माद। जालपा ने कमरे में आकर अपनी सन्दूकची खोली और उसमें से वह कांच का चन्द्रहार निकाला जिसे एक दिन पहनकर उसने अपने को धन्य माना था। पर अब इस नये चन्द्रहार के सामने उसकी चमक उसी भाँति मन्द पड़ गयी थी, जैसे इस निर्मल चन्द्रज्योति के सामने तारों का आलोक। उसने उस नकली हार को तो तोड़ डाला और उसके दानों को नीचे गली में फेंक दिया, उसी भाँति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद कोई उपासक मिट्टी की पार्थिवी को जल में विसर्जित कर देता है।

१४

उस दिन से जालपा के पति-स्नेह में सेवा-भाव का उदय हुआ। वह स्नान करने जाता तो उसे अपनी धोती चुनी हुई मिलती। आले पर तेल और साबुन भी रखा हुआ पाता। जब दफ्तर जाने लगता तो जालपा उसके कपड़े लाकर सामने रख देती। पहले पान माँगने पर मिलते थे, अब जबरदस्ती खिलाये जाते थे। जालपा उसका रुख देखा करती। उसे कुछ कहने की जरूरत न थी। यहाँ तक कि जब वह भोजन करने बैठता तो वह पंखा झला करती। पहले वह अनिच्छा से भोजन बनाने जाती थी और उस पर भी बेगार-सी टालती थी। अब बड़े प्रेम से रसोई में जाती। चीजें अब भी वही बनती थीं, पर उनका स्वाद बढ़ गया था। रमा को इस मधुर स्नेह के सामने दो गहने बहुत तुच्छ जँचते थे।

उधर जिस दिन रमा ने गंगू की दूकान से गहने खरीदे, उसी दिन से दूसरे सराफ़ों को भी उसके आभूषण-प्रेम की सूचना मिल गयी। रमा जब उधर से निकलता, तो दोनों तरफ़ से दूकानदार उठ-उठकर उसे सलाम करते—आइये बाबूजी, पान तो खाते जाइये। दो-एक चीजें हमारी दूकान से तो देखिये!

रमा के आत्म-संयम से उसकी साख और भी बढ़ती थी। यहाँ तक कि एक दिन एक दलाल रमा के घर पर आ पहुँचा, और उसके नहीं-नहीं करने पर भी अपनी सन्दूकची खोल ही दी।

रमा ने उससे पीछा छुड़ाने के लिए कहा—भाई इस वक्त मुझे कुछ नहीं लेना है। क्यों अपना और मेरा समय नष्ट करोगे। दलाल ने बड़े विनीत भाव से कहा—बाबूजी, देख तो लीजिए। पसन्द आये तो लीजिएगा, नहीं तो न लीजिएगा। देख लेने में कोई हर्ज नहीं है। आखिर रईसों के पास न जायँ, तो किसके पास जायँ? औरों ने आपसे गहरी रकमें मारीं; हमारे भाग्य में भी बदा होगा, तो आपसे चार पैसा पा जायँगे। बहूजी और माईजी को दिखा लीजिये। मेरा मन तो कहता है कि आज आप ही के हाथों बोहनी होगी।

रमा०—औरतों के पसन्द की न कहो, चीजें अच्छी होंगी ही। पसन्द आते क्या देर लगती है; लेकिन भाई इस वक्त हाथ खाली है।

दलाल हँसकर बोला—बाबूजी बस ऐसी बात कहते हैं कि वाह! आपका हुक्म हो जाय तो हजार पाँच सौ आपके ऊपर निछावर कर दें। हम लोग आदमी का मिज़ाज देखते हैं बाबूजी। भगवान् ने चाहा तो आज मैं सौदा करके ही उठूँगा।

दलाल ने सन्दूकची से दो चीजें निकालीं, एक तो नए फैशन का जड़ाऊ कंगन था और दूसरा कानों का रिंग। दोनों ही चीजें अपूर्व थीं। ऐसी चमक थी, मानो दीपक जल रहा हो। दस बजे थे। दयानाथ दफ्तर जा चुके थे, वह भी भोजन करने जा रहा था। समय बिल्कुल न था; लेकिन इन दोनों चीजों को देखकर उसे किसी बात की सुधि ही न रही। दोनों केस लिये हुए घर में आया। उसके हाथ में केस देखते ही दोनों स्त्रियाँ टूट पड़ीं और उन चीजों को निकाल-निकालकर देखने लगीं। उसकी चमक-दमक ने उन्हें

ऐसा मोहित कर लिया कि गुण-दोष की विवेचना करने की उनमें शक्ति ही न रही।

रमा०—आजकल की चीजों के सामने तो पुरानी चीजें कुछ जँचती ही नहीं।

जालपा—मुझे तो उन पुरानी चीजों को देखकर क़ै आने लगती है। न जाने उन दिनों औरतें कैसे पहनती थीं।

रमा ने मुसकिराकर कहा—तो दोनों चीजें पसन्द हैं न?

जालपा—पसन्द क्यों नहीं; अम्माजी, तुम ले लो!

रामेश्वरी ने अपनी मनोव्यथा छिपाने के लिए सिर झुका लिया। जिसका सारा जीवन गृहस्थी की चिन्ताओं में कट गया, वह आज क्या स्वप्न में भी इन गहनों के पहनने की आशा कर सकती थी! आह! उस दुखिया के जीवन की साध ही न पूरी हुई। पति की आय ही कभी इतनी न हुई, कि बाल-बच्चों के पालन-पोषण के उपरान्त कुछ बचता। जब से घर की स्वामिनी हुई, तभी से मानो उसकी तपश्चर्या का आरम्भ हुआ और सारी लालसाएँ एक-एक करके धूल में मिल गयीं। उसने उन आभूषणों की ओर से आँखें हटा लीं। उनमें इतना आकर्षण था कि उनकी ओर ताकते हुए वह डरती थी। कहीं उसकी विरक्ति का पर्दा न खुल जाय। बोली—मैं लेकर क्या करूँगी बेटी, मेरे पहनने-ओढ़ने के दिन तो निकल गये। कौन लाया है बेटा? क्या दाम हैं इनके?

रमा०—एक सराफ़ दिखाने लाया है, अभी दाम-आम नहीं पूछे; मगर ऊँचे दाम होंगे। लेना तो था ही नहीं, दाम पूछ कर क्या करता?

जालपा—लेना नहीं था तो यहाँ लाये क्यों?

जालपा ने यह शब्द इतने आवेश में कहा कि रमा खिसिया गया। उनमें इतनी उत्तेजना, इतना तिरस्कार भरा हुआ था कि इन गहनों को लौटा ले जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी। बोला—तो ले लूँ?

जालपा—अम्माँ लेने ही को नहीं कहतीं तो लेकर क्या करोगे। क्या मुफ़्त में दे रहा है?

रमा०—समझ लो मुफ्त ही मिलते हैं।

जालपा—सुनती हो अम्माँ जी, इनकी बातें ? आप जाकर लौटा आइये। जब हाथ में रुपये होंगे, तो बहुत गहने मिलेंगे।

रामेश्वरी ने मोहासक्त होकर कहा—रुपये अभी तो नहीं माँगता ?

जालपा—उधार भी देगा तो सूद तो लगा ही लेगा।

रमा०—तो लौटा दूँ ? एक बात चटपट तय कर डालो। लेना हो ले लो, न लेना हो लौटा दो। मोह और दुविधे में न पड़ो।

जालपा को यह स्पष्ट बातचीत इस समय बहुत कठोर लगी। रमा के मुँह से उसे ऐसी आशा न थी। इनकार करना उसका काम था, रमा को लेने के लिए आग्रह करना चाहिये। रामेश्वरी की ओर लालायित नेत्रों से देखकर बोली—लौटा दो। रात-दिन के तकाजे कौन सहेगा ?

वह केसों को बन्द करने वाली थी, कि रामेश्वरी ने कंगन उठाकर पहन लिया, मानो एक क्षण भर पहनने से ही उसकी साध पूरी हो जायगी। फिर मन में इस ओछेपन पर लज्जित होकर वह उसे उतारना ही चाहती थी कि रमा ने कहा—अब तुमने पहन लिया है अम्माँ, तो पहने रहो। मैं तुम्हें भेंट करता हूँ। रामेश्वरी की आँखें सजल हो गयीं। जो लालसा आज तक पूरी न हो सकी वह आज रमा की मातृ-भक्ति से पूरी हो रही थी; लेकिन क्या वह अपने प्रिय पुत्र पर ऋण का इतना भारी बोझ रख देगी ? अभी वह बेचारा बालक है, उसकी सामर्थ्य ही क्या है ? न जाने रुपये जल्द हाथ आयें या देर में। दाम भी तो नहीं मालूम। अगर ऊँचे दामों का हुआ तो बेचारा देगा कहाँ से ? उसे कितने तकाजे सहने पड़ेंगे और कितना लज्जित होना पड़ेगा। कातर स्वर में बोली—नहीं बेटा, मैंने यों ही पहन लिया था। ले जाओ, लौटा दो।

माता का उदास मुख देखकर रमा का हृदय मातृ-प्रेम से हिल उठा। क्या ऋण के भय से वह अपनी त्याग-मूर्ति माता की इतनी सेवा भी न कर सकेगा ? माता के प्रति उसका कुछ कर्त्तव्य भी तो है ? बोला—रुपये बहुत मिल जायँगे अम्मां, तुम इसकी चिन्ता मत करो।

रामेश्वरी ने बहू की ओर देखा। मानो कह रही थी कि रमा मुझ पर कितना अत्याचार कर रहा है !

जालपा उदासीन भाव से बैठी थी। कदाचित् उसे भय हो रहा था कि

माताजी यह कंगन ले न लें। मेरा कंगन पहन लेना बहू को अच्छा नहीं लगा, इसमें रामेश्वरी को सन्देह नहीं रहा। उन्होंने तुरन्त कंगन उतार डाला, और जालपा की ओर बढ़ाकर बोलीं—मैं अपनी ओर से तुम्हें भेंट करती हूँ बहू, मुझे जो कुछ पहनना-ओढ़ना था, ओढ़-पहन चुकी। अब जरा तुम पहनो, देखूँ!

जालपा को इसमें जरा भी सन्देह न था कि माताजी के पास रुपये की कमी नहीं। वह समझी, शायद आज वह पसीज गयीं और कंगन के रुपये दे देंगी। एक क्षण पहले उसने समझा था कि रुपये रमा को देने पड़ेंगे, इसीलिए इच्छा रहने पर भी वह उसे लौटा देना चाहती थी। जब माताजी उसका दाम चुका रही थीं, तो वह क्यों इनकार करती; ऊपरी मन से बोली—रुपये न हों तो रहने दीजिए अम्माँजी, अभी कौन जल्दी है?

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—तो तुम वह कंगन ले रही हो?

जालपा—अम्माँजी नहीं मानतीं, तो मैं क्या करूँ?

रमा०—और ये रिंग, इन्हें भी क्यों नहीं रख लेतीं?

जालपा—जाकर दाम तो पूछ आओ।

रमा ने अधीर होकर कहा—तुम इन चीजों को ले जाओ, तुम्हें दाम से क्या मतलब!

रमा ने बाहर आकर दलाल से दाम पूछा, तो सन्नाटे में आ गया। कंगन सात सौ के थे और रिंग डेढ़ सौ के। उनका अनुमान था कि कंगन अधिक-से-अधिक तीन सौ के होंगे और रिंग चालिस-पचास रुपये के। पछ-ताये कि पहले ही दाम क्यों न पूछ लिये, नहीं तो इन चीजों को घर में ले जाने की नौबत ही क्यों आती? फेरते हुए शर्म आती थी; मगर कुछ भी हो, फेरना तो पड़ेगा ही। इतना बड़ा बोझ वह सिर पर नहीं ले सकता। दलाल से बोला—बड़े दाम हैं भाई, मैंने तो तीन-चार सौ के भीतर ही आंका था। दयाल का नाम चरनदास था। बोला—दाम में एक कौड़ी फरक पड़ जाये सरकार, तो मुँह न दिखाऊँ। धनीराम की कोठी का माल है, आप चलकर पूछ लें। दमड़ी रुपये की दलाली अलबत्ता मेरी है, आपकी मरजी हो दीजिए, या न दीजिए।

रमा०—तो भाई, इन दामों की चीजें तो इस वक्त हमें नहीं लेनी हैं।

चरन०—ऐसी बात न कहिए बाबूजी। आपके लिए इतने रुपये कौन

बड़ी बात है। दो महीने भी माल चल जाय, तो इसके दूने हाथ आ जायेंगे। आपसे बढ़कर कौन शौकीन होगा ? यह सब रईसों के ही पसन्द की चीजें हैं। गँवार लोग इनकी क़द्र क्या जानें।

रमा० —साढ़े आठ सौ बहुत होते हैं भई।

चरन०—रुपये का मुँह न देखिए बाबूजी, जब बहूजी पहनकर बैठेंगी, तो एक निगाह में सारे रुपये तर जायेंगे !

रमा को विश्वास था कि जालपा गहनों का मूल्य सुनकर आप ही हिचक जायेगी। दलाल से और ज्यादा बातचीत न की। अन्दर जाकर बड़े जोर से हँसा, और बोला—आपने इस कंगन का क्या दाम समझा था माँजी ?

रामेश्वरी कोई जवाब देकर बेवकूफ़ न बनना चाहती थी—इन जड़ाऊ चीजों में नाप-तौल का तो कुछ हिसाब रहता नहीं, जितने में तै हो जाये वही ठीक है।

रमा०—अच्छा, तुम बताओ जालपा, इस कंगन का कितना दाम आँकती हो ?

जालपा—छः सौ से कम का नहीं है।

रमा का सारा खेल बिगड़ गया। दाम का भय दिखाकर रमा ने जालपा को डरा देना चाहा था; मगर छः और सात में बहुत थोड़ा ही अन्तर था। और सम्भव है चरनदास इतने ही पर राजी हो जाये। कुछ झेंपकर बोला—कच्चे नगीने नहीं हैं ?

जालपा—कुछ भी हो, छः सौ से ज्यादा का नहीं।

रमा०—और रिंग का ?

जालपा—अधिक-से-अधिक सौ रुपये।

रमा०—यहाँ भी चूकीं, डेढ़ सौ मांगता है।

जालपा—लट्टू हैं कोई, हमें इन दामों लेना ही नहीं।

रमा की चाल उलटी पड़ी। जालपा को इन चीजों के मूल्य के विषय में बहुत धोखा न हुआ था। आखिर रमा की आर्थिक दशा तो उससे छिपी न थी, फिर भी वह सात सौ रुपये की चीजों के लिए मुँह खोले बैठी थी। रमा को क्या मालूम था कि जालपा कुछ और ही समझकर कंगन पर लहराई

थी। अब तो गला छूटने का एक ही उपाय था और वह यह कि दलाल छः सौ पर राजी न हो। बोला—वह साढ़े आठ सौ से कौड़ी कम न लेगा।

जालपा—तो लौटा दो।

रमा०—मुझे तो लौटाते शर्म आती है। अम्माँ, जरा आप ही दालान में चलकर कह दें, हमें सात सौ से ज्यादा नहीं देना है। देना हो तो दे दो, नहीं चले जाओ।

रामे०—हाँ रे, क्यों नहीं, उस दलाल से मैं बातें करने जाऊँ?

जालपा—तुम्हीं क्यों नहीं कह देते, इसमें तो कोई शर्म की बात नहीं।

रमा०—मुझसे साफ जवाब न देते बनेगा। दुनिया भर की खुशामद करेगा, चुनो चुना—आप बड़े आदमी हैं, रईस हैं, राजा हैं। आपके लिए डेढ़ सौ क्या चीज है, मैं उसकी बातों में आ जाऊँगा।

जालपा—अच्छा चलो मैं ही कहे देती हूँ।

रमा०—वाह, फिर तो सब काम ही बन गया।

रमा पीछे दबक गया। जालपा दालान में आकर बोली—जरा यहाँ आना जी, ओ सराफ़! लूटने आये हो, या माल बेचने आये हो?

चरनदास बरामदे से उठकर द्वार पर आया और बोला—क्या हुक्म है सरकार?

जालपा—माल बेचने आते हो, या जटने आते हो! सात सौ रुपये कंगन के माँगते हो?

चरन०—सात सौ तो उसकी कारीगरी के दाम हैं हुजूर!

जालपा—अच्छा, जो उस पर सात सौ निछावर कर दे, उसके पास ले जाओ। रिंग के डेढ़ सौ कहते हो, लूट है क्या? कंगन के छः सौ और रिंग के सौ, इतने ही हम देने को तैयार हैं। इससे ज्यादा एक कौड़ी नहीं।

चरन०—बहूजी, आप तो अन्धेर करती हैं। कहाँ साढ़े आठ और कहाँ सात सौ।

जालपा—तुम्हारी खुशी; अपनी चीज ले जाओ।

चरन०—इतने बड़े दरबार में आकर चीजें लौटा ले जाऊँ? आप यों ही पहनें। दस-पाँच रुपये की बात होती, तो आपकी जबान न फेरता। आपसे झूठ नहीं कहता बहूजी, इन चीजों पर पैसा रुपया नफा है। उसी एक

पैसे में दूकान का भाड़ा, बट्टा-खाता, दस्तूरी-दलाली सब समझिए। बात ऐसी समझकर कहिए कि हमें भी चार पैसे मिल जायें। सबेरे-सबेरे लौटना न पड़े।

जालपा—कह दिये, वही सात सौ।

चरन ने ऐसा मुँह बनाया, मानो वह किसी धर्म-संकट में पड़ गया है। फिर बोला—सरकार, है तो घाटा ही पर आपकी बात नहीं टालते बनती। रुपये कब मिलेंगे?

जालपा—जल्दी ही मिल जायँगे।

जालपा अन्दर जाकर बोली—आखिर दिया कि नहीं सात सौ में? डेढ़ सौ साफ उड़ाये लिये जाता था। मुझे पछतावा हो रहा है कि कुछ और कम क्यों न कहा। ये लोग इस तरह गाहकों को लूटते हैं।

रमा इतना भारी बोझ लेते घबरा रहा था, लेकिन परिस्थिति ने कुछ ऐसा रंग पकड़ा, कि बोझ उस पर लद ही गया।

जालपा तो खुशी की उमंगों में दोनों चीजें लिये ऊपर चली गयी, पर रमा सिर झुकाये चिन्ता में डूबा खड़ा था। जालपा ने उसकी दशा जानकर भी इन चीजों को क्यों ठुकरा नहीं दिया, क्यों जोर देकर नहीं कहा—मैं न लूँगी, क्यों दुविधे में पड़ी रही? साढ़े पांच सौ भी चुकाना मुश्किल था, इतने और कहाँ से आयेंगे। असल में गलती मेरी ही है। मुझे दलाल को दरवाजे से ही दुत्कार देना चाहिए था।

लेकिन उसने मन को समझाया। यह अपने ही पापों का तो प्रायश्चित है। फिर आदमी इसीलिए तो कमाता है। रोटियों के लाले थोड़े ही थे।

भोजन करके जब ऊपर कपड़े पहनने गया, तो जालपा आईने के सामने खड़ी कानों में रिंग पहन रही थी। उसे देखते ही बोली—आज किस अच्छे का मुँह देखकर उठी थी! दो चीजें मुफ्त हाथ आ गयीं।

रमा ने विस्मय से पूछा—मुफ्त क्यों? रुपये न देने पड़ेंगे?

जालपा—रुपये तो अम्माँजी देंगी?

रमा०—क्या कुछ कहती थीं?

जालपा—उन्होंने मुझे भेंट दिये हैं, तो रुपये कौन देगा?

रमा ने उसके भोलेपन पर मुस्कराकर कहा—यही समझकर तुमने यह

चीजें लीं ? अम्मां को देना होता, तो उसी वक्त दे देतीं जब गहने चोरी गये थे। क्या उनके पास रुपये न थे ?

जालपा असमंजस में पड़कर बोली—तो मुझे क्या मालूम था। अब भी तो लौटा सकते हो। कह देना, जिसके लिए लिया था, उसे पसंद नहीं आया।

यह कहकर उसने तुरन्त कानों से रिंग निकाल लिये। कंगन भी उतार डाले और दोनों चीजें केस में रखकर उसकी तरफ इस तरह बढ़ायीं, जैसे कोई बिल्ली चूहे को अपनी पकड़कर से बाहर नहीं होने देती। उसे छोड़कर भी नहीं छोड़ती। हाथों को फैलाने का साहस नहीं होता था। क्या उसके हृदय की भी यही दशा न थी ? उसके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। क्यों वह रमा की ओर न देखकर भूमि की ओर देख रही थी ? क्यों सिर ऊपर न उठाती थी ? किसी संकट से बच जाने में जो हार्दिक आनन्द होता है, वह कहाँ था ? उसकी दशा ठीक उस माता की-सी थी, जो बालक को विदेश जाने की अनुमति दे रही हो। वही विवशता, वही कातरता, वही ममता इस समय जालपा के मुख पर उदय हो रही थी।

रमा उसके हाथ से केसों को ले सके, इतना कड़ा संयम उसमें न था। उसे तक़ाजे सहना, लज्जित होना, मुँह छिपाये फिरना, चिन्ता की आग में जलना, सब कुछ सहना मंजूर था। ऐसा काम करना नामंजूर था, जिससे जालपा का दिल टूट जाये, वह अपने को अभागिन समझने लगे। उसका सारा ज्ञान, सारी चेष्टा, सारा विवेक इस आघात का विरोध करने लगा। प्रेम और परिस्थितियों के संघर्ष में प्रेम ने विजय पायी।

उसने मुसकराकर कहा—रहने दो, अब ले लिया है, तो क्या लौटायें। अम्माँजी भी हँसेंगी।

जालपा ने बनावटी काँपते हुए कण्ठ से कहा—अपनी चादर देखकर ही पाँव फैलाने चाहिए। एक नयी विपत्ति मोल लेने की क्या जरूरत है ?

रमा ने मानो जल में डूबते हुए कहा—ईश्वर मालिक है !

और तुरन्त नीचे चला गया।

हम क्षणिक मोह और संकोच में पड़कर अपने जीवन के सुख और शांति का कैसे होम कर देते हैं ! अगर जालपा मोह के इस झोंके में अपने

को स्थिर रख सकती, अगर रमा संकोच के आगे सिर न झुका देता, दोनों के हृदय में प्रेम का सच्चा प्रकाश होता, तो वे पथ-भ्रष्ट होकर सर्वनाश की ओर न जाते।

ग्यारह बज गये थे, दफ्तर के लिए देर हो रही थी; पर रमा इस तरह जा रहा था, जैसे कोई अपने प्रिय बन्धु की दाह-क्रिया करके लौट रहा हो।

१५

जालपा अब वह एकान्तवासिनी रमणी न थी, जो दिन-भर मुँह लपेटे उदास खड़ी रहती थी। उसे अब घर में बैठना अच्छा न लगता था। अब तक तो वह मजबूर थी, कहीं आ-जा न सकती थी। अब ईश्वर की दया से उसके पास गहने हो गये थे। फिर वह क्यों मन मारे घर में पड़ी रहती? वस्त्राभूषण कोई मिठाई तो नहीं, जिसका स्वाद एकान्त में लिया जा सके। आभूषणों को सन्दूकची में बन्द करके रखने से क्या फ़ायदा! मुहल्ले या बिरादरी में कहीं से बुलावा आता तो वह सास के साथ अवश्य जाती। कुछ दिनों के बाद सास की ज़रूरत भी न रही। वह अकेली ही आने-जाने लगी। फिर कार्य-प्रयोजन की भी कैद नहीं रही। उसके रूप-लावण्य, वस्त्राभूषण और शील-विनय ने मुहल्ले की स्त्रियों में उसे जल्दी ही सम्मान के पद पर पहुँचा दिया। उसके बिना मण्डली सूनी रहती थी। उसका कण्ठ-स्वर इतना कोमल था, भाषण इतना मधुर, छवि इतनी अनुपम, कि वह मण्डली की रानी मालूम होती थी। उसके आने से मुहल्ले के नारी-जीवन में जान-सी पड़ गयी। नित्य ही कहीं-न-कहीं जमाव हो जाता। घण्टे-दो-घण्टे गा-बजाकर या गप-शप करके रमणियाँ दिल बहला लिया करतीं। कभी किसी के घर कभी किसी के। फागुन में पन्द्रह दिन बराबर गाना होता रहा। जालपा ने जैसा रूप पाया था, वैसा ही उदार हृदय भी पाया था। पान-पत्ते का खर्च प्रायः उसी के मत्थे पड़ता। कभी-कभी गायनें बुलायी जातीं, उनके सेवा-सत्कार का भार उसी पर था। कभी-कभी वह स्त्रियों के साथ गंगा-स्नान करने जाती, तांगे का किराया और गंगा-तट पर जलपान का खर्च भी उसी के मत्थे जाता। इस तरह उसके दो-तीन रुपये रोज जाते थे। रमा आदर्श पति था, जालपा अगर मांगती तो प्राण तक उसके चरणों पर रख देता, रुपये की हक़ीकत ही क्या थी? उसका मुँह जोहता रहता

था। जालपा उससे इन जमघटों की रोज चर्चा करती। उसका स्त्री-समाज में कितना आदर-सम्मान है, यह देखकर वह फूला न समाता था।

एक दिन इस मण्डली को सिनेमा देखने की धुन सवार हुई। वहाँ की बहार देखकर सब-की-सब मुग्ध हो गयीं। फिर तो आये दिन सिनेमा की सैर होने लगी। रमा को अब तक सिनेमा का शौक़ न था। शौक होता भी तो क्या करता? अब हाथ में पैसे आने लगे थे; उस पर जालपा का आग्रह, फिर भला वह क्यों न जाता? सिनेमा-गृह में ऐसी कितनी ही रमणियां मिलतीं, जो मुँह खोले निःसंकोच हँसती-बोलती रहती थीं। उनकी आज़ादी गुप्तरूप से जालपा पर भी जादू डालती जाती थी। वह घर से बाहर निकलते ही मुँह खोल लेती; मगर संकोचवश परदे वाली स्त्रियों के ही स्थान पर बैठती। उसकी कितनी इच्छा होती कि रमा भी उसके साथ बैठता। आखिर वह उन फैशनेबुल औरतों से किस बात में कम है? रूप-रंग में वह हेठी नहीं। सजधज में किसी से कम नहीं। बातचीत करने में कुशल, फिर वह क्यों परदेवालियों के साथ बैठे? रमा बहुत शिक्षित न होने पर भी देश और काल के प्रभाव से उदार था। पहले तो वह परदे का ऐसा अनन्य भक्त था, कि माता को कभी गंगा-स्नान कराने लिवा जाता तो पण्डों तक से न बोलने देता। कभी माता की हँसी मर्दाने में सुनाई देती, तो आकर बिगड़ता—तुमको जरा भी शर्म नहीं है, अम्मा! बाहर लोग बैठे हुए हैं, और तुम हँस रही हो। माँ लज्जित हो जाती थी। किन्तु अवस्था के साथ रमा का यह लिहाज़ गायब होता जाता था। उस पर जालपा की रूप-छटा उसके साहस को और भी उत्तेजित करती थी। जालपा रूपहीन, काली-कलूटी, फूहड़ होती तो वह जबरदस्ती उसको परदे में बैठाता। उसके साथ घूमने या बैठने में उसे शर्म आती। जालपा जैसी अनन्य सुन्दरी के साथ सैर करने में आनन्द के साथ गौरव भी तो था। वहाँ के सभ्य समाज की कोई महिला रूप, गठन और शृङ्गार में जालपा की बराबरी न कर सकती थी। देहात की लड़की होने पर भी शहर के रंग में वह इस तरह रंग गयी थी, मानो जन्म से शहर ही में रहती आयी है। थोड़ी-सी कमी अँगरेजी शिक्षा की थी। उसे भी रमा पूरी किये देता था।

मगर पर्दे का यह बन्धन टूटे कैसे? भवन में रमा के कितने ही मित्र,

कितने ही जान-पहचान के लोग बैठे नज़र आते थे। वे उसे जालपा के साथ बैठे देखकर कितना हँसेंगे। आखिर एक दिन उसने समाज के सामने ताल ठोंककर खड़े हो जाने का निश्चय कर ही लिया। जालपा से बोला—आज हम तुम सिनेमा-घर में साथ बैठेंगे।

जालपा के हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी। हार्दिक आनन्द की आभा चेहरे पर झलक उठी। बोली—साथ! नहीं भाई, साथवालियाँ जीने न देंगी!

रमा०—इस तरह डरने से तो फिर कभी कुछ न होगा। यह क्या स्वांग है कि स्त्रियाँ मुँह छिपाये चिक की आड़ में बैठी रहें!

इस तरह यह मामला भी तय हो गया। पहले दिन दोनों झेंपते रहे; लेकिन दूसरे दिन से हिम्मत खुल गयी। कई दिनों के बाद वह समय भी आया, कि रमा और जालपा सन्ध्या समय पार्क में साथ-साथ टहलते दिखाई दिये।

जालपा ने मुसकराकर कहा—कहीं बाबूजी देख लें तो?

रमा०—तो क्या, कुछ नहीं।

जालपा—मैं तो मारे शर्म के गड़ जाऊँ!

रमा०—तभी तो मुझे भी शर्म आयेगी, मगर बाबूजी खुद ही इधर न आयेंगे!

जालपा—और जो कहीं अम्माजी देख लें?

रमा०—अम्मा से कौन डरता है, दो दलीलों में ठीक कर दूँगा।

दस ही पाँच दिन में जालपा ने नये महिला समाज में अपना रंग जमा लिया। उसने इस समाज में इस तरह प्रवेश किया, जैसे कोई कुशल वक्ता पहली बार परिषद् के मंच पर आता है। विद्वान् लोग उसकी उपेक्षा करने की इच्छा होने पर भी उसकी प्रतिभा के सामने सिर झुका देते हैं। जालपा भी 'आयी, देखा, और विजय कर लिया।' उसके सौन्दर्य में वह गरिमा, वह कठोरता, वह शान, वह तेजस्विता थी जो कुलीन महिलाओं के लक्षण हैं। पहले ही दिन महिला ने जालपा को चाय का निमन्त्रण दे दिया और जालपा इच्छा न रहने पर भी उसे अस्वीकार न कर सकी।

जब दोनों प्राणी वहाँ से लौटे, तो रमा ने चिन्तित स्वर में कहा—तो कल इसकी चाय-पार्टी में जाना पड़ेगा ?

जालपा—क्या करती ? इनकार करते भी तो न बनता था।

रमा०—तो सबेरे तुम्हारे लिए अच्छी-सी साड़ी ला दूँ ?

जालपा—क्या मेरे पास साड़ी नहीं है ? जरा देर के लिए पचास-साठ रुपये खर्च करने से फायदा !

रमा०—तुम्हारे पास अच्छी साड़ी कहाँ है ? इसकी साड़ी तुमने देखी ? ऐसी ही तुम्हारे लिए भी लाऊँगा।

जालपा ने विवशता के भाव से कहा—मुझे साफ़ कह देना चाहिए था कि फुरसत नहीं है।

रमा०—फिर इनकी दावत भी तो करनी पड़ेगी।

जालपा—यह तो बुरी विपत्ति गले पड़ी।

रमा०—विपत्ति कुछ नहीं है, सिर्फ यही खयाल है कि मेरा मकान इस काम के लायक नहीं। मेज, कुर्सियां, चाय के सेट रमेश के यहाँ से माँग लाऊँगा, लेकिन घर के लिए क्या करूँ ?

जालपा—क्या यह जरूरी है कि हम लोग भी दावत करें ?

रमा ने ऐसी भद्दी बात का कुछ उत्तर न दिया। उसे जालपा के लिए एक जूते की जोड़ी और सुन्दर कलाई की घड़ी की फिक्र पैदा हो गयी। उसके पास कौड़ी भी न थी। उसका खर्च रोज बढ़ता जाता था। अभी तक गहनेवालों को एक पैसा भी देने की नौबत न आयी थी। एक बार गंगू महाराज ने इशारे से तकाजा भी किया था। लेकिन यह भी तो नहीं हो सकता कि जालपा फटे हालों चाय पार्टी में जाये। नहीं, जालपा पर इतना अन्याय नहीं कर सकता। इस अवसर पर जालपा की रूप-शोभा का सिक्का बैठ जायेगा। सभी तो आज चमाचम साड़ियाँ पहने हुए थीं। जड़ाऊ कंगन और मोतियों के हारों की भी तो कमी न थी; पर जालपा अपने सादे आवरण में उनसे कोसों आगे थी। उसके सामने एक भी नहीं जँचती थीं। यह मेरे पूर्व कर्मों का का फल है कि मुझे ऐसी सुन्दरी मिली। आखिर यही तो खाने-पहनने और जीवन का आनन्द उठाने के दिन हैं। जब जवानी ही में सुख न उठाया, तो बुढ़ापे में क्या कर लेंगे। बुढ़ापे में मान लिया, धन हुआ

ही तो क्या ! यौवन बीत जाने पर विवाह किस काम का ? साड़ी और घड़ी लाने की उसे धुन सवार हो गयी। रात भर तो उसने सब्र किया। दूसरे दिन दोनों चीजें लाकर ही दम लिया।

जालपा ने झुंझलाकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था, कि इन चीजों का काम नहीं है। डेढ़ सौ से कम की न होंगी।

रमा०—डेढ़ सौ ! इतना फजूल-खर्च मैं नहीं हूँ।

जालपा—डेढ़ सौ से कम की यह चीजें नहीं हैं।

जालपा ने घड़ी कलाई में बांध ली और साड़ी को खोलकर मंत्र-मुग्ध नेत्रों से देखा।

रमा०—तुम्हारी कलाई पर यह घड़ी कैसी खिल रही है ! मेरे रुपये वसूल हो गये।

जालपा—सच बताओ, कितने रुपये खर्च हुए ?

रमा०—सच बता दूँ ? एक सौ पैंतीस रुपये। पचहत्तर रुपये की साड़ी दस के जूते और पच्चीस की घड़ी।

जालपा—यह डेढ़ सौ हो हुए, मैंने कुछ बढ़ाकर थोड़े कहा था। मगर यह सब रुपये अदा कैसे होंगे ? उस चुड़ैल ने व्यर्थ ही मुझे निमंत्रण दे दिया ! अब मैं बाहर जाना ही छोड़ दूँगी।

रमा भी इसी चिन्ता में मग्न था; पर उसने अपने भाव को प्रकट करके जालपा के हर्ष में बाधा न डाली। बोला—सब अदा हो जायेगा।

जालपा ने तिरस्कार के भाव से कहा--कहाँ से अदा हो जायेगा, जरा सुनूँ ? कौड़ी तो बचती नहीं, अदा कहाँ से हो जायेगा ? वह तो बाबूजी घर का खर्च सँभाले हुए हैं, नहीं तो मालूम होता। क्या तुम समझते हो कि मैं गहना और साड़ियों पर मरती हूँ ? इन चीजों को लौटा आओ।

रमा ने प्रेमपूर्ण नेत्रों से कहा—इन चीजों को रख लो। फिर तुमसे बिना पूछे कुछ न लाऊँगा।

सन्ध्या समय जब जालपा ने नयी साड़ी और नये जूते पहने, घड़ी कलाई पर बांधी और आईने में अपनी सूरत देखी, तो मारे गर्व और उल्लास के उसका मुख-मण्डल प्रज्ज्वलित हो उठा। उसने उन चीजों को लौटाने के लिए सच्चे दिल से कहा, पर इस समय वह इतना त्याग करने को तैयार

न थी। सन्ध्या समय जालपा और रमा छावनी की ओर चले। महिला ने केवल बँगले का नम्बर बतला दिया था। बँगला आसानी से मिल गया। फाटक पर साइनबोर्ड था—'इन्दुभूषण, ऐडवोकेट, हाइकोर्ट।' अब रमा को मालूम हुआ कि वह महिला पं० इन्दुभूषण की पत्नी थीं। पण्डितजी काशी के नामी वकील थे। रमा ने उन्हें कितनी ही बार देखा था; पर इतने बड़े आदमी से परिचय का सौभाग्य उसे कैसे होता। छः महीने पहिले वह कल्पना भी न कर सकता था, कि किसी दिन उसे उनके घर निमन्त्रित होने का गौरव प्राप्त होगा; पर जालपा की बदौलत आज वह अनहोनी बात हो गयी। वह काशी के सबसे बड़े वकील का मेहमान था।

रमा ने सोचा था कि बहुत से स्त्री-पुरुष निमंत्रित होंगे; पर यहाँ वकील साहब और उनकी पत्नी रतन के सिवा और कोई न था। रतन इन दोनों को देखते ही बरामदे में निकल आयी और उनसे हाथ मिलाकर अन्दर ले गयी, और अपने पति से उनका परिचय कराया। पंडितजी ने आराम कुर्सी पर लेटे-ही-लेटे दोनों मेहमानों से हाथ मिलाया और मुसकराकर कहा—क्षमा कीजिएगा बाबू साहब, मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। आप यहाँ किसी आफिस में हैं?

रमा ने झेंपते हुए कहा—जी हाँ, म्युनिसिपल आफिस में हूँ। अभी हाल ही में आया हूँ। कानून की तरफ़ जाने का इरादा था, पर नये वकीलों की यहाँ जो हालत हो रही है, उसे देखकर हिम्मत न पड़ी।

रमा ने अपना महत्व बढ़ाने के लिए ज़रा-सा झूठ बोलना अनुचित न समझा। इसका असर बहुत अच्छा हुआ। अगर वह साफ कह देता, मैं पच्चीस रुपये का क्लर्क हूँ, तो शायद वकील साहब उससे बातें करने में अपना अपमान समझते। बोले—आपने बहुत अच्छा किया जो इधर नहीं आये। वहाँ दो-चार साल के बाद आप अच्छी जगह पहुँच जायेंगे। यहाँ सम्भव है दस साल तक आपको कोई मुक़दमा ही न मिलता।

जालपा को अभी तक सन्देह हो रहा था कि रतन वकील साहब की बेटी है या पत्नी। वकील साहब की उम्र साठ से नीचे न थी। चिकनी चाँद आस-पास सुफेद बालों के बीच में वारनिश की हुई लकड़ी की भाँति चमक रही थी। मूछें साफ थीं, पर माथे की शिकन और गालों की झुर्रियाँ बतला रही थीं कि

यात्री संसार-यात्रा से थक गया है। आरामकुर्सी पर लेटे हुए वह ऐसे मालूम होते थे, जैसे बरसों के मरीज हों। 'हाँ, रंग गोरा था, जो साठ साल की गर्मी-सर्दी खाने पर भी उड़ न सका था। ऊँची नाक थी, ऊँचा माथा और बड़ी-बड़ी आँखें, जिनमें अभिमान भरा हुआ था। उनके मुख से ऐसा भासित होता था कि उन्हें किसी से बोलना या किसी बात का जवाब देना भी अच्छा नहीं लगता। इसके प्रतिकूल रतन सांवली, सुगठित युवती थी, बड़ी मिलनसार जिसे गर्व ने छुआ तक न था। सौन्दर्य का उसके रूप में कोई लक्षण न था नाक चिपटी थी, मुख गोल, आँखें छोटी, फिर भी वह रानी-सी लगती थी। जालपा उसके सामने ऐसी लगती थी, जैसे सूर्यमुखी के सामने जूही का फूल।

चाय आयी। मेवे, फल, मिठाई, बर्फ की कुल्फ़ी, सब मेज़ पर सजा दिये गये। रतन और जालपा एक मेज़ पर बैठीं। दूसरी मेज़ रमा और वकील साहब की थी। रमा तो मेज के सामने जा बैठा, मगर वकील साहब अभी आराम कुर्सी पर लेटे हुए थे।

रमा ने मुसकराकर वकील साहब से कहा—आप भी आयें।

वकील साहब ने लेटे-लेटे मुसकराकर कहा—शुरू कीजिए, मैं भी आया जाता हूँ।

लोगों ने चाय पी, फल खायें; पर वकील साहब के सामने हँसते-बोलते रमा और जालपा दोनों ही झिझकते थे। ज़िन्दादिल बूढ़ों के साथ तो सोहबत का आनन्द उठाया जा सकता है, लेकिन ऐसे रूखे निर्जीव मनुष्य जवान भी हों तो दूसरों को मुर्दा बना देते हैं। वकील साहब ने बहुत आग्रह करने पर दो घूँट चाय पी। दूर से बैठे तमाशा देखते रहे। इसलिए जब रतन ने जालपा से कहा—चलो, हम लोग जरा बगीचे की सैर करें, इन दोनों महाशयों को समाज और नीति की विवेचना करने दें, तो मानो जालपा के गले का फन्दा छूट गया। रमा ने पिंजड़े में बन्द पक्षी की भाँति उन दोनों को कमरे से निकलते देखा और एक लम्बी साँस ली। वह जानता कि यहाँ यह विपत्ति उसके सिर पर पड़ जायेगी, तो आने का नाम न लेता।

वकील साहब ने मुँह सिकोड़कर पहलू बदला और बोले—मालूम नहीं, पेट में क्या हो गया है, कि कोई चीज हजम नहीं होती। दूध भी हजम नहीं होता। चाय को न जाने लोग इतने शौक से क्यों पीते हैं, मुझे तो इसकी

सूरत से डर लगता है। पीते ही बदन में ऐंठन होने लगती है और आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगती हैं।

रमा ने कहा आपने हाज़मे की कोई दवा नहीं की?

वकील साहब ने अरुचि के भाव से कहा—दवाओं पर मुझे रत्ती भर भी विश्वास नहीं। इन वैद्यों और डाक्टरों से ज्यादा बेसमझ आदमी संसार में न मिलेंगे। किसी में निदान को शक्ति नहीं। दो वैद्यों, दो डाक्टरों के निदान कभी न मिलेंगे। लक्षण वही हैं, पर एक वैद्य रक्तदोष बतलाता है, दूसरा पित्तदोष। एक डाक्टर फेफड़े की सूजन बतलाता है, दूसरा आमाशय का विकार। बस, अनुमान से दवा की जाती है और निर्दयता से रोगियों की गर्दन पर छुरी फेरी जाती है। इन डाक्टरों ने मुझे तो अब तक जहन्नुम पहुँचा दिया होता; पर मैं उनके पंजे से निकल भागा। योगाभ्यास की बड़ी प्रशंसा सुनता हूँ, पर कोई ऐसे महात्मा नहीं मिलते जिनसे कुछ सीख सकूँ। किताबों के आधार पर कोई क्रिया करने से लाभ के बदले हानिहोने का डर रहता है?

यहाँ तो आरोग्य-शास्त्र का खंडन हो रहा था, उधर दोनों महिलाओं में अगाढ़ स्नेह की बातें हो रही थीं।

रतन ने मुसकराकर कहा—मेरे पतिदेव को देखकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य हुआ होगा?

जालपा को आश्चर्य ही नहीं, भ्रम भी हुआ था। बोली – वकील साहब का दूसरा विवाह होगा?

रतन—हाँ, अभी पाँच ही बरस तो हुए हैं। इनकी पहली स्त्री को मरे पैंतीस वर्ष हो गये। उस समय उनकी अवस्था कुल पच्चीस साल की थी। लोगों ने समझाया, दूसरा विवाह कर लो; पर इनके एक लड़का हो चुका था, विवाह करने से इन्कार कर दिया और तीस साल तक अकेले रहे। मगर आज पाँच वर्ष हुए जवान बेटे का देहान्त हो गया; तब विवाह करना आवश्यक हो गया। मेरे माँ-बाप न थे। मामाजी ने मेरा पालन किया था। कह नहीं सकती, इनसे कुछ ले लिया या इनकी सज्जनता पर मुग्ध हो गये। मैं तो समझती हूँ, ईश्वर की यही इच्छा थी, लेकिन मैं जब से आई हूँ, मोटी होती चली जाती हूँ। डाक्टरों का कहना है कि तुम्हें सन्तान नहीं हो सकती। बहन, मुझे तो संतान की लालसा नहीं है; लेकिन

मेरे पति देव मेरी दशा देखकर बहुत दुःखी रहते हैं। मैं ही इनके सब रोगों की जड़ हूँ। आज ईश्वर मुझे एक संतान दे दे, तो इनके सारे रोग भाग जायेंगे। कितना चाहती हूँ कि दुबली हो जाऊँ, गरम पानी से टब-स्नान करती हूँ, रोज़ पैदल घूमने जाती हूँ, घी-दूध बहुत कम खाती हूँ; भोजन आधा कर दिया है, जितना परिश्रम करते बनता है, करतीं हूँ; फिर भी दिन-दिन मोटी ही होती जाती हूँ। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ!

जालपा—वकील साहब तुमसे चिढ़ते होंगे?

रतन – नहीं बहन, बिलकुल नहीं, भूलकर भी मुझसे इसकी चर्चा नहीं की। उनके मुँह से कभी एक शब्द भी ऐसा नहीं निकला, जिससे उनकी मनोव्यथा प्रकट होती; पर मैं जानती हूँ, यह चिन्ता उन्हें मारे डालती है। अपना कोई बस नहीं है, क्या करूँ। मैं जितना चाहूँ खर्च करूँ, जैसे चाहूँ रहूँ, कभी नहीं बोलते। जो कुछ पाते हैं, लाकर मेरे हाथ में हाथ में रख देते हैं। समझाती हूँ, अब तुम्हें वकालत करने की क्या जरूरत है, आराम क्यों नहीं करते? पर इनसे घर पर बैठे रहा नहीं जाता। केवल दो चपातियों से नाता है। बहुत ज़िद की तो दो-चार दाने अंगूर खा लिये। मुझे तो उन पर दया आती है। अपने से जहाँ तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूँ। आखिर वह मेरे ही लिए तो अपनी जान खपा रहे हैं।

जालपा—ऐसे पुरुष को देवता समझना चाहिए। यहाँ तो एक स्त्री मरी नहीं, कि दूसरा ब्याह रच गया। तीस साल अकेले रहना सब का काम नहीं है।

रतन—हाँ बहन, हैं तो देवता ही। अब भी कभी उस स्त्री की चर्चा आ जाती है, तो रोने लगते हैं। तुम्हें इनकी तस्वीर दिखाऊँगी। देखने ने जितने कठोर मालूम होते हैं, भीतर से इनका हृदय उतना ही नर्म है। कितने ही अनाथों, विधवाओं और गरीबों के महीने बाँध रखे हैं। तुम्हारा यह कंगन तो बड़ा सुन्दर है।

जालपा—हाँ, बड़े अच्छे कारीगर का बनाया हुआ है।

रतन—मैं तो यहाँ किसी को जानती ही नहीं। वकील साहब को गहनों के लिए कष्ट देने की इच्छा नहीं होती। मामूली सोनारों से बनवाते डर लगता है, न जाने क्या मिला दें। मेरी सपत्नीजी के सब गहने रखे

हुए हैं; लेकिन वह मुझे अच्छे नहीं लगते। तुम बाबू रमानाथ से मेरे लिए ऐसा ही एक जोड़ा कंगन बनवा दो।

जालपा—देखिये, पूछती हूँ,

रतन—आज तुम्हारे आने से जी बहुत खुश हुआ। दिन भर अकेली पड़ी रहती हूँ। जो घबड़ाया करता है, किसके पास जाऊँ। किसी से परिचय नहीं और न मेरा मन ही चाहता है उनसे मैत्री करूँ। दो एक महिलाओं को बुलाया, उनके घर गयी, चाहा कि उनसे बहनापा जोड़ लूँ; लेकिन उनके आचार-विचार देखकर उनसे दूर रहना ही अच्छा मालूम हुआ। दोनों ही मुझे उल्लू बनाकर जटना चाहती थीं। मुझसे रुपए उधार ले गयीं और आज तक दे रही हैं। शृंगार की चीज़ों पर मैंने उनका इतना प्रेम देखा, कि कहते लज्जा आती है। तुम घड़ी-आध-घड़ी के लिए रोज चली आया करो बहन!

जालपा—वाह, इससे अच्छा और क्या होगा!

रतन—मैं मोटर भेज दिया करूँगी।

जालपा—क्या ज़रूरत है। ताँगे तो मिलते ही हैं।

रतन—न जाने क्यों तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता। तुम्हें पाकर रमानाथ जी अपना भाग्य सराहते होंगे।

जालपा ने मुसकराकर कहा—भाग्य-वाग्य तो कहीं नहीं सराहते, घुड़कियाँ जमाया करते हैं।

रतन—सच! मुझे तो विश्वास नहीं आता। लो वह भी तो आ गये। पूछना, ऐसा दूरा कंगन बनवा देंगे।

जालपा—(रमा से) क्यों चरनदास से कहा जाय तो ऐसा कंगन कितने दिन में बना देंगे? रतन ऐसा ही कंगन बनवाना चाहती हैं।

रमा ने तत्परता से कहा—हाँ बना क्यों नहीं सकता? इससे बहुत अच्छे बना सकता है।

रतन—इस जोड़े के क्या लिये थे?

जालपा—आठ सौ के थे।

रतन—कोई हरज नहीं, मगर बिल्कुल ऐसा ही हो, इसी नमूने का!

रमा०—हाँ-हाँ, बनवा दूँगा।

रतन—मगर भाई, अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुपये के मामले में पुरुष महिलाओं के सामने कुछ नहीं कह सकता। क्या वह कह सकता है, इस वक्त मेरे पास रुपये नहीं हैं? वह मर जायेगा पर यह उज्र न करेगा। वह कर्ज़ लेगा, दूसरों की खुशामद करेगा; पर स्त्री के सामने अपनी मजबूरी न दिखायेगा। रुपये की चर्चा को ही वह तुच्छ समझता है। जालपा पति की आर्थिक दशा अच्छी तरह जानती थी, पर यदि रमा ने इस समय कोई बहाना कर दिया होता, उसे बहुत बुरा मालूम होता। वह मन में डर रही थी कि कहीं यह महाशय यह न कह बैठें, सराफ़ से पूछकर कहूँगा। उसका दिल धड़क रहा था। पर जब रमा ने वीरता के साथ कहा—हाँ-हाँ, रुपये की कोई बात नहीं, जब चाहे दे दीजियेगा, तो वह खुश हो गयी।

रतन—तो कब तक आशा करूँ?

रमा०—मैं आज ही सराफ़ से कह दूँगा, तब भी पन्द्रह दिन तो लग ही जायेंगे।

जालपा—अबकी रविवार को मेरे ही घर पर चाय पीजिएगा।

रतन ने निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया और दोनों आदमी बिदा हुए। घर पहुँचे तो शाम हो गयी। रमेश बाबू बैठे हुए थे। जालपा तो तांगे से उतर कर अन्दर चली गयी, रमा रमेश बाबू के पास जाकर बोला—क्या आपको आये देर हुई?

रमेश—नहीं, अभी तो चला आ रहा हूँ। क्या वकील साहब के यहाँ गये थे?

रमा०—जी हाँ, तीन रुपये की चपत पड़ गयी।

रमेश०—कोई हरज नहीं, यह रुपये वसूल हो जायँगे। बड़े आदमियों से राह-रस्म हो जाये तो बुरा नहीं है, बड़े-बड़े काम निकलते हैं। एक दिन उन लोगों को भी तो बुलाओ।

रमा०—अब की इतवार को चाय की दावत दे आया हूँ।

रमेश०—कहो तो मैं भी आऊँ। जानते हो न वकील साहब के एक भाई इन्जीनियर हैं? मेरे एक साले बहुत दिनों से बेकार बैठे हैं। अगर वकील साहब उनकी सिफारिश कर दें, तो गरीब को जगह मिल जाये। तुम जरा मेरा इन्ट्रोडक्शन करा देना, बाकी और सब मैं कर लूँगा। पार्टी का इंतजाम

ईश्वर ने चाहा, तो ऐसा होगा कि मेम साहब खुश हो जायेंगी। चाय को सेट, शीशे के रंगीन गुलदान और फ़ानूस मैं ला दूँगा। कुर्सियाँ, मेजें सब मेरे ऊपर छोड़ दो। न कुली की जरूरत न मजूर की। उन्हीं मूसलचंद को रगेदूँगा।

रमा०—तब तो बड़ा मजा रहेगा। मैं तो बड़ी चिन्ता में पड़ा हुआ था।

रमेश०—चिन्ता की कोई बात नहीं; उसी लौंडे को जोत दूँगा। कहूँगा, जगह चाहते हो, तो कारगुजारी दिखाओ। फिर देखना, कैसी दौड़-धूप करता है।

रमा०—अभी दो-तीन महीने हुए आप अपने साले को कहीं नौकर रखा चुके हैं न ?

रमेश०—अजी, अभी छः और बाकी हैं। पूरे सात जीव हैं। जरा बैठ जाओ, जरूरी चीजों की सूची बना ली जाये। आज ही से दौड़-धूप होगी, तब सब चीजें जुटा सकूँगा। और कितने मेहमान होंगे ?

रमा०—मेम साहब होंगी, और शायद वकील साहब भी आयें।

रमेश०—यह बहुत अच्छा किया। बहुत-से आदमी हो जाते, तो भम्भड़ हो जाता। हमें तो मेम साहब से काम है। ठलुओं की खुशामद करने से क्या फ़ायदा ?

दोनों आदमियों ने सूची तैयार की। रमेश बाबू ने दूसरे ही दिन से सामान जमा करना शुरू किया। उनकी पहुँच अच्छे-अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी-अच्छी चीजें बटोर लाये। सारा घर जगमगा उठा। दयानाथ भी इन तैयारियों में शरीक थे। चीजों को क़रीने से सजाना उनका काम था। कौन गमला कहाँ रखा जाये, कौन तस्वीर कहाँ लटकाई जाये, कौन-सा गलीचा कहाँ बिछाया जाये, इन प्रश्नों पर तीनों मनुष्यों में घंटों वाद-विवाद होता था। दफ्तर जाने के पहले और दफ्तर से आने के बाद तीनों इन्हीं कामों में जुट जाते थे। एक दिन इस बात पर बहस छिड़ गई कि कमरे में आईना कहाँ रखा जाये। दयानाथ कहते थे, इस कमरे में आईने की जरूरत नहीं। आईना पीछे वाले कमरे में रखना चाहिए। रमेश इसका विरोध कर रहे थे। रमा दुविधे में चुपचाप खड़ा था। न इनकी-सी कह सकता था, न उनकी-सी।

दया०—मैंने सैकड़ों अंगरेजों के ड्राइंग-रूम देखे हैं, कहीं आईना नहीं

देखा। आईना शृङ्गार के कमरे में रहना चाहिए। यहाँ आईना रखना बेतुकी-सी बात है।

रमेश०—मुझे सैकड़ों अंगरेज़ों के कमरों को देखने का अवसर तो नहीं मिला है; लेकिन दो-चार जरूर देखे हैं और उनमें आईना लगा हुआ देखा। फिर क्या यह जरूरी बात है कि इन ज़रा-ज़रा सी बातों में भी हम अंगरेजों की नकल करें? हम अंगरेज़ नहीं हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दुस्तानी रईसों के कमरे में बड़े-बड़े आदमक़द आईने रखे जाते हैं। यह तो आपने हमारे बिगड़े हुए बाबुओं की-सी बात कही, जो पहनावे में, कमरे की सजावट में, बोली में, चाय और शराब में, चीनी की प्यालियों में—ग़रज़ दिखावे की सभी बातों में तो अंगरेज़ों को मुँह चिढ़ाते हैं; लेकिन जिन बातों ने अंगरज़ों को अंगरेज बना दिया है; और जिनकी बदौलत वे दुनिया पर राज्य करते हैं, उनकी हवा तक नहीं छू जाती है। क्या आपको भी बुढ़ापे में अंगरेज़ बनने का शौक चर्राया है?

दयानाथ अंगरेज़ों की नकल को बहुत बुरा समझते थे। वह चाय पार्टी भी उन्हें बुरी मालूम हो रही थी। अगर कुछ सन्तोष था, तो यही कि दो-चार बड़े आदमियों से परिचय हो जायेगा। उन्होंने अपनी जिन्दगी में कभी कोट नहीं पहना था। चाय पीते थे; मगर चीनी के सेट की कैद न थी। कटोरा-कटोरी, गिलास, लोटा, तसला, किसी से भी उन्हें आपत्ति न थी; लेकिन इस वक्त उन्हें अपना पक्ष निभाने की पड़ी थी। बोले—हिन्दुस्तानी रईसों के कमरे में मेज कुर्सियाँ नहीं होतीं। फर्श होता है। आपने कुर्सी-मेज लगाकर इसे अंगरेजी ढंग पर तो बना दिया; अब आईने के लिए हिन्दुस्तानियों को मिसाल दे रहे हैं। या तो हिन्दुस्तानी रखिए या अंगरेजी। यह क्या कि आधा तीतर आधा बटेर! कोट-पतलून पर चौगोसिया टोपी तो नहीं अच्छी मालूम होती!

रमेश बाबू ने समझा था कि दयानाथ की जबान बन्द हो जायेगी; लेकिन यह जवाब सुना तो चकराये। मैदान हाथ से जाता हुआ दिखाई दिया। बोले—तो आपने किसी अंगरेज के कमरे में आईना नहीं देखा? भला ऐसे दस-पाँच अंगरेज़ों के नाम तो बतलाइए? एक आपका वही किरंटा हेड क्लर्क है, उसके सिवा और किसी अँगरेज के कमरे में तो शायद

आपने कदम भी न रखा हो। उसी किरंटे को आपने अंगरेजी रुचि का आदर्श समझ लिया ? मानता हूँ।

दया०—यह तो आपकी जबान है, उसे किरंटा, चमरेशियन, पिलपिली जो चाहे कहें, लेकिन रंग को छोड़कर वह किसी बात में अँगरेजों से कम नहीं। और उसके पहले तो योरोपियन था।

रमेश इसका कोई जवाब सोच ही रहे थे कि एक मोटरकार द्वार पर आकर रुकी, और रतनबाई उतरकर बरामदे में आयीं। तीनों आदमी चटपट बाहर निकल आये। रमा को इस वक्त रतन का आना बुरा मालूम हुआ। डर रहा था, कि कहीं कमरे में भी न चली आयें, नहीं तो सारी कलई खुल जायेगी। आगे बढ़कर हाथ मिलाता हुआ बोला—आइए, यह मेरे पिता हैं, वह मेरे दोस्त रमेश बाबू हैं। लेकिन उन दोनों सज्जनों ने न हाथ बढ़ाया और न जगह से हिले। सकपकाये-से खड़े रहे। रतन ने भी उनसे हाथ मिलाने की ज़रूरत न समझी। दूर ही से उनको नमस्कार करके रमा से बोली—नहीं बैठूँगी नहीं। इस वक्त फुरसत नहीं है। आपसे कुछ कहना था।

यह कहते हुए रमा के साथ मोटर तक आयी और आहिस्ता से बोली—आपने सराफ़ से कह तो दिया होगा ?

रमा ने निःसंकोच होकर कहा—जी हाँ, बना रहा है।

रतन—उस दिन मैंने कहा था, अभी रुपये न दे सकूँगी; पर मैंने समझा शायद आपको कष्ट हो इसलिए रुपये मँगवा लिये। आठ सौ चाहिए न ?

जालपा ने कंगन का दाम आठ सौ बताया था। रमा चाहता तो इतने रुपये ले सकता था; पर रतन की सरलता और विश्वास ने उसके हाथ पकड़ लिये। ऐसी उदार निष्कपट रमणी के साथ वह विश्वासघात न कर सका। वह व्यापारियों से दो-दो, चार-चार आने लेते ज़रा भी न झिझकता था। वह जानता था कि वे सब भी ग्राहकों को उलटे छूरे से मूड़ते हैं। ऐसों के साथ ऐसा व्यवहार करते हुए उसकी आत्मा को लेशमात्र भी संकोच न होता था; लेकिन इस देवी के साथ यह कपट व्यवहार करने के लिये किसी पुराने पापी की ज़रूरत थी। कुछ सकुचाता हुआ बोला—क्या जालपा ने कंगन के दाम आठ सौ बतलाये थे ? उन्हें शायद याद न रही होगी। उसके कंगन छः सौ के हैं। आप चाहें, तो आठ सौ का बनवा दूँ

रतन—नहीं, मुझे तो वही पसन्द है। आप छः सौ का ही बनवाइए।

उसने मोटर पर से अपनी थैली उठाकर सौ-सौ रुपये के छः नोट निकाले। रमा ने कहा—ऐसी जल्दी क्या थी, चीज़ तैयार हो जाती, तब हिसाब हो जाता।

रतन०—मेरे पास रुपये खर्च हो जाते। इसलिए मैंने सोचा, आपके सिर पर लाद आऊँ। मेरी आदत है कि जो काम करती हूँ, जल्द-से-जल्द कर डालती हूँ। विलम्ब से मुझे उलझन होती है।

यह कहकर वह मोटर पर बैठ गयी, मोटर हवा हो गयी। रमा संदूक में रुपये रखने के लिए अन्दर चला गया, तो दोनों वृद्धजनों में बातें होने लगीं।

रमेश०—देखा?

दया०—जी हाँ, आँखें खुली हुई थीं। अब मेरे घर में भी हवा आ रही है। ईश्वर ही बचाये।

रमेश०—बात तो ऐसी ही है; पर आजकल ऐसी ही औरतों का काम है। जरूरत पड़े, तो कुछ मदद तो कर सकती हैं। बीमार पड़ जाओ तो डाक्टर को बुला सकती हैं, यहाँ तो चाहे हम मर जायें, तब भी क्या मजाल कि स्त्री घर से बाहर पाँव निकाले।

दया०—हमसे तो भाई यह अंगरेजियत नहीं देखी जाती। क्या करें सन्तान की ममता है, नहीं तो यही जी चाहता है कि रमा से साफ़ कह दूँ, भैया अपना घर अलग लेकर रहो। आँख फूटी, पीर गयी। मुझे तो उन मर्दों पर क्रोध आता है, जो स्त्रियों को सिर चढ़ाते हैं। देख लेना, एक दिन यह औरत वकील साहब को दग़ा देगी।

रमेश०—महाशय, इस बात में मैं तुमसे सहमत नहीं। यह क्यों मान लेते हो कि जो औरत बाहर आती जाती है, वह जरूर बिगड़ी हुई है? मगर वह रमा को मानती बहुत है। रुपये न जाने किस लिये दिये?

दया०—मुझे तो इसमें कुछ गोल-माल मालूम होता है। रमा कहीं उससे कोई चाल न चल रहा हो?

इसी समय रमा भीतर से निकला आ रहा था। अन्तिम वाक्य उसके कान में पड़ गया। भौंहें चढ़ाकर बोला—जी हाँ, जरूर चाल चल रहा हूँ। उसे धोखा देकर रुपया ऐंठ रहा हूँ। यही तो मेरा पेशा है!

दयानाथ ने झेंपते हुए कहा—तो इतना बिगड़ते क्यों हो, मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं कही ?

रमा०—पक्का जालिया बना दिया, और क्या कहते ? आपके दिल में ऐसा शुबहा क्यों आया ? आपने मुझमें कौन-सी बात देखी जिससे आपको यह खयाल पैदा हुआ ? मैं ज़रा साफ़-सुथरे कपड़े पहनता हूँ, जरा नयी प्रथा के अनुसार चलता हूँ, इसके सिवा आपने मुझमें कौन-सी बुराई देखी ? मैं जो कुछ खर्च करता हूँ, ईमानदारी से कमाकर खर्च करता हूँ। जिस दिन धोखे और फरेब की नौबत आयेगी ज़हर खाकर प्राण दे दूँगा। हाँ, यह बात है कि किसी को खर्च करने की तमीज होती है, किसी को नहीं होती। यह अपनी सुबुद्धि है। अगर इसे आप धोखेबाजी समझें, तो आपको अख्तियार है। जब आपकी तरफ से मेरे विषय में ऐसे संशय होने लगे, तो मेरे लिए यही अच्छा है कि मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ। रमेश बाबू यहाँ मौजूद हैं। आप इनसे मेरे विषय मे जो कुछ चाहें, पूछ सकते हैं। यह मेरे खातिर झूठ न बोलेंगे।

सत्य के रंग में रंगी हुई बातों ने दयानाथ को आश्वस्त कर दिया। बोले—जिस दिन मुझे मालूम हो जायेगा कि तुमने यह ढंग अख्तियार किया है तुम्हारे पहले मैं मुंह में कालिख लगाकर निकल जाऊँगा। तुम्हारा बढ़ता हुआ खर्च देखकर मेरे मन में सन्देह हुआ था, मैं इसे छिपाता नहीं हूँ; लेकिन जब तुम कह रहे हो, तुम्हारी नीयत साफ़ है, तो मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ, मेरा लड़का चाहे गरीब रहे पर नीयत न बिगड़े। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह तुम्हें सत्पथ पर रखे।

रमेश ने मुसकराकर कहा—अच्छा, यह किस्सा तो हो चुका; अब यह बताओ उसने तुम्हें रुपये किस लिए दिये ? मैं गिन रहा था, छः नोट थे, शायद सौ-सौ के थे।

रमा०—ठग लाया हूँ।

रमेश—मुझसे शरारत करोगे, तो मार बैठूँगा। अगर जट हो लाये हो, तो भी मैं तुम्हारी पीठ ठोकूँगा, जीते रहो। खूब जटो; लेकिन आबरू पर आँच न आने पाये। किसी को कानोंकान खबर न हो। ईश्वर से तो मैं डरता नहीं। वह जो कुछ पूछेगा, उसका जवाब मैं दे लूँगा; मगर

आदमी से डरता हूँ। बताओ, किस लिए रुपये दिये ? कुछ दलाली मिलने वाली हो तो मुझे भी शरीक कर लेना।

रमा०—जड़ाऊ कंगन बनवाने को कह गयी हैं।

रमेश०—तो चलो मैं एक अच्छे सराफ़ से बनवा दूँ। यह झंझट तुमने बुरा मोल लिया। औरत का स्वभाव तुम जानते नहीं। किसी पर विश्वास तो इन्हें आता ही नहीं। तुम चाहे दो-चार रुपये अपने पास ही से खर्च कर दो पर वह यही समझेंगी कि मुझे लूट लिया। नेकनामी तो शायद ही मिले, हाँ, बदनामी तैयार खड़ी है।

जरा देर बाद रमा अन्दर जाकर जालपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थीं।

जालपा—सच ! तब तो बड़ा गड़बड़ हुआ होगा ? यहाँ कुछ तैयारी तो थी ही नहीं।

रमा०—कुशल यही हुई कि कमरे में नहीं आयीं। कंगन के रुपये देने आयी थीं। तुमने शायद आठ सौ रुपये बताये थे। मैंने छः सौ ले लिये।

जालपा ने झेंपते हुए कहा—मैंने दिल्लगी की थी।

जालपा ने इस तरह अपनी सफ़ाई तो दे दी, लेकिन बहुत देर तक उसके मन में उथलपुथल होती रही। रमा ने अगर आठ सौ रुपये ले लिये होते, तो शायद यह उथल-पुथल न होती। वह अपनी सफलता पर खुश होती; पर रमा के विवेक ने उसकी धर्म-बुद्धि को जगा दिया था। वह पछता रही थी कि मैं व्यर्थ झूठ बोली ! यह मुझे अपने मन में कितना नीच समझ रहे होंगे। रतन भी मुझे कितनी बेईमान समझ रही होगी।

१६

चाय-पार्टी में कोई विशेष बात नहीं हुई। रतन के साथ उसकी एक नाते की बहन और थी। वकील साहब न आये थे। दयानाथ ने उतनी देर के लिए घर से टल जाना ही उचित समझा। हाँ, रमेश बाबू बरामदे में बराबर खड़े रहे। रमा ने कई बार चाहा कि उन्हें भी पार्टी में शरीक कर लें, पर रमेश में इतना साहस न था।

जालपा ने दोनों मेहमानों को अपनी सास से मिलाया। ये युवतियाँ उन्हें कुछ ओछी जान पड़ीं। उनका सारे घर में दौड़ना, धम्-धम् करके कोठे

पर जाना, छत पर इधर-उधर उचकना, खिलखिलाकर हँसना उन्हें हुड़दंग-पन मालूम होता था। उनकी नीति में बहू-बेटियों को भारी और लज्जा-शील होना चाहिए था। आश्चर्य यह था कि आज जालपा भी उन्हें में मिल गयी थी। रतन ने आज कंगन की चर्चा तक न की।

अभी तक रमा को पार्टी की तैयारियों से इतनी फुर्सत नहीं मिली थी कि गंगू की दूकान तक जाता। उसने समझा था, गंगू को छः सौ रुपये दे दूँगा तो पिछले हिसाब में जमा हो जायँगे। केवल ढाई सौ रुपये और रह जायेंगे। इस नये हिसाब में छः सौ और मिलाकर फिर साढ़े आठ सौ रुपये रह जायेंगे। इस तरह उसे अपनी साख जमाने का सुअवसर मिल जायेगा।

दूसरे दिन रमा खुश होता हुआ गंगू की दूकान पर पहुँचा और रोब से बोला—क्या रंग-ढंग है महाराज, कोई नयी चीज बनवायी है इधर?

रमा के टालमटोल से गंगू इतना विरक्त हो रहा था कि आज कुछ रुपये मिलने की आशा भी उसे प्रसन्न न कर सकी। शिकायत के ढंग से बोला—बाबू साहब, चीजें कितनी बनीं और कितनी बिकीं। आपने तो दूकान पर आना ही छोड़ दिया। इस तरह की दूकानदारी हम लोग नहीं करते। आठ महीने हुए, आपके यहाँ से एक पैसा भी नहीं मिला।

रमा०—भाई, खाली हाथ दूकान पर आते शर्म आती है। हम उन लोगों में नहीं हैं, जिनसे तकाजा करना पड़े आज यह छः सौ रुपये जमा कर लो, और एक अच्छा कंगन तैयार कर दो।

गंगू ने रुपये लेकर संदूक में रखे, और बोला—बन जायेंगे। बाकी रुपये कब तक मिलेंगे?

रमा०—बहुत जल्द।

गंगू—हाँ बाबूजी, अब पिछला हिसाब साफ़ कर दीजिए।

गंगू ने बहुत जल्द कंगन बनवाने का वचन दिया, लेकिन एक बार सौदा करके उसे मालूम हो गया था कि यहाँ से जल्दी रुपये वसूल होने वाले नहीं। नतीजा यह हुआ कि रमा रोज तकाजा करता और गंगू रोज हीले करके टालता। कभी कारीगर बीमार पड़ जाता, कभी अपनी स्त्री की दवा कराने ससुराल चला जाता, कभी उसके लड़के बीमार हो जाते। एक महीना गुजर गय। और कंगन न बने। रतन के तकाजों के डर से रमा ने पार्क जाना छोड़

दिया; मगर उसने घर तो देख ही रखा था। इस एक महीने में कई बार तकाजा करने आयी। आखिर जब सावन का महीना आ गया तो एक दिन उसने रमा से कहा—यह सूअर नहीं बनाकर देता, तो तुम किसी और कारीगर को क्यों नहीं देते।

रमा०—उस पाजी ने ऐसा धोखा दिया कि कुछ न पूछो। बस, रोज आज कल किया करता है। मैंने बड़ी भूल की जो उसे पेशगी रुपये दे दिये। अब उस रुपये निकालना मुश्किल है।

रतन—आप मुझे उसकी दूकान दिखा दीजिए, मैं उसके बाप से वसूल कर लूँगी! तावान अलग! ऐसे बेईमान आदमी को पुलिस में देना चाहिए।

जालपा ने कहा—हाँ, और क्या, सभी सुनार देर करते हैं; मगर ऐसा नहीं कि रुपये डकार जायँ और चीज के लिए महीनों दौड़ायें।

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—आप दस दिन और सब्र करें, मैं आज ही उससे रुपये लेकर किसी दूसरे सराफ़ को दे दूँगा।

रतन—आप मुझे उस बदमाश की दुकान क्यों नहीं दिखा देते? मैं हंटर से बात करूँ।

रमा०—कहता तो हूँ। दस दिन के अन्दर आपको कंगन मिल जायेंगे।

रतन—आप खुद ही ढील डाले हुए हैं। आप उसकी लल्लो-चप्पो की बातों में आ जाते होंगे। एक बार कड़े पड़ जाते, तो मजाल थी कि यों हीले-हवाले करता!

आखिर रतन बड़ी मुश्किल से बिदा हुई। उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब दे दिया—बिना आधे रुपये लिये कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक हो जाना चाहिए।

रमा को मानो गोली लग गयी। बोला—महाराज, यह तो भलमंसी नहीं है। एक महिला की चीज है, उन्होंने पेशगी रुपये दिये थे। सोचो, मैं उन्हें क्या मुँह दिखाऊँगा। मुझसे अपने रुपये के लिये पुरनोट लिखा लो, स्टाम्प लिखा लो, और क्या करोगे?

गंगू—पुरनोट को शहद लगाकर चाटूँगा क्या? आठ-आठ महीने का उधार नहीं होता। महीना, दो महीना बहुत है। आप तो बड़े आदमी हैं। आपके लिये पाँच-छः सौ रुपये कौन बड़ी बात है। कंगन तैयार है।

रमा ने दाँत पीसकर कहा—अगर यही बात थी तो तुमने एक महीना पहले क्यों न कह दिया ? अब तक मैंने रुपये की कोई फिक्र की होती न !

गंगू—मैं क्या जानता था, आप इतना भी नहीं समझ रहे हैं ।

रमा निराश होकर घर लौट आया । अगर इस समय भी उसने जालपा से सारा वृतान्त साफ़-साफ़ कह दिया होता तो उसे चाहे कितना ही दुःख होता, पर वह अपना कंगन उतारकर दे देती, लेकिन रमा में इतना साहस न था । वह अपनी आर्थिक कठिनाइयों की दशा कहकर उसके कोमल हृदय पर आघात न कर सकता था ।

इसमें सन्देह नहीं कि रमा को सौ रुपये के करीब ऊपर से मिल जाते थे, और वह किफायत करना जानता, तो इन आठ महीनों में दोनों सराफ़ों के कम-से-कम आधे रुपये अवश्य दे देता; लेकिन ऊपर की आमदनी थी, तो ऊपर का खर्च भी था । जो कुछ मिलता था, सैर सपाटे में खर्च हो जाता था और सराफ़े का देना किसी एकमुश्त रक़म की आशा में रुका हुआ था । कौड़ियों से रुपये बनाना वणिकों का ही काम है। बाबू लोग तो रुपये की कौड़ियाँ ही बनाते हैं ।

कुछ रात जाने पर रमा ने एक बार फिर सराफ़े का चक्कर लगाया । बहुत चाहा, किसी सराफ़ को फाँसा दूँ, पर कहीं दाल न गली । बाजार में बेतार की खबरें चला करती हैं ।

रमा को रात भर नींद नहीं आयी । यदि आज उसे एक हजार का रुक्का लिखकर कोई पाँच सौ रुपये भी दे देता तो वह निहाल हो जाता, पर अपनी जान-पहचान वालों में उसे ऐसा कोई नज़र न आता था । अपने मिलने-वालों में उसने सभी से अपनी हवा बाँध रखी थी । खिलाने-पिलाने में खुले हाथ रुपया खर्च करता था । अब किस मुँह से अपनी विपत्ति कहे ? वह पछता रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिये । गंगू नालिश करने तो जाता न था । इस समय यदि रमा को कोई भयंकर रोग हो जाता तो वह उसका स्वागत करता । कम-से-कम दस-पाँच दिन की मुहलत तो मिल जाती; मगर बुलाने से तो मौत भी नहीं आती । वह तो उसी समय आती है जब हम उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते । ईश्वर कहीं से कोई तार ही भिजवा दे । कोई ऐसा मित्र भी नज़र नहीं आता था, जो उसके नाम पर फ़र्जी तार भेज

देता। वह इन्हीं चिन्ताओं में करवट बदल रहा था, कि जालपा की आँख खुल गयी। रमा ने तुरन्त चादर से मुँह छिपा लिया, मानो बेख़बर सो रहा है। जालपा ने धीरे से चादर हटाकर उसका मुँह देखा, और उसे सोता पाकर ध्यान से उसका मुंह देखने लगी। जागरण और निद्रा का अन्तर उससे छिपा न रहा। उसे धीरे से हिलाकर बोली—क्या अभी तक जाग रहे हो?

रमा०—क्या जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। पड़े-पड़े सोचता था, कुछ दिनों के लिये बाहर चला जाऊँ। कुछ रुपये कमा लाऊँ।

जालपा—मुझे तो लेते चलोगे न?

रमा०—तुम्हें परदेश में कहाँ लिये फिरूँगा?

जालपा—तो मैं यहाँ अकेली रह चुकी। एक मिनट तो रहूँगी नहीं। मगर जाओगे कहाँ?

रमा०—अभी कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ।

जालपा—तो क्या सचमुच तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? मुझसे तो एक दिन भी न रहा जाय। मैं समझ गयी, तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते। केवल मुँह देखे की प्रीति करते हो।

रमा०—तुम्हारे प्रेम-पाश ही ने मुझे यहाँ बाँध रखा है। नहीं तो अब तक कभी चला गया होता।

जालपा—बातें बना रहे हो। अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कोई पर्दा न रखते। तुम्हारे मन में कोई ऐसी जरूरी बात है, जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूँ, तुम चिन्ता में डूबे रहते हो। मुझसे क्यों नहीं कहते? जहाँ विश्वास नहीं हैं, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है?

रमा०—यह तुम्हारा भ्रम है, जालपा। मैंने तो तुमसे कभी पर्दा नहीं रखा।

जालपा—तो तुम मुझे सचमुच दिल से चाहते हो?

रमा०—यह क्या मुँह से कहूँगा जभी?

जालपा—अच्छा, अब मैं एक प्रश्न करती हूँ। सँभले रहना। तुम मुझसे क्यों प्रेम करते हो? तुम्हें मेरी क़सम है, सच बताना।

रमा०—यह तो तुमने बेढब प्रश्न किया। अगर मैं तुमसे यही प्रश्न पूछूँ तो तुम क्या जवाब दोगी?

जालपा—मैं तो जानती हूँ।

रमा—बताओ।

जालपा—तुम बतला दो, मैं भी बतला दूँ।

रमा०—मैं तो जानता ही नहीं। केवल इतना ही जानता हूँ कि तुम मेरे रोम-रोम में रम रही हो।

जालपा—सोचकर बतलाओ। मैं आदर्श पत्नी नहीं हूँ, इसे मैं खूब जानती हूँ। पति-सेवा अब तक मैंने नाम को भी नहीं की। ईश्वर की दया से तुम्हारे लिए अब तक कष्ट सहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। घर-गृहस्थी का कोई काम मुझे नहीं आता। जो कुछ सीखा, यहीं सीखा। फिर तुम्हें मुझसे क्यों प्रेम है? बातचीत में निपुण नहीं। रूप-रंग भी ऐसा आकर्षक नहीं। जानते हो, मैं तुमसे क्यों ये प्रश्न कर रही हूँ?

रमा०—क्या जाने भाई, मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा है।

जालपा—मैं इसलिए पूछ रही हूँ कि तुम्हारे प्रेम को स्थायी बना सकूँ।

रमा०—मैं कुछ नहीं जानता जालपा, ईमान से कहता हूँ, तुममें कोई कमी है, कोई दोष है, यह बात आज तक मेरे ध्यान में नहीं आयी। लेकिन तुमने मुझमें कौन-सी बात देखी? न मेरे पास धन है, न विद्या है, न रूप है। बताओ

जालपा—बता दूँ? मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूँ। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, जब मैं यहाँ आयी तो यद्यपि तुम्हें अपना पति समझती थी, लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे चिन्ता होती थी कि तुम उसे पसन्द करोगे या नहीं। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पुरुष से हुआ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता। यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है। पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृष्ण से भी न बदलूँगी। लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है। तुम अब भी मुझसे किसी-किसी बात में पर्दा रखते हो।

रमा०—यह तुम्हारी केवल शंका है जालपा। मैं दोस्तों से भी कोई दुराव नहीं करता। फिर तुम तो मेरी हृदेश्वरी हो।

जालपा—मेरी तरफ़ देखकर बोलो, आँखें नीची करना मर्दों का काम नहीं है।

रमा के जी में एक बार फिर आया, कि अपनी कठिनाइयों की कथा कह सुनाऊँ, लेकिन मिथ्या-गौरव ने फिर उसकी ज़बान बन्द कर दी।

जालपा जब उससे पूछती, सराफ़ों के रुपये देते जाते हो या नहीं, तो वह बराबर कहता, कुछ-न-कुछ हर महीने देता रहता हूँ। पर आज रमा की दुर्बलता ने जालपा के मन में एक सन्देह पैदा कर दिया था। वह उसी सन्देह को मिटाना चाहती थी। जरा देर के बाद उसने पूछा—सराफ़ों के तो अभी सब रुपये अदा न हुए होंगे?

रमा०—अब थोड़े ही बाकी हैं।

जालपा—कितने बाकी होंगे, कुछ हिसाब-किताब लिखते हो?

रमा०—हाँ, लिखता क्यों नहीं। सात सौ से कुछ कम ही होंगे।

जालपा—तब तो पूरी गठरी है तुमने कहीं रतन के रुपये तो नहीं दे दिये?

रमा दिल में काँप रहा था, कहीं जालपा यह प्रश्न न कर बैठे। आखिर उसने यह प्रश्न पूछ ही लिया। उस वक्त भी यदि रमा ने साहस करके सच्ची बात स्वीकार कर ली होती तो शायद उसके संकटों का अन्त हो जाता। जालपा एक मिनट तक अवश्य सन्नाटे में आ जाती। सम्भव है, क्रोध और निराशा के आवेश में दो-चार कटु शब्द मुँह से निकालती; लेकिन फिर शान्त हो जाती। दोनों मिलकर कोई-न-कोई युक्ति सोच निकालते। जालपा यदि रतन से यह रहस्य कह सुनाती, तो रतन अवश्य मान जाती। पर हाय रे आत्मगौरव! रमा ने यह बात सुनकर ऐसा मुंह बना लिया मानो जालपा ने उस पर कोई निष्ठुर प्रहार किया हो। बोला—रतन के रुपये क्यों देता। आज चाहूँ, तो दो-चार हजार का माल ला सकता हूँ। कारीगरों की आदत देर करने की होती है! सुनार की खटाई मशहूर है। बस, और कोई बात नहीं। दस दिन में या तो तैयार ही लाऊँगा या रुपये वापस कर दूँगा, मगर यह शंका तुम्हें क्योंकर हुई? रक़म भला मैं अपने खर्च में कैसे लाता?

जालपा—कुछ नहीं, मैंने योंही पूछा था।

जालपा को थोड़ी देर में नींद आ गयी, पर रमा फिर उसी उधेड़बुन में पड़ा। कहाँ से रुपये लाये? अगर वह रमेश बाबू से साफ़-साफ़ कह

दे, तो वह किसी महाजन से दिला देंगे, लेकिन नहीं। वह उनसे किसी तरह न कह सकेगा। उसमें इतना साहस न था।

उसने प्रातःकाल नाश्ता करके दफ़्तर की राह ली। शायद वहाँ कुछ प्रबंध हो जाय। कौन प्रबंध करेगा, इसका उसे ध्यान न था। जैसे रोगी वैद्य के पास जाकर सन्तुष्ट हो जाता है; पर यह नहीं जानता, मैं अच्छा हूँगा या नहीं! यही दशा इस समय रमा की थी। दफ्तर में चपरासी के सिवा और कोई न था। रमा रजिस्टर खोलकर अंकों की जाँच करने लगा। कई दिनों से मीजान नहीं किया गया था; पर बड़े बाबू के हस्ताक्षर मौजूद थे। अब मीजान किया, तो ढाई हजार निकले। एकाएक उसे एक नयी बात सूझी। क्यों न ढाई हजार की जगह मीजान में दो हजार लिख दूँ? रसीद बही की जाँच कौन करता है? अगर चोरी पकड़ भी गई, तो कह दूँगा, मीजान लगाने में गलती हो गई। मगर इस विचार को उसने मन में टिकने न दिया। इस भय से कि कहीं चित्त चंचल न हो जाय, उसने पेंसिल से अंकों पर रोशनाई फेर दी, और रजिस्टर को दराज में बन्द करके इधर-उधर घूमने लगा।

इक्की-दुक्की गाड़ियाँ आने लगीं। गाड़ीवानों ने देखा, बाबू साहब आज यहीं हैं, तो सोचा जल्दी चुंगी देकर छुट्टी पा जायँ। रमा ने इस कृपा के लिये दस्तूरी की दूनी रकम वसूल की और गाड़ीवानों ने शौक से दी, क्योंकि यही मंडी का समय था और बारह-एक बजे तक चुंगीघर से फुरसत पाने की दशा में चौबीस घंटे का हर्ज होता था। मंडी दस-ग्यारह बजे के बाद बन्द हो जाती थी। दूसरे दिन का इंतजार करना पड़ता था। अगर भाव रुपये में आधपाव भी गिर गया, तो सैकड़ों के मत्थे गयी। दस-पाँच रुपये का बल खा जाने में उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी। रमा को आज यह नयी बात मालूम हुई। सोचा, आखिर सुबह को मैं घर ही पर तो बैठा रहता हूँ। अगर यहाँ आकर बैठ जाऊँ तो रोज दस-पाँच रुपये हाथ आ जायें। फिर तो छः महीने में यह सारा झगड़ा साफ हो जाय। मान लो रोज यह चाँदी न होगी, पन्द्रह न सही, दस मिलेंगे, पाँच मिलेंगे। अगर सुबह को रोज पाँच रुपये मिल जायें और इतने ही दिन भर में और मिल जायें; तो पाँच छः महीने में मैं ऋण से मुक्त हो जाऊँ। उसने दराज खोलकर

फिर रजिस्टर निकाला। यह रजिस्टर निकाल लेने के बाद अब रजिस्टर में हेर-फेर कर देना उसे इतना भयंकर न जान पड़ा। नया रंगरूट जो पहले बन्दूक की आवाज़ से चौंक पड़ता है, आगे चल कर गोलियों की वर्षा में नहीं घबड़ाता।

रमा दफ़्तर बन्द करके भोजन करने घर जाने ही वाला था कि एक बिसाती का ठेला आ पहुँचा। रमा ने कहा—लौटकर चुंगी लूँगा। बिसाती ने मिन्नत करनी शुरू की। उसे कोई बड़ा जरूरी काम था। आखिर दस रुपये पर मामला ठीक हुआ। रमा ने चुंगी ली, रुपये जेब में रखे और घर चला। पच्चीस रुपये केवल दो-ढाई घंटों में आ गये। अगर एक महीने भी यह औसत रहे तो पल्ला पार है। उसे इतनी खुशी हुई कि वह भोजन करने घर न गया। बाजार से भी कुछ नहीं मंगवाया। रुपया भुनवाते हुए उसे एक रुपया कम हो जाने का ख्याल हुआ। वह शाम तक बैठा काम करता रहा, चार रुपये और वसूल हुए। चिराग जले वह घर चला, तो उसके मन पर से चिन्ता और निराशा का बहुत कुछ बोझ उतर चुका था। अगर दस दिन यही तेजी रही, तो रतन से मुँह चुराने की नौबत न आयेगी।

१७

नौ दिन गुजर गये। रमा रोज प्रातः दफ़्तर जाता और चिराग़ जले लौटता। वह रोज यही आशा लेकर जाता कि आज कोई बड़ा शिकार फँस जायेगा, पर वह आशा न पूरी होती। इतना ही नहीं। पहले दिन की तरह फिर कभी भाग्य का सूर्य न चमका। फिर भी उसके लिए कुछ कम श्रेय की बात नहीं थी कि इन नौ दिनों में ही उसने सौ रुपये जमा कर लिये थे। उसने एक पैसे का पान भी न खाया था। जालपा ने कई बार कहा, चलो कहीं घूम आयें, तो उसे भी उसने बातों ही में टाला। बस, कल का दिन और था। कल आकर रतन कंगन माँगेगी, तो उसे वह क्या जवाब देगा? दफ़्तर से आकर वह इसी सोच में बैठा हुआ था। क्या वह एक महीने भर के लिए और न मान जायेगी? इतने दिन वह और न बोलती तो शायद उससे उऋण हो जाता। उसे विश्वास था कि मैं उससे चिकनी-चुपड़ी बातें करके राजी कर लूँगा। अगर उसने जिद की तो मैं उससे कह दूँगा, सराफ़ रुपये नहीं लौटाता।

सावन के दिन थे। अँधेरा हो चला था। रमा सोच रहा था, रमेश बाबू के पास चलकर दो-चार बाज़ियाँ खेल आऊँ; मगर बादलों को देख-देख रुक जाता था। इतने में रतन आ पहुँची। वह प्रसन्न न थी। उसकी मुद्रा कठोर हो रही थी। आज वह लड़ने के लिए घर से तैयार होकर आयी है और मुरव्वत और मुलाहिजे की कल्पना को भी कोसों दूर रखना चाहती है।

जालपा ने कहा—तुम खूब आयीं। आज मैं भी जरा तुम्हारे साथ घूम आऊँगी। इन्हें काम के बोझ से आजकल सिर उठाने की भी फ़ुर्सत नहीं है।

रतन ने निष्ठुरता से कहा—मुझे आज बहुत जल्द घर लौट जाना है। बाबूजी को कल की याद दिलाने आयी हूँ।

रमा उसका लटका हुआ मुंह देखकर ही मन में सहम रहा था। किसी तरह उसे प्रसन्न करना चाहता था। बड़ी तत्परता से बोला—जी हाँ, खूब याद है। अभी सराफ़ की दूकान से चला आ रहा हूँ। रोज सुबह-शाम घंटे भर हाजिरी देता हूँ; मगर इन चीजों में समय बहुत लगता है। दाम तो कारीगरी के हैं। मालियत देखिए तो कुछ नहीं। दो आदमी लगे हुए हैं, पर शायद अभी एक महीने से कम में चीज़ तैयार न हो; पर होगी लाजवाब। जी खुश हो जायेगा।

पर रतन जरा भी न पिघली। तिनककर बोली—अच्छा। अभी महीना भर और लगेगा? ऐसी कारीगरी है कि तीन महीने में भी पूरी न हुई! आप उससे कह दीजिएगा, मेरे रुपये वापस कर दे। आशा के कंगन देवियाँ पहनती होंगी, मेरे लिए जरूरत नहीं।

रमा०—एक महीना न लगेगा, मैं जल्दी ही बनवा दूँगा। एक महीना तौ मैंने अन्दाजन कह दिया था। अब थोड़ी ही कसर रह गयी है। कई दिन तो नगीने तलाश करने में लग गये।

रतन—मुझे कंगन पहनना ही नहीं है भाई। आप मेरे रुपये लौटा दीजिए, बस। सुनार मैंने बहुत देखे हैं। आपकी दया से इस वक्त भी तीन जोड़े कंगन मेरे पास होंगे, पर ऐसी धाँधली कहीं नहीं देखी।

धाँधली के शब्द पर रमा तिलमिला उठा—धाँधली नहीं, मेरी हिमाक़त कहिये। मुझे क्या जरूरत थी कि अपनी जान संकट में डालता? मैंने

तो पेशगी रुपये इसलिए दे दिये कि सुनार खुश होकर जल्दी से बना देगा। अब आप रुपये माँग रही हैं, सराफ़ रुपये नहीं लौटा सकता।

रतन ने तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—क्यों, रुपये क्यों न लौटायेगा ?

रमा०—इसलिए कि जो चीज आपके लिए बनायी है, उसे वह कहाँ बेचता फिरेगा ? सम्भव है, साल छः महीने में बिक सके। सबकी पसन्द एक-सी तो नहीं होती।

रतन ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—मैं कुछ नहीं जानती, उसने देर की है, उसका दण्ड भोगे। मुझे कल या तो कंगन ला दीजिए या रुपये। आपसे यदि सराफ़ से दोस्ती है, आप मुलाहिजा और मुरव्वत के सबब से कुछ न कह सकते हों, तो मुझे उसकी दूकान दिखा दीजिए। नहीं आपको शर्म आती हो, तो उसका नाम बता दीजिए, मैं पता लगा लूँगी। वाह, अच्छी दिल्लगी ! दुकान नीलाम करा लूँगी। जेल भिजवा दूँगी। इन बदमाशों से लड़ाई के बगैर काम नहीं चलता।

रमा अप्रतिभ होकर जमीन की ओर ताकने लगा। वह कितनी मनहूस घड़ी थी, जब उसने रतन से रुपये लिये ! बैठे-बिठाये विपत्ति मोल ली।

जालपा—सच तो है, इन्हें क्यों नहीं सराफ़ की दुकान पर ले जाते ? चीज आँखों से देख इन्हें सन्तोष हो जायेगा।

रतन—मैं अब चीज लेना ही नहीं चाहती।

रमा ने काँपते हुए कहा—अच्छी बात है, आपको रुपये कल मिल जायेंगे।

रतन—कल किस वक्त ?

रमा०—दफ़्तर से लौटते वक्त लेता आऊँगा।

रतन—पूरे रुपये लूँगी। ऐसा न हो कि सौ-दो-सौ रुपये देकर टाल दे।

रमा०—कल आप अपने सब रुपये ले जाइएगा।

यह कहता हुआ रमा मर्दाने कमरे में आया, और रमेश बाबू के नाम एक रुक्का लिखकर गोपी से बोला—इसे रमेश बाबू के पास ले जाओ। जवाब लिखाते आना।

फिर उसने एक दूसरा रुक्का लिखकर विश्वम्भर को दिया, कि माणिकदास को दिखाकर जवाब लाये।

विश्वम्भर ने कहा—पानी आ रहा है।

रमा०—तो क्या सारी दुनिया बह जायेगी ? दौड़ते हुए जाओ।

विश्वम्भर—और वह जो घर पर न मिलें ?

रमा०—मिलेंगे। वह इस वक्त कहीं नहीं जाते।

आज जीवन में पहला अवसर था, कि रमा ने दोस्तों से रुपये उधार माँगे। आग्रह और विनय के जितने शब्द उसे याद आये, उनका उपयोग किया। उसके लिए यह बिलकुल नया अनुभव था। जैसे पत्र आज उसने लिखे, वैसे ही पत्र उसके पास कितनी बार आ चुके थे। उन पत्रों को पढ़कर उसका हृदय कितना द्रवित हो जाता था; पर विवश होकर उसे बहाने करने पड़ते थे। क्या रमेश बाबू भी बहाना कर जायेंगे ? उनकी आमदनी ज्यदा है, खर्च कम। वह चाहें तो रुपये का इन्तज़ाम कर सकते हैं। क्या मेरे साथ इतना सलूक भी न करेंगे ? अब तक दोनों लड़के नहीं आये। वह द्वार पर टहलने लगा। रतन की मोटर अभी तक खड़ी थी। इतने में रतन बाहर आयी और उसे टहलते देखकर भी कुछ बोली नहीं। मोटर पर बैठी आर चल दी।

दोनों कहाँ रह गये अब तक ? कहीं खेलने लगे होंगे। शैतान तो हैं ही। जो कहीं रमेश रुपये दे दें, तो चाँदी है। मैंने दो सौ नाहक माँगे,शायद इतने रुपये उनके पास न हों। ससुरालवालों की नोच-खसोट से कुछ रहने भी तो नहीं पाता। माणिक चाहे तो हजार-पाँच सौ दे सकता है; लेकिन देखना चाहिये, आज परीक्षा हो जायेगी। अगर आज इन लोगों ने रुपये न दिये, तो फिर बात न पूछूँगा। किसी का नौकर नहीं हूँ कि जब शतरंज खेलने को बुलायें, तो दौड़ा चला जाऊँ। रमा किसी की आहट पाता, तो उसका दिल जोर से धड़कने लगता था। आखिर विश्वम्भर लौटा। माणिक ने लिखा था, आजकल बहुत तंग हूँ। मैं तो तुम्हीं से माँगने वाला था।

रमा ने पुर्जा फाड़कर फेंक दिया। मतलबी कहीं का ! अगर सब-इंस्पेक्टर ने माँगा होता तो पुर्जा देखते ही रुपये लेकर दौड़े जाते। खैर, देखा जायेगा। चुंगी के लिए माल तो आयेगा ही। इसकी कसर तब निकल जायेगी।

इतने में गोपी भी लौटा। रमेश ने लिखा था—मैंने अपने जीवन में

दो-चार नियम बना लिये हैं, और बड़ी कठोरता से उनका पालन करता हूँ। उनमें से एक नियम यह भी है, कि मित्रों से लेन-देन का व्यवहार न करूँगा। अभी तुम्हें अनुभव नहीं हुआ है, लेकिन कुछ दिनों में हो जायेगा। मित्रों से जहाँ लेन-देन शुरू हुआ, वहाँ मनमुटाव होते देर नहीं लगती। तुम मेरे प्यारे दोस्त हो, मैं तुमसे दुश्मनी नहीं करना चाहता, इसलिये मुझे क्षमा करो।

रमा ने इस पत्र को भी फाड़कर फेंक दिया और कुर्सी पर बैठकर दीपक की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगा। दीपक उसे दिखायी देता था, इसमें सन्देह है। इतनी ही एकाग्रता से वह कदाचित् आकाश की काली, अभेद्य मेघराशि की ओर ताकता।

मन की एक दशा वह भी होती है, जब आँखें खुली होती हैं, और कुछ नहीं सूझता; कान खुले रहते हैं, और कुछ सुनायी नहीं देता।

१८

संध्या हो गयी थी। म्युनिसिपैलिटी के अहाते में सन्नाटा छा गया था। कर्मचारी एक-एक करके जा रहे थे। मेहतर कमरों में झाड़ू लगा रहा था। चपरासियों ने जूते पहनना शुरू कर दिया। खोंचेवाले दिन भर की बिक्री के पैसे गिन रहे थे, पर रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था।

आज भी वह प्रातःकाल आया था; पर आज भी कोई बड़ा शिकार न फँसा, वही दस रुपये मिलकर रह गये। अब अपनी आबरू बचाने का उसके पास और क्या उपाय था? रमा ने रतन को झाँसा देने की ठान ली। वह खूब जानता था कि रतन की यह अधीरता केवल इसलिए है कि शायद उसके रुपये मैंने खर्च कर दिये। अगर उसे मालूम हो जाये कि उसके रुपये तत्काल मिल सकते हैं, तो वह शान्त हो जायेगी। रमा उसे रुपये से भरी हुई थैली दिखाकर उसका सन्देह मिटा देना चाहता था। वह खजांची साहब के चले जाने की राह देख रहा था। उसने आज जान-बूझकर देर की थी। आज की आमदनी के आठ सौ रुपये उसके पास थे। इसे वह अपने घर ले जाना चाहता था। खजांची ठीक चार बजे उठा। उसे क्या ग़रज थी कि रमा से आज की आमदनी माँगता? रुपये गिनने से ही छुट्टी मिली। दिन भर बही लिखते-लिखते और रुपये गिनते-गिनते बेचारे की कमर दुख रही थी। रमा को

जब मालूम हो गया कि खजांची साहब दूर निकल गये होंगे; तो उसने रजिस्टर बन्द किया और चपरासी से बोला—थैली उठाओ; चलकर जमा कर आयें।

चपरासी ने कहा—खजांची बाबू तो चले गये।

रमा ने आँख फाड़कर कहा—खजांची बाबू चले गये? तुमने मुझसे कहा क्यों नहीं? अभी कितनी दूर गये होंगे?

चपरासी—सडक के नुक्कड़ तक पहुँचे होंगे?

रमा०—यह आमदनी कैसे जमा होगी?

चपरासी—हुकुम हो तो बुला लाऊँ?

रमा०—अजी जाओ भी, अब तक तो कहा नहीं, अब उन्हें रास्ते से बुलाने जाओगे। हो तुम भी, निरे बछिया के ताऊ। आज ज्यादा छान गये थे? खैर, रुपये इसी दराज में रहेंगे। तुम्हारी जिम्मेदारी रहेगी!

चपरासी—नहीं बाबू साहब, मैं यहाँ रुपये नहीं रखने दूँगा। सब घड़ी बराबर नहीं जाती। कहीं रुपये उठ जायें, तो मैं बेगुनाह मारा जाऊँ। सुभीते का ताला भी तो नहीं है यहाँ।

रमा०—तो फिर ये रुपये कहाँ रखूँ?

चपरासी—हुजूर अपने साथ लेते जायें।

रमा तो यह चाहता ही था। एक एक्का मँगवाया, उस पर रुपयों की थैली रखी और घर चला। सोचता था, कि अगर रतन भभकी में आ गयी, तो क्या पूछना? कह दूँगा, दो-ही चार दिन की कसर है। रुपये सामने देखकर उसे तसल्ली हो जायेगी।

जालपा ने थैली देखकर पूछा—क्या कंगन न मिला?

रमा०—अभी तैयार नहीं था। मैंने समझा, रुपया लेता चलूँ जिससे उन्हें तस्कीन हो जाये।

जालपा—क्या कहा सराफ़ ने?

रमा०—कहा क्या, आज-कल करता है। अभी रतनदेवी आयीं नहीं?

जालपा—आती ही होगी, उसे चैन कहाँ!

जब चिराग जले तक रतन न आयी, तो रमा ने समझा, अब न आयेगी।

दस मिनट भी न हुए होंगे कि रतन आ पहुँची और आते-ही-आते बोली—कंगन आ गये होंगे ?

जालपा—हाँ, आ गये हैं पहन लो ! बेचारे कई दफ़ा सराफ़ के पास गये । अभागा देता ही नहीं, हीले-हवाले करता है ।

रतन—कैसा सराफ़ है कि इतने दिन से हीले-हवाले कर रहा है ! मैं जानती कि रुपये झमेले में पड़ जायेंगे, तो देती ही क्यों । न रुपये मिलते हैं, न कंगन मिलता है ।

रतन ने यह बात कुछ ऐसे अविश्वास के भाव से कही कि जालपा जल उठी । गर्व से बोली—आपके रुपये रखे हुए हैं, जब चाहिए ले जाइए । अपने बस की बात तो है नहीं । आखिर जब सराफ़ देगा, तभी तो आयेंगे ?

रतन—कुछ वादा करता है, कब तक देगा ?

जालपा—उसके वादों का क्या ठीक, सैकड़ों वादे तो कर चुका है ।

रतन—तो इसके मानो यह हैं कि अब वह चीज़ न बनायेगा ?

जालपा—जो चाहे समझ लो ।

रतन—तो मेरे रुपये ही दे दो, बाज आयी ऐसे कंगन से ।

जालपा झमककर उठी, आलमारी से थैली निकाली और रतन के सामने पटककर बोली—ये आपके रुपये रखे है, ले जाइये ।

वास्तव में रतन की अधीरता का कारण वही था, जो रमा ने समझा था । उसे भ्रम हो रहा था कि इन लोगों ने मेरे रुपये खर्च कर डाले । इसलिए वह बार-बार कंगन का तक़ाज़ा करती थी । रुपये देखकर उसका भ्रम शान्त हो गया । कुछ लज्जित होकर बोली—अगर दो-चार दिन में देने का वादा करता हो तो रुपये रहने दो ।

जालपा—मुझे आशा नहीं है कि इतनी जल्द दे देगा । जब चीज़ तैयार हो जायेगी, तो रुपये माँग लिये जायेंगे ।

रतन—क्या जाने उस वक्त मेरे पास रुपये रहें या न रहें । रुपये आते तो दिखायी देते हैं, जाते नहीं दिखायी देते । न जाने किस तरह उड़ जाते हैं । अपने ही पास रख लो तो क्या बुरा है ?

जालपा—तो यहाँ भी तो वही हाल है । फिर पराई रकम घर में रखना जोखिम की बात भी तो है । कोई गोलमाल हो जाये, तो व्यर्थ का

दण्ड देना पड़े। मैंरे ब्याह के चौथे ही दिन मेरे गहने चोरी चले गये। हम लोग जागते ही रहे; पर न जाने कब आँख लग गयी, और चोरों ने अपना काम कर लिया। दस हजार की चपत पड़ गयी। कहीं वही दुर्घटना फिर हो जाय, तो कहीं के न रहें।

रतन—अच्छी बात है, मैं रुपये लिये जाती हूँ, मगर देखना निश्चिन्त न हो जाना। बाबूजी से कह देना सराफ़ का पिण्ड न छोड़ें।

रतन चली गयी। जालपा खुश थी कि सिर से बोझ टला। बहुधा हमारे जीवन पर उन्हीं के हाथों कठोरतम आघात होता है, जो हमारे सच्चे हितैषी होते हैं।

रमा कोई नौ बजे घूमकर लौटा, जालपा रसोई बना रही थी। उसे देखते ही बोली—रतन आयी थी, मैंने सब रुपये दे दिये।

रमा के पैरों के नीचे से मिट्टी खिसक गयी। आँखें फैलकर माथे पर जा पहुँचीं। घबराकर बोला—क्या कहा, रतन को रुपये दे दिये? तुमसे किसने कहा था कि उसे रुपये दे देना?

जालपा—उसी के रुपये तो तुमने लाकर रखे थे। तुम खुद उसका इन्तजार करते रहे। तुम्हारे जाते ही वह आयी और कंगन माँगने लगी। मैंने झल्लाकर उसके रुपये फेंक दिये।

रमा ने सावधान होकर कहा—उसने रुपये माँगे तो न थे!

जालपा—माँगे क्यों नहीं? हाँ जब मैंने दे दिये तो अलबत्ता कहने लगी, इसे क्यों लौटाती हो? अपने पास ही पड़ा रहने दो। मैंने कह दिया, ऐसे शक्की मिजाजवालों का रुपया मैं नहीं रखती।

रमा—ईश्वर के लिए तुम मुझसे बिना पूछे ऐसे काम मत किया करो।

जालपा—तो अभी क्या हुआ, उसके पास जाकर रुपये माँग लाओ, मगर अभी से रुपये घर में लाकर अपने जी का जंजाल क्यों मोल लोगे?

रमा इतना निस्तेज हो गया कि जालपा पर बिगड़ने की भी शक्ति उसमें न रही। रुआँसा होकर नीचे चला गया और स्थिति पर विचार करने लगा। जालपा पर बिगड़ना अन्याय था। जब रमा ने साफ कह दिया कि ये रुपये रतन के हैं, और इसका संकेत तक न किया कि मुझसे पूछे बगैर रतन को रुपये मत देना, तो जालपा का कोई अपराध नहीं।

उसने सोचा—इस समय झल्लाने और बिगड़ने से समस्या हल न होगी। शांतचित्त होकर विचार करने की आवश्यकता थी। रतन से रुपये वापस लेना अनिवार्य था। जिस समय वह यहाँ आयी थी, अगर मैं खुद मौजूद होता, तो कितनी खूबसूरती से सारी मुश्किल आसान हो जाती। मुझको क्या शामत सवार थी कि घूमने निकला! एक दिन न घूमने जाता तो कौन मरा जाता था? कोई गुप्त शक्ति मेरा अनिष्ट करने पर उतारू हो गयी है। दस मिनट की अनुपस्थिति ने सारा खेल बिगाड़ दिया! वह कह रही थी कि रुपये रख लीजिए। जालपा ने जरा समझ से काम लिया होता तो यह नौबत काहे को आती; लेकिन फिर मैं बीती हुई बातें सोचने लगा। समस्या है, रतन से रुपये वापस कैसे लिये जायें! क्यों न चलकर कहूँ, मैंने सुना है, रुपये लौटाने से आप नाराज हो गयी हैं। असल में मैं आपके लिए रुपये न लाया था। सराफ़ से इसीलिए माँग लाया था, जिसमे वह चीज बनवाकर दे दे। सम्भव है, वह खुद ही लज्जित होकर क्षमा माँगे और रूपये दे दे। बस, इसी वक्त वहां जाना चाहिए।

यह निश्चय करके उसनें घड़ी पर नजर डाली। साढ़े आठ बजे थे। अन्धकार छाया हुआ था। ऐसे समय रतन घर से बाहर नहीं जा सकती। रमा ने साइकिल उठायी और रतन से मिलने चला।

रतन के बँगले पर आज बड़ी बहार थी। यहाँ नित्य ही कोई-न-कोई उत्सव, दावत, पार्टी होती रहती थी। रतन का एकान्त नीरव जीवन इन विषयों की ओर उस भाँति लपकता था, जैसे प्यासा पानी की ओर लपकता है। इस वक्त वहाँ बच्चों का जमघट था! एक आम के वृक्ष में झूला पड़ा था, बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं, बच्चे झूला झूल रहे थे। रतन खड़ी झुला रही थी। हू-हक मचा हुआ था। वकील साहब इस मौसम में भी ऊनी ओवरकोट पहने बरामदे में बैठे सिगार पी रहे थे। रमा की इच्छा हुई, कि झूले के पास जाकर रतन से बातें करे, पर वकील साहब को खड़े देखकर वह संकोच के मारे उधर न जा सका। वकील साहब नें उसे देखते ही हाथ बढ़ा दिया और बोले—आओ रमा बाबू, कहो, तुम्हारे म्युनिसिपल बोर्ड की क्या खबरें हैं?

रमा ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—कोई नयी बात तो नहीं हुई।

वकील—आपके बोर्ड में लड़कियों को अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा ? और कई बोर्डों ने तो पास कर दिया। जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार न होगा। आप तो योरोप न गये होंगे ! ओह ? क्या आजादी है, क्या दौलत है, क्या जोवन है, क्या उत्साह है ! बस, मालूम होता है, यही स्वर्ग है ! और स्त्रियाँ भी सचमुच देवियाँ हैं ! इतनी हँसमुख, इतनी स्वच्छन्द ! यह सब स्त्री शिक्षा का प्रसाद है !

रमा ने समाचार-पत्रों में इन देशों का जो थोड़ा बहुत हाल पढ़ा था, उसके आधार पर बोला—वहाँ स्त्रियों का आचरण तो बहुत अच्छा नहीं है।

वकील—नान्सेंस ! अपने-अपने देश की प्रथा है। आप एक युवती को किसी युवक के साथ एकान्त में विचरते देखकर दाँतों उँगली दबाते हैं; आपका अन्तःकरण इतना मलिन हो गया है कि स्त्री-पुरुष को एक जगह देखकर आप सन्देह किये बिना रह ही नहीं सकते; पर जहाँ लड़के और लड़कियाँ एक साथ शिक्षा पाते हैं, वहाँ यह जाति-भेद बहुत महत्व की वस्तु नहीं रह जाता। आपस में स्नेह और सहानुभूति की इतनी बातें पैदा हो जाती हैं कि कामुकता का अंश बहुत थोड़ा रह जाता है। यह समझ लीजिए कि जिस देश में स्त्रियों को जितनी अधिक स्वाधीनता है, वह देश उतना ही सभ्य है। स्त्रियों को कैद में, परदे में, या पुरुष से कोसों दूर रखने का तात्पर्य यही निकलता है कि आपके यहाँ जनता इतनी आचार-भ्रष्ट है कि स्त्रियों का अपमान करने में ज़रा भी संकोच नहीं करती। युवकों के लिए राजनीति, धर्म, ललित कला, साहित्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान और हज़ारों ही ऐसे विषय हैं, जिनके आधार पर वे युवतियों से गहरी दोस्ती पैदा कर सकते हैं। कामलिप्सा उन देशों के लिये आकर्षण का प्रधान विषय है, जहाँ लोगों की मनोवृत्तियाँ संकुचित रहती हैं। मैं साल भर योरोप और अमेरिका में रह चुका हूँ। कितनी ही सुन्दरियों के साथ मेरी दोस्ती थी। उनके साथ खेला हूँ। नाचा भी हूँ, पर कभी मुँह से ऐसा शब्द न निकलता था, जिसे सुनकर किसी युवती को लज्जा से सिर झुकाना पड़े। और फिर अच्छे और बुरे कहाँ नहीं हैं ?

रमा को इस समय इन बातों में कोई आनन्द न आया। वह तो इस समय दूसरी ही चिन्ता में मग्न था।

वकील साहब ने फिर कहा—जब तक हम स्त्री-पुरुषों को अबाध रूप से अपना-अपना मानसिक विकास न करने देंगे, हम अवनति की ओर खिसकते चले जायेंगे। बन्धनों से समाज का पैर न बाँधिए, उसके गले में कैद की जन्जीर न डालिए। विधवा विवाह का प्रचार कीजिए, खूब जोरों से कीजिए; लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि जब कोई अधेड़ आदमी किसी युवती से ब्याह कर लेता है, तो क्यों अखबारों में इतना कुहराम मच जाता है? योरोप में ८० बरस के बूढ़े युवतियों से ब्याह करते हैं; सत्तर वर्ष की वृद्धाएँ युवकों से ब्याह करती हैं। कोई कुछ नहीं कहता। किसी को कानो-कान खबर भी नहीं होती। हम बूढ़ों को मरने के पहले ही मार डालना चाहते हैं। हालाँकि मनुष्य को कभी किसी सहगामिनी की ज़रूरत होती है तो वह बुढ़ापे में, जब उसे हरदम किसी अवलम्ब की इच्छा होती है, जब वह परमुखापेक्षी हो जाता है।

रमा का ध्यान झूले की ओर था। किसी तरह रतन से दो-दो बातें करने का अवसर मिले। इस समय उसकी सबसे बड़ी कामना यही थी। उसका वहाँ जाना शिष्टाचार के विरुद्ध था। आखिर उसने एक क्षण के बाद झूले की ओर देखकर कहा—ये इतने लड़के किधर से आ गये?

वकील—रतन बाई को बाल-समाज से बड़ा स्नेह है। न जाने कहाँ से इतने लड़के जमा हो जाते हैं। अगर आपको बच्चों से प्यार हो, तो जाइए।

रमा तो यह चाहता ही था, झट झूले के पास जा पहुँचा। रतन उसे देखकर मुस्करायी और बोली—इन शैतानों ने मेरी नाक में दम कर रखा है। झूले से इन सबों का पेट नहीं भरता। आइए; ज़रा आप भी बेगार कीजिए, मैं तो थक गयी। यह कहकर वह पक्के चबूतरे पर बैठ गयी। रमा झोंके देने लगा। बच्चों ने नया आदमी देखा, तो सब-के-सब अपनी बारी के लिए उतावले होने लगे। रतन के हाथों दो बारियाँ आ चुकी थीं; पर यह कैसे हो सकता था कि कुछ लड़के तो तीसरी बार झूलें, और बाकी बैठे मुँह ताकें। दो उतरते तो चार झूले पर बैठ जाते। रमा को बच्चों से नाममात्र को भी प्रेम न था, पर इस वक्त फँस गया था, क्या करता?

आखिर आध घण्टे की बेगार के बाद उसका जी ऊब गया। घड़ी में साढ़े नौ बज रहे थे। मतलब की बात कैसे छेड़े। रतन तो झूले में इतनी मगन थी मानो उसे रुपयों की सुध ही नहीं है।

सहसा रतन ने झूले के पास जाकर कहा—बाबूजी, मैं बैठती हूँ, मुझे झुलाइए; मगर नीचे से नहीं, झूले पर खड़े होकर पेंग मारिए!

रमा बचपन ही से झूले पर बैठते डरता था। एक बार मित्रों ने ज़बर-दस्ती झूले पर बैठा दिया तो उसे चक्कर आने लगा। पर इस अनुरोध ने उसे झूले पर आने के लिये मजबूर कर दिया। अपनी अयोग्यता कैसे प्रकट करे। रतन दो बच्चों को लेकर बैठ गयी, और यह गीत गाने लगी—

कदम की डरियाँ झूला पड़ गयो री,
राधा रानी झूलन आई।

रमा झूले पर खड़ा होकर पेंग मारने लगा; लेकिन उसके पाँव काँप रहे थे, और दिल बैठा जाता था। जब झूला ऊपर से गिरता था, तो उसे ऐसा जान पड़ता था मानो कोई तरल वस्तु उसके वक्ष में चुभती चली जा रही है—और रतन लड़कियों के साथ गा रही थी—

कदम की डरियाँ झूला पड़ गयो री,
राधा रानी झूलन आई।

एक क्षण के बाद रतन ने कहा—ज़रा और बढ़ाइए साहब, आपसे तो झूला बढ़ता ही नहीं।

रमा ने लज्जित होकर जोर लगाया; पर झूला न बढ़ा। रमा के सिर में चक्कर आने लगे।

रतन—आपको पेंग मारना नहीं आता; कभी झूला नहीं झूले?

रमा ने झिझकते हुए कहा—हाँ, इधर तो वर्षों से नहीं बैठा।

रतन—तो आप इन बच्चों को सँभालकर बैठिए, मैं आपको झुलाऊँगी। अगर उस डाल से न छू ले तो कहिएगा। रमा के प्राण सूख गये। बोला, आज तो बहुत देर हो गयी है, फिर कभी आऊँगा।

रतन—अजी अभी क्या देर हो गयी है, दस भी नहीं बजे। घबराइए नहीं, अभी बहुत रात पड़ी है। खूब झूलकर जाइएगा। कल जालपा को लाइएगा, हम दोनों झूलेंगी।

रमा झूले पर से उतर आया तो उसका चेहरा सहमा हुआ था। मालूम होता था, अब गिरा। वह लड़खड़ाता हुआ साइकिल की ओर चला और उस पर बैठ कर तुरन्त घर भागा।

कुछ दूर तक उसे कुछ होश न रहा। पाँव आप-ही-आप पैंडल घुमाते जाते थे। आधी दूर जाने के बाद उसे होश आया। उसने साईकिल घुमा दी, कुछ दूर चला, फिर उतर कर सोचने लगा—आज संकोच में पड़कर कैसी बाजी हाथ से खोयी। वहाँ से चुपचाप अपना-सा मुँह लिये लौट आया। क्यों उसके मुँह से आवाज़ नहीं निकली? रतन कुछ हौवा तो थी नहीं जो उसे खा जाती। सहसा उसे याद आया, थैली में आठ सौ रुपये थे, जालपा ने झुँझला कर थैली-की-थैली उसके हवाले कर दी। शायद उसने गिना नहीं, नहीं ज़रूर कहती। कहीं ऐसा न हो, थैली किसी को दे दे, या और रुपयों में मिला दे। गजब ही हो जाय, कहीं का न रहूँ। क्यों न इसी वक्त चलकर बेशी रुपये माँग लाऊँ? लेकिन देर बहुत हो गयी है। सवेरे फिर आना पड़ेगा।

मगर यह दो सौ रुपये मिल भी गये, तब भी तो पाँच सौ रुपयों की कमी रहेगी। उसका क्या प्रबन्ध होगा? ईश्वर ही बेड़ा पार लगाये तो लग सकता है। सबेरे कुछ न प्रबन्ध हुआ तो क्या होगा? यह सोचकर वह काँप उठा।

जीवन में ऐसे अवसर भी आते हैं, जब निराशा में भी हमें आशा होती है। रमा ने सोचा, एक बार फिर गंगू के पास चलूँ; शायद दूकान पर मिल जाये, उसके हाथ पाँव जोड़ूँ। सम्भव है, कुछ दया आ जाये। वह सराफ़े जा पहुँचा; मगर गंगू की दूकान बन्द थी! वह लौटा ही था कि चरनदास आता हुआ दिखाई दिया। रमा को देखते ही बोला—बाबूजी, आपने तो इधर का रास्ता ही छोड़ दिया। कहिए, रुपये कब तक मिलेंगे?

रमा ने विनम्र भाव से कहा—अब बहुत जल्द मिलेंगे भाई, देर नहीं है। देखो गंगू के रुपये चुकाये हैं, अब की तुम्हारी बारी है।

चरन०—वह सब किस्सा मालूम है। गंगू ने होशियारी से अपने रुपये न ले लिये होते, तो हमारी तरह टापा करता। साल भर हो रहा है। रुपये सैकड़े का सूद रखिये तो ८४) होते हैं। कल आकर हिसाब कर जाइए, सब नहीं तो आधा-तिहाई कुछ तो दीजिए। लेते-देते रहने से मालिक को ढाढ़स

रहता है। कान में तेल डालकर बैठे रहने से तो शंका होने लगती है कि इनकी नीयत बहुत खराब है। तो कल कब आइएगा ?

रमा—भई, कल मैं रुपये लेकर तो न आ सकूँगा, यों जब कहो तब चला आऊँ। क्या, इस वक्त अपने सेठ जी से चार-पाँच सौ रुपयों का बन्दोबस्त न करा दोगे ? तुम्हारी मुट्ठी भी गर्म कर दूँगा।

चरन०—कहाँ की बात लिए फिरते हो बाबूजी, सेठजी एक कौड़ी तो देंगे नहीं। उन्होंने यही बहुत सलूक किया कि नालिश नहीं कर दी। आपके पीछे मुझे बातें सुननी पड़ती हैं। क्या बड़े मुंशीजी से कहना पड़ेगा ?

रमा ने झल्लाकर कहा—तुम्हारा देनदार मैं हूँ, बड़े मुंशी नहीं हैं। मैं मर नहीं गया हूँ, घर छोड़कर भागा नहीं जाता हूँ। इतने अधीर क्यों हुए जाते हो ?

चरन०—साल भर हुआ एक कौड़ी नहीं मिली। अधीर न हों तो क्या हों। कल कम-से-कम दो सौ की फिकर कर रखिएगा।

रमा०—मैंने कह दिया, मेरे पास अभी नहीं हैं।

चरन०—रोज गठरी काट-काटकर रखते हो, उस पर कहते हो रुपये नहीं हैं ! कल रुपये जुटा रखना। कल आदमी जायेगा ज़रूर।

रमा ने उसका कोई जवाब न दिया, आगे बढ़ा। इधर आया था कि कुछ काम निकलेगा, उलटे तकाज़ा सहना पड़ा। कहीं दुष्ट सचमुच बाबूजी के पास तकाजा न भेज दे। आग ही हो जायेंगे। जालपा भी समझेगी, कैसा लबाड़िया आदमी है।

इस समय रमा की आँखों से आँसू तो न निकलते थे; पर उसका एक-एक रोआँ रो रहा था। जालपा से अपनी असली हालत छिपाकर उसने कितनी भारी भूल की ! वह समझदार औरत है, अगर उसे मालूम हो जाता कि मेरे घर भूँजी भाँग नहीं है, तो वह मुझे कभी उधार गहने न लेने देती। उसने तो कभी अपने मुँह से कुछ नहीं कहा। मैं ही अपनी शमा जानने के लिए मरा जा रहा था। इतना बड़ा बोझ सिर पर लेकर भी मैंने क्यों किफायत से काम नहीं लिया। मुझे एक-एक पैसा दाँतों से पकड़ना चाहिए था। साल भर में मेरी आमदनी सब मिलाकर एक हज़ार से कम न हुई होगी। अगर किफायत से चलता तो इन दोनों महाजनों के आधे-आधे रुपये जरूर अदा हो

जाते; मगर यहाँ तो सिर पर शामत सवार थी। इसकी क्या जरूरत थी कि जालपा मुहल्ले भर की औरतों को जमा कर के रोज सैर को जाती? सैकड़ों रुपये तो ताँगावाला ले गया होगा; मगर यहाँ तो उस पर रोब जमाने की पड़ी हुई थी! सारा बाजार जान जाये, कि लाला निरे लफंगे हैं पर अपनी स्त्री न जानने पाये! वाह री बुद्धि! दरवाजे के लिये परदों की क्या जरूरत थी? दो लैम्प क्यों लाया, नयी निवाड़ लेकर चारपाइयाँ क्यों बुनवायीं? उसने रास्ते ही में उन सारे खर्चों का हिसाब तैयार कर लिया जिन्हें उसकी हैसियत के आदमी को टालना चाहिए। आदमी जब तक स्वस्थ रहता है, उसे इसकी चिन्ता नहीं रहती कि वह क्या खाता है, कितना खाता है, लेकिन जब कोई विकार उत्पन्न हो जाता है तब उसे याद आती है कि कल मैंने पकौड़ियाँ खायी थीं। विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।

जालपा ने पूछा—कहाँ चले गये थे, बड़ी देर लगा दी?

रमा०—तुम्हारे कारण रतन के बँगले पर जाना पड़ा। तुमने सब रुपये उठाकर देदिये; उसमें दो सौ मेरे भी थे।

जालपा—तो मुझे क्या मालूम था। तुमने कहा भी तो न था। मगर उनके पास से रुपये कहीं जा नहीं सकते, वह आप हो भेज देंगी।

रमा०—माना; पर सरकारी रकम तो कल दाखिल करनी पड़ेगी।

जालपा—कल मुझसे दो सौ रुपये ले लेना, मेरे पास हैं।

रमा को विश्वास न आया। बोला—कहीं हों न तुम्हारे पास! इतने रुपये कहाँ से आये?

जालपा—तुम्हें इससे क्या मतलब, मैं तो दो सौ रुपये देने को कहती हूँ।

रमा का चेहरा खिल उठा। कुछ-कुछ आशा बँधी। दो सौ रुपये यह दे दे, दो सौ रतन से ले लूँगा, सौ रुपये मेरे पास हैं ही, तो कुल तीन सौ की कमी रह जायगी; मगर यह तीन सौ रुपये कहाँ से आयेंगे? ऐसा कोई नजर न आता था, जिससे इतने रुपये मिलने की आशा की जा सके। हाँ, अगर रतन सब रुपये दे दे तो बिगड़ी बात बन जाये। आशा का यही एक आधार रह गया था।

जब वह खाना खाकर लेटा, तो जालपा ने कहा—आज किस सोच में पड़े हो?

रमा—सोच किस बात का ? क्या मैं उदास हूँ ?

जालपा—हाँ, किसी चिन्ता में पड़े हुए हो, मगर मुझसे बताते नहीं हो।

रमा—ऐसी कोई बात होती तो तुमसे छिपाता ?

जालपा—वाह, तुम अपने दिल की बात मुझसे क्यों कहोगे ? ऋषियों की आज्ञा नहीं है।

रमा—मैं उन ऋषियों के भक्तों में नहीं हूँ।

जालपा—यह तो तब मालूम होता, जब मैं तुम्हारे हृदय में पैठकर देखती।

रमा—वहाँ तुम अपनी ही प्रतिमा देखतीं।

रात को जालपा ने एक भयकर स्वप्न देखा, वह चिल्ला पड़ी। रमा ने चौंककर पूछा—क्या है जालपा, क्या स्वप्न देख रही हो ?

जालपा ने इधर-उधर घबड़ाई हुई आँखों से देखकर कहा—बड़े संकट में जान पड़ी थी ! न जाने कैसा सपना देख रही थी।

रमा—क्या देखा ?

जालपा—क्या बताऊँ, कुछ कहा नहीं जाता। देखती थी, कि तुम्हें कई सिपाही पकड़े लिये जा रहे हैं। कितना भयंकर रूप था उनका !

रमा का खून सूख गया। दो-चार दिन पहले, इस स्वप्न को उसने हँसी में उड़ा दिया होता, इस समय वह अपने को सशंकित होने से न रोक सका, पर बाहर से हँसकर बोला—तुमने सिपाहियों से पूछा नहीं, इन्हें क्यों पकड़े लिये जाते हो ?

जालपा—तुम्हें हँसी सूझ रही है, मेरा हृदय काँप रहा है।

थोड़ी देर बाद रमा ने नींद में बकना शुरू किया—अम्मा, कहे देता हूँ, फिर मेरा मुँह न देखोगी, मैं डूब मरूँगा।

जालपा को अभी तक नींद न आयी थी। भयभीत होकर उसने रमा को जोर से हिलाया और बोली—मुझे तो हँसते थे, और खुद बकने लगे। सुनकर रोएँ खड़े हो गये। स्वप्न देखते थे क्या ?

रमा ने लज्जित होकर कहा—हाँ जी, न जाने क्या देख रहा था। कुछ याद नहीं।

जालपा ने पूछा—अम्माजी को क्यों धमका रहे थे? सच बताओ, क्या देखते थे?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—कुछ याद नहीं आता, यों ही बकने लगा हूँगा।

जालपा—अच्छा तो करवट सोना। चित्त सोने से आदमी बकने लगता है।

रमा करवट लेट गया, पर ऐसा जान पड़ता था मानो चिन्ता और शंका दोनों आँखों में बैठीं निद्रा के आक्रमण से उनकी रक्षा कर रही हैं। जागते हुए दो बज गये। सहसा जालपा उठ बैठी, और सुराही से पानी उड़ेलती हुई बोली—बड़ी प्यास लगी थी, क्या तुम अभी तक जाग रही हो?

रमा—हाँ जी, नींद उचट गयी है। मैं सोच रहा था, तुम्हारे पास दो सौ रुपये कहाँ से आ गये? मुझे इसका आश्चर्य है।

जालपा—ये रुपये मैं मायके से लायी थी, कुछ विदाई में मिले थे, कुछ पहले से रखे थे।

रमा०—तब तो तुम रुपये जमा करने में बड़ी कुशल हो। यहाँ क्यों नहीं कुछ जमा किया?

जालपा ने मुसकराकर कहा—तुम्हें पाकर अब रुपये की परवा नहीं रही।

रमा०—अपने भाग्य को कोसती होगी?

जालपा—भाग्य को क्यों कोसूँ? भाग्य को वह औरतें रोएँ जिनका पति निखट्टू हो, शराबी हो, दुराचारी हो, रोगी हो, तानों से स्त्री को छेदता रहे, बात-बात पर बिगड़े। पुरुष मन का हो तो स्त्री उसके साथ उपवास करके भी प्रसन्न रहेगी।

रमा ने विनोद के भाव से कहा—तो मैं तुम्हारे मन का हूँ?

जालपा ने प्रेम-पूर्ण भाव से कहा—मेरी जो आशा थी, उससे तुम कहीं बढ़कर निकले। मेरी तीन सहेलियाँ हैं। एक का भी पति ऐसा नहीं। एक एम० ए० है, पर सदा रोगी। दूसरा विद्वान् भी है और धनी भी, पर वेश्यागामी। तीसरा घरघुस्सू है और बिलकुल निखट्टू।

रमा का हृदय गद्‌गद हो उठा। ऐसी प्रेम की मूर्ति और दया की देवी

के साथ उसने कितना बड़ा विश्वासघात किया । इतना दुराव रखने पर भी जब इसे मुझसे इतना प्रेम है, तो मैं अगर निष्कपट होकर रहता तो मेरा जीवन कितना आनन्दमय होता !

१९

प्रातःकाल रमा ने रतन के पास अपना आदमी भेजा । खत में लिखा, मुझे बड़ा खेद है कि कल जालपा ने आपके साथ ऐसा व्यवहार किया, जो उसे न करना चाहिए था । मेरा विचार यह कदापि न था कि रुपये आपको लौटा दूँ, मैंने सराफ़ को ताकीद करने के लिए उससे रुपये ले लिये थे । कंगन दो-चार रोज़ में अवश्य मिल जावेंगे । आप रुपये भेज दें । उस थैली में दो सौ रुपये मेरे भी थे । वह भी भेजिएगा । अपने सम्मान की रक्षा करते हुए जितनी विनम्रता उससे हो सकती थी, उसमें कोई कसर नहीं रखी। जब तक आदमी लौटकर न आया, वह बड़ी व्यग्रता से उसकी राह देखता रहा । कभी सोचता कहीं बहाना कर दे, या घर पर मिले ही नहीं, या दो-चार दिन के बाद देने का वादा करे। सारा दारोमदार रतन के रुपये पर था। अगर रतन ने साफ़ जवाब दे दिया, तो फिर सर्वनाश ! उसकी कल्पना से ही रमा के प्राण सूखे जा रहे थे। आखिर नौ बजे आदमी लौटा। रतन ने दो सौ रुपये तो दिये थे, मगर खत का कोई जवाब न दिया था।

रमा ने निराश आँखों से आकाश की ओर देखा । सोचने लगा, रतन ने ख़त का जवाब क्यों नहीं दिया ? क्या मामूली शिष्टाचार भी नहीं जानती ? कितनी मक्कार औरत है ! रात को ऐसा मालूम होता था कि साधुता और सज्जनता की प्रतिमा ही है, पर दिल में यह गुबार भरा हुआ था ! शेष रुपयों की चिन्ता में रमा को नहाने-खाने की सुध न रही ।

कहार अन्दर गया तो जालपा ने पूछा—तुम्हें कुछ काम-धन्धे की भी खबर है, कि मटरगश्ती ही करते रहोगे ? दस बज रहे हैं, और अभी तक तरकारी-भाजी का कहीं पता नहीं ।

कहार ने त्योरियाँ बदल कर कहा—तो का चार हाथ-गोड़ कर लेई, कामे से तो गया रहिन ! बाबू मेम साहब के तीर रुपया लेवै का भेजिन रहा।

जालपा—कौन मेम साहब ?

कहार—जौन मोटर पर चढ़कर आवत हैं ।

जालपा—तो लाये रुपये ?

कहार—लाये काहे नहीं। पिरथी के छोर पर तो रहत हैं, दौरत-दौरत गोड़ पिराय लाग !

जालपा—अच्छा, चटपट जाकर तरकारी लाओ।

कहार तो उधर गया। रमा रुपये लिये हुए अन्दर पहुँचा तो जालपा ने कहा—तुमने अपने रुपये रतन के पास से मँगवा लिये न ? अब तो मुझसे न लोगे।

रमा ने उदासीन भाव से कहा—मत दो।

जालपा—मैंने तो कह दिया था, रुपये दे दूँगी। तुम्हें इतनी जल्दी माँगने की क्यों सूझी ? समझी होगी, इन्हें मेरा इतना विश्वास भी नहीं।

रमा ने हताश होकर कहा—मैंने रुपये नहीं माँगे थे। केवल इतना लिख दिया था कि थैला में दो सौ रुपये ज्यादा हैं। उसने आप ही आप भेज दिये।

जालपा ने हँसकर कहा—मेरे रुपये बड़े भाग्यवान हैं, दिखाऊँ ? चुन-चुनकर नये रुपये रखे हैं। सब इसी साल के हैं, चमाचम ! देखो तो आँखें ठण्डी हो जायें !

इतने में किसी ने नीचे से आवाज दी—बाबूजी, सेठ ने रुपये के लिए भेजा है।

दयानाथ स्नान करके अन्दर आ रहे थे, सेठ के प्यादे को देखकर पूछा—कौन सेठ, कैसे रुपये ? मेरे यहाँ किसी के रुपये नहीं आते ?

प्यादा—छोटे बाबू ने कुछ माल लिया था। साल भर हो गये, अभी तक एक पैसा नहीं दिया। सेठजी ने कहा है, बात बिगड़ने पर रुपये दिये तो क्या दिये। आज कुछ जरूर दिलवा दीजिए।

दयानाथ ने रमा को पुकारा और बोले—देखो, किस सेठ का आदमी आया है ? उसका कुछ हिसाब बाकी है, साफ क्यों नहीं कर देते ? कितना बाकी है इसका ?

रमा कुछ जवाब न देने पाया था, कि प्यादा बोल उठा—पूरे सात सौ हैं बाबू जी !

दयानाथ की आँखें फैलकर मस्तक तक पहुँच गयीं—सात सौ ! क्यों जी, यह तो सात सौ कहता है !

रमा ने टालने के इरादे से कहा—मुझे ठीक मालूम नहीं।

प्यादा—मालूम क्यों नहीं, पुरजा मेरे पास है। तब से कुछ दिया ही नहीं, कम कहाँ से हो गये ?

रमा ने प्यादे को पुकार कर कहा—चलो तुम दूकान पर, मैं खुद आता हूँ।

प्यादा—हम बिना कुछ लिये न जायेंगे साहब। आप यों ही टाल दिया करते हैं, और बातें हमको सुननी पड़ती हैं।

रमा सारी दुनिया के सामने ज़लील बन सकता था, किन्तु पिता के सामने ज़लील बनना उसके लिए मौत से कम न था। जिस आदमी ने अपने जीवन में कभी हराम का एक पैसा न छुआ हो, जिसे किसी से उधार लेकर भोजन करने के बदले भूखों रहना मंजूर हो, उसका लड़का इतना बेशर्म और बेग़ैरत हो! रमा, पिता की आत्मा का यह घोर अपमान न कर सकता था। वह उन पर यह बात प्रकट न होने देना चाहता था कि उनका पुत्र उनके नाम को बट्टा लगा रहा है। कर्कश स्वर में प्यादे से बोला—तुम अभी यहीं खड़े हो ? हट जाओ, नहीं धक्के देकर निकाल दिये जाओगे।

प्यादा—हमारे रुपये दिलाइए, हम चले जायें। हमें क्या आपके द्वार पर मिठाई मिलती है ?

रमा०—तुम न जाओगे ? जाओ लाला से कह देना नालिश कर दें।

दयानाथ ने डाँटकर कहा—क्यों बेशर्मी की बात करते हो जी! जब गिरह में रुपये न थे, तो चीज़ लाये ही क्यों ? और जब लाये, तो जैसे बने वैसे रुपये अदा करो। कह दिया, नालिश कर दो। नालिश कर देगा तो कितनी आबरू रह जायेगी ? इसका भी कुछ ख्याल है ? सारे शहर में उँगलियाँ उठेंगी; मगर तुम्हें इसकी क्या परवा! तुमको यह सूझी क्या, कि एकबारगी इतनी बड़ी गठरी सिर पर लाद ली ? कोई शादी ब्याह का अवसर होता, तो एक बात भी थी और वह औरत कैसी है जो पति को बेहूदगी करते देखती है और मना नहीं करती। आख़िर तुमने क्या सोचकर क़र्ज़ लिया ? तुम्हारी ऐसी कुछ बड़ी आमदनी नहीं है।

रमा को पिता की यह डाँट बहुत बुरी लग रही थी। उसके विचार में पिता को इस विषय में कुछ बोलने का अधिकार ही न था। निःसंकोच होकर

बोला—आप नाहक इतना बिगड़ रहे हैं, आपसे रुपये माँगने जाऊँ तो कहिएगा। मैं अपने वेतन से थोड़ा-थोड़ा करके सब चुका दूँगा।

अपने मन में उसने कहा—यह तो आपकी ही करनी का फल है! आप ही के पाप का प्रायश्चित कर रहा हूँ।

प्यादे ने पिता और पुत्र में वाद-विवाद होते देखा तो चुपके से अपनी राह ली। मुंशीजी भुनभुनाते हुए स्नान करने चले गये। रमा ऊपर गया तो उसके मुख पर लज्जा-ग्लानि की फटकार बरस रही थी। जिस अपमान से बचने के लिये डाल-डाल; पात-पात भागता फिरता था, वह हो ही गया। इस अपमान के सामने सरकारी रुपयों की फ़िक्र भी ग़ायब हो गयी। क़र्ज़ लेने वाले बला के हिम्मती होते हैं। साधारण बुद्धिवाला ऐसी परिस्थितियों में पड़कर घबड़ा उठता है; पर बैठकबाज़ों के माथे पर बल नहीं पड़ता। रमा अभी इस कला में दक्ष नहीं हुआ था। इस समय यदि यमदूत उसके प्राण हरने आता तो वह आँखों से दौड़ कर उनका स्वागत करता। कैसे क्या होगा, यह शब्द उसके एक-एक रोम से निकल रहा था। कैसे क्या होगा? इससे अधिक वह इस समस्या की और व्याख्या न कर सकता था। यही प्रश्न एक सर्वव्यापी पिशाच की भाँति उसे घूरता दिखायी देता था, कैसे क्या होगा! ये ही शब्द अगणित बगूलों की भाँति चारों ओर उठते नज़र आते थे। वह इस पर विचार न कर सकता था। केवल उसकी ओर से आँखें न बन्द कर सकता था। उसका चित्त इतना खिन्न हुआ, कि आँखें सजल हो गयीं।

जालपा ने पूछा—तुमने तो कहा था, इसके अब थोड़े ही रुपये बाकी हैं।

रमा ने सिर झुकाकर कहा—यह दुष्ट झूठ बोल रहा था, मैंने रुपये दिये हैं।

जालपा—दिये होते, तो कोई रुपये का तक़ाज़ा क्यों करता? जब तुम्हारी आमदनी इतनी कम थी तो गहने लिये ही क्यों? मैंने तो कभी जिद न की थी और मान लो, मैं दो-चार बार कहती भी, तो तुम्हें समझ बूझकर काम करना चाहिए था। अपने साथ मुझे भी चार बातें सुनवा दीं। आदमी सारी दुनिया से परदा रखता है लेकिन अपनी स्त्री से परदा नहीं रखता। तुम मुझसे परदा रखते हो। अगर मैं जानती, तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी

हैं, तो मुझे क्या ऐसा शौक चर्राया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को ताँगे पर बैठा-बैठाकर सैर कराने ले जाती। अधिक-से-अधिक यही तो होता कि कभी-कभी चित्त दुखी हो जाता; पर यह तक़ाज़े तो न सहने पड़ते। कहीं नालिश कर दे तो सात सौ का एक हजार हो जाये। मैं क्या जानती थी कि तुम मुझसे यह छल कर रहे हो; कोई वेश्या तो थी नहीं, कि तुम्हें नोच-खसोटकर अपना घर भरना मेरा काम होता। मैं तो भले-बुरे दोनों ही की साथिन हूँ। भले में तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे में तो मैं तुम्हारे गले पड़ूँगी ही।

रमा के मुख से एक शब्द न निकाला। दफ्तर का समय आ गया था। भोजन करने का अवकाश न था। रमा ने कपड़े पहने, और दफ्तर चला। रामेश्वरी ने कहा—क्या बिना भोजन किये ही चले जाओगे?

रमा ने इसका कोई जवाब न दिया, और घर से निकला ही चाहता था कि जालपा झपटकर आई और उसे पुकारकर बोली—मेरे पास जो दो सौ रुपये हैं, उन्हें क्यों नहीं सराफ़ को दे देते?

रमा ने चलते वक्त जान-बूझकर जालपा से रुपये न माँगे थे। वह जानता था, जालपा माँगते ही दे देगी; लेकिन इतनी बातें सुनने के बाद अब रुपये के लिये उसके सामने हाथ फैलाते उसे संकोच ही नहीं, भय होता था। कहीं वह फिर न उपदेश देने बैठ जाये—इसकी अपेक्षा आनेवाली विपत्तियाँ कहीं हलकी थीं; मगर जालपा ने पुकारा तो कुछ आशा बँधी। ठिठक गया और बोला—अच्छी बात है, लाओ दे दो।

वह बाहर के कमरे में बैठ गया। जालपा दौड़कर ऊपर से रुपये लायी और गिन-गिनकर उसकी थैली में डाल दिये। उसने समझा था, रमा रुपये पाकर फूला न समायेगा; पर उसकी आशा पूरी न हुई। अभी तीन सौ रुपये की फ़िक्र करनी थी। वह कहाँ से आयेंगे? भूखा आदमी इच्छा-पूर्ण भोजन चाहता है, दो चार फुलकों से उसकी तुष्टि नहीं होती।

सड़क पर आकर रमा ने एक ताँगा किया और उससे जार्ज-टाउन चलने को कहा—शायद रतन से भेंट हो जाये। वह चाहे तो तीन सौ रुपये का बड़ी आसानी से प्रबन्ध कर सकती है। रास्ते में वह सोचता जाता था, आज बिलकुल संकोच न करूँगा। जरा देर में जार्ज-टाउन आ गया।

रतन का बँगला भी आया। वह बरामदे में बैठी थी। रमा ने उसे देखकर हाथ उठाया। उसने भी हाथ उठाया। पर वहाँ उसका सारा संयम टूट गया। वह बँगले में न जा सका, ताँगा सामने से निकल गया। रतन बुलाती तो वह चला जाता। वह बरामदे में न बैठी होती तब भी शायद वह अन्दर जाता; पर उसे सामने बैठे देखकर वह संकोच में डूब गया।

जब ताँगा गवर्नमेंट हाउस के पास पहुँचा, तो रमा ने चौंककर कहा—चलो चुंगी के दफ़्तर। ताँगेवाले ने घोड़ा फेर दिया।

ग्यारह बजते-बजते रमा दफ़्तर पहुँचा। उसका चेहरा उतरा हुआ था। छाती धड़क रही थी। बड़े बाबू ने जरूर पूछा होगा। जाते ही बुलायेंगे। दफ़्तर में जरा भी रियायत नहीं करते। ताँगे से उतरते ही उसने पहले अपने कमरे की तरफ निगाह डाली। देखा, कई आदमी खड़े उसकी राह देख रहे हैं। वह उधर न जाकर रमेश बाबू की ओर गया।

रमेश बाबू ने पूछा—तुम अब तक कहाँ थे जी, खजांची साहब तुम्हें खोजते फिरते हैं। चपरासी मिला था? रमा ने अटकते हुए कहा—मैं घर पर न था। जरा वकील साहब की तरफ चला गया था। एक बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ।

रमेश—कैसी मुसीबत, घर पर तो कुशल है?

रमा—जी हाँ, घर पर तो कुशल है। कल शाम को यहाँ का काम बहुत था, मैं उसमें ऐसा फँसा कि वक्त को कुछ खबर ही नहीं। जब काम खत्म करके उठा तो खजांची साहब चले गये थे। मेरे पास आमदनी के आठ सौ रुपये थे। सोचने लगा कहाँ रखूँ। मेरे कमरे में तो कोई सन्दूक है नहीं। यही निश्चय किया साथ लेता जाऊँ। पाँच सौ रुपये नकद थे, वह तो मैंने थैली में रखे, तीन सौ रुपये के नोट जेब में रख लिये और घर चला। चौक में दो एक चीज़ें लनी थीं। उधर से होता हुआ घर पहुँचा तो नोट ग़ायब थे।

रमेश बाबू ने आँखें फाड़कर कहा—तीन सौ के नोट ग़ायब हो गये?

रमा—जी हाँ, कोट के ऊपर की जेब में थे। किसी ने निकाल लिये।

रमेश—और तुमको मार कर थैली नहीं छीन ली?

रमा—क्या बताऊँ बाबूजी, तब से चित्त की जो दशा हो रही है, वह

बयान नहीं कर सकता। तब से अब तक यानी इसी फ़िक्र में दौड़ रहा हूँ। कोई बन्दोबस्त न हो सका।

रमेश—अपने पिता से तो तुमने कहा ही न होगा ?

रमा०—उनका स्वभाव तो आप जानते हैं। रुपये तो न देते, उलटी डाँट सुनाते।

रमेश—तो फिर क्या फ़िक्र करोगे ?

रमा०—आज शाम तक कोई-न-कोई फ़िक्र करूँगा ही।

रमेश ने कठोर भाव धारण कर कहा—तो फिर करो न ! इतनी लापरवाही तुमसे कैसे हुई, यह मेरी समझ में नहीं आता। मेरी जेब से तो आज तक एक पैसा न गिरा। आँखें बन्द करके रास्ते में चलते हो या नशे में थे ! मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता। सच-सच बतला दो, कहीं अनाप-शनाप तो नहीं खर्च कर डाले ? उस दिन तुमने मुझसे क्यों रुपये माँगे थे ?

रमा का चेहरा पीला पड़ गया। कहीं कलई न खुल जाये। बात बनाकर बोला—क्या सरकारी रुपये खर्च कर डालूँगा ? उस दिन तो आपसे रुपये इसलिए माँगे थे कि बाबूजी को एक ज़रूरत आ पड़ी थी। घर में रुपये न थे। आपका खत मैंने उन्हें सुना दिया था। बहुत हँसे, दूसरा इन्तज़ाम कर लिया। इन नोटों के गायब होने का तो मुझे खुद ही आश्चर्य है।

रमेश—तुम्हें अपने पिता जी से माँगते संकोच होता हो तो मैं खत लिखकर मँगवा लूँ ?

रमा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—नहीं बाबूजी, ईश्वर के लिए ऐसा न कीजिएगा। ऐसी ही इच्छा हो, तो मुझे गोली मार दीजिए।

रमेश ने एक क्षण तक कुछ सोचकर कहा—तुम्हें विश्वास है, शाम तक रुपये मिल जायेंगे ?

रमा०—हाँ, आशा तो है !

रमेश—तो इस थैली के रुपये जमा कर दो, मगर देखो भाई, साफ़-साफ़ कहे देता हूँ, अगर कल दस बजे रुपये न लाये तो मेरा दोष नहीं। कायदा तो यही कहता है कि मैं इसी वक्त तुम्हें पुलिस के हवाले करूँ; मगर तुम अभी लड़के हो, इसलिये क्षमा करता हूँ। वरना तुम्हें मालूम है, मैं सरकारी काम में किसी प्रकार की मुरौवत नहीं करता। अगर तुम्हारी जगह

मेरा भाई या बेटा होता, तो मैं उसके साथ भी यही सलूक करता, बल्कि शायद इससे सख्त। तुम्हारे साथ तो फिर भी बड़ी नर्मी कर रहा हूँ। मेरे पास रुपये होते तो तुम्हें दे देता, लेकिन मेरी हालत तुम जानते हो। हाँ, किसी का क़र्ज़ नहीं रखता। न किसी को क़र्ज़ देता हूँ, न किसी से लेता हूँ। कल रुपये न पाये तो बुरा होगा। मेरी दोस्ती भी तुम्हें पुलिस के पंजे से न बचा सकेगी। मेरी दोस्ती ने आज अपना हक अदा कर दिया, वरना इस वक्त तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ होतीं।

हथकड़ियाँ! यह शब्द तीर की भाँति रमा की छाती में लगा। वह सिर से पाँव तक काँप उठा। उस विपत्ति की कल्पना करके उसकी आँखें डबडबा आयीं। वह धीरे-धीरे सिर झुकाये सजा पाये हुए क़ैदी की भाँति जाकर अपनी कुरसी पर बैठ गया; पर वह भयंकर शब्द बीच-बीच में उसके हृदय में गूँज जाता था।

आकाश पर काली घटाएँ छायी थीं। सूर्य का कहीं पता न था, वह भी क्या उस घटा रूपी कारागार में बंद है? क्या उसके हाथों में भी हथकड़ियाँ है?

२०

रमा शाम को दफ्तर से चलने लगा, तो रमेश बाबू दौड़े हुए आये और कल रुपये लाने की ताकीद की। रमा मन में झुँझला उठा। आप बडे ईमानदार की दुम बने हैं? ढोंगिया कहीं का! अगर अपनी जरूरत आ पड़े तो दूसरों के तलवे सहलाते फिरेंगे; पर मेरा काम है तो आप आदर्शवादी बन बैठे। यह सब दिखाने के दाँत हैं! मरते समय इसके प्राण भी जल्दी नहीं निकलेंगे!

कुछ दूर चलकर उसने सोचा, एक बार फिर रतन के पास चलूँ। और ऐसा कोई न था जिससे रुपये मिलने की आशा होती। वह जब उसके बँगले पर पहुँचा तो वह अपने बँगले में गोल चबूतरे पर बैठी हुई थी। उसके पास ही एक गुजराती जौहरी बैठा सन्दूक से सुन्दर आभूषण निकाल-निकालकर दिखा रहा था। रमा को देखकर वह बहुत खुश हुई। आइए बाबू साहब, देखिए, सेठजी कैसी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाए हैं। देखिए, हार कितना सुन्दर है, इसके दाम बारह सौ रुपये बताते हैं।

रमा ने हार को हाथ में लेकर देखा, और कहा—हाँ, चीज़ तो अच्छी मालूम होती है।

रतन—दाम बहुत कहते हैं।

जौहरी—बाईजी, ऐसा हार अगर कोई दो हज़ार में ला दे तो जो जुरमाना कहिए, दूँ। बारह सौ मेरी लागत बैठ गयी है।

रमा ने मुस्कराकर कहा—ऐसा न कहिए सेठजी, जुरमाना देना पड़ जायेगा।

जौहरी—बाबू साहब, हार तो सौ रुपये में भी आ जायेगा, और बिल्कुल ऐसा ही, बल्कि चमक-दमक से इससे भी बढ़कर; मगर माल परखना चाहिए। मैंने खुद ही आपसे मोल-तोल की बात नहीं की; मोल-तोल अनाड़ियों से किया जाता है। आपसे क्या मोल-तोल। हम लोग निरे रोज़गारी नहीं हैं बाबू साहब, आदमी का मिज़ाज देखते हैं। श्रीमती जी ने क्या अमीराना मिज़ाज दिखाया है कि वाह!

रतन ने हार को लुब्ध नेत्रों से देखकर कहा—कुछ तो कम कीजिए सेठजी, आपने तो जैसे कसम खा ली।

जौहरी—कमी का नाम न लीजिए हुज़ूर! यह चीज़ आपकी भेंट है।

रतन—अच्छा, अब एक बात बतला दीजिए। कम-से-कम आप क्या लेंगे?

जौहरी ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—बारह सौ रुपये और बारह कौड़ियाँ होंगी; हुज़ूर। आपके कसम खाकर कहता हूँ, इसी शहर में पन्द्रह सौ को बेचूँगा, और आपसे कह जाऊँगा, किसने लिया।

यह कहते हुए जौहरी ने हार के रखने का केस निकाला। रतन को विश्वास हो गया, यह कुछ कम न करेगा। बालकों की भाँति अधीर होकर बोली—आप तो ऐसा समेटे लेते हैं कि हार को नज़र लग जायेगी!

जौहरी—क्या करूँ हुज़ूर! जब ऐसे दरबार में चीज़ की क़दर नहीं होती, तो दुःख होता ही है।

रतन ने कमरे में जाकर रमा को बुलाया और बोली—आप समझते हैं यह कुछ और उतरेगा?

रमा०—मेरी समझ में तो चीज़ एक हजार से ज़्यादा की नहीं है।

रतन—उँह, होगा ! मेरे पास तो छः सौ रुपये हैं। आप चार सौ रुपये का प्रबन्ध कर दें तो ले लूँ। वह इसी गाड़ी से काशी जा रहा है। उधार न मानेगा। वकील साहब किसी जलसे में गये हैं, नौ-दस बजे के पहले न लौटेंगे। मैं आपको कल रुपये लौटा दूँगी।

रमा ने बड़े संकोच के साथ कहा—विश्वास मानिये, मैं बिलकुल खाली हाथ हूँ। मैं तो आपसे रुपये माँगने आया था। मुझे बड़ी सख्त ज़रूरत है। यह रुपये मुझे दे दीजिए, मैं आपके लिए कोई अच्छा-सा हार यहीं से ला दूँगा। मुझे विश्वास है, ऐसा हार सात-आठ सौ में मिल जायगा।

रतन—चलिए, मैं आपकी बातों में नहीं आती। छः महीने में एक कंगन तो बनवा न सके, अब हार क्या लायेंगे ? मैं यहाँ कई दूकानें देख चुकी हूँ। ऐसी चीज़ शायद ही कहीं निकले और निकले भी, तो उसके ड्योढ़े दाम देने पड़ेंगे।

रमा०—तो इसे कल क्यों न बुलाइए, इसे सौदा बेचने की गरज़ होगी तो आज ज़रूर ठहरेगा।

रतन—अच्छा कहिए, देखिए क्या कहता है।

दोनों कमरे के बाहर निकले। रमा ने जौहरी से कहा—तुम कल आठ बजे क्यों नहीं आते ?

जौहरी—नहीं हुज़ूर, कल काशी में दो-चार बड़े रईसों से मिलना है। आज न जाने से बड़ी हानि हो जायेगी।

रतन—मेरे पास इस वक्त छः सौ रुपये हैं, आप हार दे जाइए, बाक़ी के रुपये काशी से लौटकर ले जाइयेगा।

जौहरी—रुपये का तो कोई हर्ज न था, महीने-दो-महीने में ले लेता; लेकिन हम परदेशी लोगों का क्या ठिकाना, आज यहाँ हैं, कल वहाँ हैं, कौन जाने यहाँ फिर कब आना हो ? आप इस वक्त इसका एक हज़ार दे दें, दो सौ फिर दे दीजिएगा।

रमा—तो सौदा न होगा।

जौहरी—इसका अख्तियार आपको है, मगर इतना कहे देता हूँ कि ऐसा सौदा फिर न पाइयेगा।

रमा०—रुपये होंगे तो माल बहुत मिल जायेगा ।

जौहरी—कभी-कभी दाम रहने पर भी अच्छा माल नहीं मिलता। यह कहकर जौहरी ने फिर हार को केस में रखा और इस तरह सन्दूक को समेटने लगा, मानो वह एक क्षण भी न रुकेगा ।

रतन का रोआँ-रोआँ कान बना हुआ था, मानों कोई क़ैदी अपनी क़िस्मत का फैसला सुनने को खड़ा हो। उसके हृदय की सारी ममता, ममता का सारा अनुराग, अनुराग की सारी अधीरता, उत्कंठा और चेष्टा उसी हार पर केन्द्रित हो रही थी, मानों उसके प्राण उसी हार के दानों में जा छिपे थे, मानों उसके जन्म-जन्मान्तरों को संचित अभिलाषा-सी हार पर मँडरा रही थी। जौहरी को सन्दूक बन्द करते देखकर वह जल विहीन मछली की भाँति तड़पने लगी। कभी वह सन्दूक खोलती, कभी वह दराज़ खोलती; पर रुपये कहीं न मिले ।

सहसा मोटर की आवाज सुनकर रतन ने फाटक की ओर देखा। वकील साहब चले आ रहे थे। वकील साहब ने मोटर बरामदे के सामने रोक दी और चबूतरे की तरफ़ चले। रतन ने चबूतरे के नीचे उतरकर कहा—आप तो नौ बजे आने को कह गये थे ?

वकील—वहाँ कोरम ही पूरा न हुआ, बैठकर क्या करता ? कोई दिल से तो काम करना नहीं चाहता, सब मुफ्त में नाम कमाना चाहते हैं। यह क्या कोई जौहरी है ?

जौहरी ने उठकर सलाम किया।

वकील साहब रतन से बोले—क्यों, तुमने कोई चीज़ पसन्द की ?

रतन—हाँ, एक हार पसन्द किया है, बारह सौ रुपये माँगता है ।

वकील—बस ! और कोई चीज़ पसन्द करो। तुम्हारे पास सिर की कोई अच्छी चीज़ नहीं है ।

रतन—इस वक्त मैं यही हार लूँगी। आजकल सिर की चीजें कौन पहनता है ।

वकील—लेकर रख लो, पास रहेगी तो कभी पहन भी लोगी; नहीं तो कभी दूसरों को पहने देख लिया, तो कहोगी, मेरे पास होता, तो मैं भी पहनती।

वकील साहब को रतन से पति का-सा प्रेम नहीं, पिता का-सा स्नेह

था। जैसे कोई स्नेही पिता मेले में लड़कों से पूछ-पूछकर खिलौने लेता है, वह भी रतन से पूछ-पूछकर खिलौने लेते थे, उसके कहने-भर की देरी थी। उनके पास उसे प्रसन्न करने के लिए धन के सिवा और चीज ही क्या थी? उन्हें अपने जीवन में एक आधार की जरूरत थी—सदेह आधार की, जिसके सहारे इस जीर्ण दशा में भी जीवन-संग्राम में खड़े रह सकें, जैसे किसी उपासक को प्रतिमा की जरूरत होती है। बिना प्रतिमा के वह किस पर फूल चढ़ाये, किसे गंगा जल से नहलाये, किसे स्वादिष्ट चीज़ों का भोग लगाये। इसी भाँति वकील साहब को भी पत्नी की जरूरत थी। रतन उनके लिए सदेह कल्पना मात्र थी जिससे उनकी आत्मिक पिपासा शांत होती थी। कदाचित् रतन के बिना उनका जीवन उतना ही सूना होता, जितना आँखों के बिना मुख।

रतन ने केस से हार निकालकर वकील साहब को दिखाया और बोली—इसके बारह सौ रुपये माँगते हैं।

वकील साहब की निगाह में रुपये का मूल्य उसकी आनन्ददायिनी शक्ति थी। अगर हार रतन को पसन्द है, तो उन्हें इसकी परवा न थी कि इसके क्या दाम पड़ेंगे। उन्होंने चेक निकालकर जौहरी की तरफ देखा और पूछा—सच-सच बोलो, कितना लिखूँ? अगर फर्क पड़ा तो तुम जानो।

जौहरी ने हार को उलट-पलटकर देखा और हिचकते हुए बोला—साढ़े ग्यारह सौ कर दीजिए। वकील साहब ने चेक लिखकर उसको दिया, और वह सलाम करके चलता हुआ।

रतन का मुख इस समय वसन्त की प्राकृतिक शोभा की भाँति विकसित था। ऐसा गर्व, ऐसा उल्लास उसके मुख पर कभी भी न दिखायी दिया था। मानों उसे इस समय संसार की सम्पत्ति मिल गयी है।

हार को गले में लटकाये वह अन्दर चली गयी। वकील साहब के आचार-विचार में नयी और पुरानी प्रथाओं का विचित्र मेल था। भोजन वह अभी तक किसी ब्राह्मण के हाथ का भी न खाते थे। आज रतन उनके लिए अच्छी-अच्छी चीज़ें बनाने लगी। अपनी कृतज्ञता को वह कैसे जाहिर करे?

रमा कुछ देर तक तो बैठा वकील साहब का योरोप-गौरव-गान सुनता रहा, अन्त में निराश होकर चल दिया।

२१

अगर इस समय किसी को संसार में सबसे दुःखी, जीवन से निराश, चिन्ताग्नि में जलते हुए प्राणी की मूर्ति देखनी हो तो उस युवक को देखे, जो साइकिल पर बैठा हुआ अलफ्रेड-पार्क के सामने चला जा रहा है। इस वक्त अगर कोई काला सांप नज़र आये, तो वह दोनों हाथ फैलाकर उसका स्वागत करेगा और उसके विष को सुधा की तरह पियेगा। उसकी रक्षा सुधा से नहीं, अब विष ही से हो सकती है। मौत ही अब उसकी चिन्ताओं का अन्त कर सकती है। लेकिन क्या मौत उसे बदनामी से भी बचा सकती है? सबेरा होते ही यह बात घर-घर फैल जायेगी—सरकारी रुपया खा गया और जब पकड़ा गया, तब आत्म-हत्या कर ली। कुल में कलंक लगाकर मरने के बाद भी अपनी हँसी कराके चिन्ताओं से मुक्त हुआ तो क्या, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या है?

अगर वह इस समय जाकर जालपा से सारी स्थिति कह सुनाये, तो वह उसके साथ अवश्य सहानुभूति दिखायेगी। जालपा को चाहे कितना ही दुःख हो, पर अपने गहने निकालकर देने में एक क्षण का भी विलम्ब न करेगी। गहनों को गिरवी रखकर वह सरकारी रुपये अदा कर सकता है। उसे अपना परदा खोलना पड़ेगा। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं।

मन में निश्चय करके रमा घर की ओर चला। पर उसकी चाल में वह तेजी न थी जो मानसिक स्फूर्ति का लक्षण है।

लेकिन घर पहुँचकर उसने सोचा—जब यही करना है तो जल्दी क्या है, जब चाहूँगा, माँग लूँगा। कुछ देर गपशप करता रहा, फिर खाना खाकर लेटा। सहसा उसके जी में आया, क्यों न चुपके से कोई चीज़ उठा ले जाऊँ? कुल-मर्यादा की रक्षा करने के लिए एक बार उसने ऐसा किया भी था। उसी उपाय से क्या वह प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता? अपनी जबान से तो शायद वह कभी अपनी विपत्ति का हाल न कह सकेगा। इसी प्रकार आगे-पीछे में पड़े हुए सबेरा हो जायेगा। और तब उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिलेगा।

मगर उसे फिर शंका हुई, कहीं जालपा की आँख न खुल जाये ? फिर तो उसके लिए त्रिवेणी के सिवा और कोई स्थान ही न रह जायेगा । जो कुछ भी हो, एक बार तो यह उद्योग करना ही पड़ेगा । उसने धीरे से जालपा का हाथ अपनी छाती पर से हटाया, और नीचे खड़ा हो गया । उसे ऐसा खयाल हुआ कि जालपा हाथ हटाते ही चौंकी और मालूम हुआ कि यह भ्रम-मात्र था । उसे अब जालपा के सलूके की जेब से तालियों का गुच्छा निकालना था । देर करने का अवसर न था । नींद में भी निम्न-चेतना अपना काम करती रहती हैं । बालक कितना ही ग़ाफ़िल सोया हो, मात के चारपाई से उठते ही जाग पड़ता है । लेकिन जब चाबी निकालने के लिए झुका तो उसे जान पड़ा कि जालपा मुसकरा रही है । उसने झट हाथ खींच लिया और लैम्प के क्षीण प्रकाश में जालपा के मुख की ओर देखा, जो कोई सुखद स्वप्न देख रही थी । हा, इस सरला के साथ मैं ऐसा विश्वास-घात करूँ ? जिसके लिए मैं अपने प्राणों को भेंट कर सकता हूँ उसी के साथ यह कपट ? जालपा का निष्कपट स्नेह-पूर्ण हृदय मानों उसके मुख-मंडल पर अंकित हो रहा था । आह ! जिस समय इसे ज्ञात होगा कि इसके गहने फिर चोरी हो गये, इसकी क्या दशा होगी ? पछाड़ खायेगी, सिर के बाल नोचेगी । वह किन आँखों से उसका वह क्लेश देखेगा ? उसने सोचा—मैंने इसे आराम ही कौन-सा पहुँचाया है ? किसी दूसरे से विवाह होता तो अब तक वह रत्नों से लद जाती । दुर्भाग्यवश इस घर में आयी जहाँ कोई सुख नहीं । उलटे और रोना पड़ा ।

रमा फिर चारपाई पर लेट रहा । उसी वक्त जालपा की आँखें खुल गयीं । उसके मुख की ओर देखकर बोली—तुम कहाँ गये थे ? मैं बड़ा अच्छा सपना देख रही थी । बड़ा बाग़ है और हम तुम दोनों उसमें टहल रहे हैं । इतने में न जाने तुम कहाँ चले जाते हो और एक साधु आकर मेरे सामने खड़ा हो जाता है । बिल्कुल देवताओं का-सा उसका स्वरूप है । वह मुझसे कहता है—बेटी, तुझे वर देने आया हूँ ! माँग क्या माँगती है ? तुम्हें इधर-उधर खोज रही हूँ कि तुमसे पूछूँ, क्या माँगूँ ! और तुम कहीं दिखायी नहीं देते । मैं सारा बाग़ छान आयी, पेड़ों पर झाँककर देखा, तुम न जाने कहाँ चले गये हो । बस, इतने में नींद खुल गयी, बरदान न माँगने पाई !

रमा ने मुसकराते हुए कहा—क्या वरदान माँगतीं ?

'माँगती जो जी में आता, तुम्हें क्यों बता दूँ ?'

'नहीं बताओ, शायद तुम बहुत-सा धन माँगतीं ।'

'धन को तुम बहुत बड़ी चीज़ समझते होगे । मैं तो कुछ नहीं समझती ।'

'हाँ, मैं तो समझता हूँ । निर्धन रहकर जीना मरने से भी बदतर है । मैं अगर किसी देवता को पकड़ पाऊँ, तो बिना काफी रुपये लिये न मानूँ । मैं सोने की दीवार नहीं खड़ा करना चाहता, न राकफेलर और कारनेगी बनने की मेरी इच्छा है; मैं केवल इतना धन चाहता हूँ कि जरूरत की मामूली चीजों के लिए तरसना न पड़े । बस, कोई देवता मुझे पाँच लाख दे दे, तो मैं फिर उससे कुछ न मागूँगा । हमारे ही गरीब मुल्क में ऐसे कितने ही रईस, सेठ, ताल्लुकेदार हैं जो पाँच लाख एक साल में खर्च करते हैं, बल्कि कितनों ही का तो माहवार खर्च पांच लाख होगा । मैं तो इसमें सात जीवन काटने को तैयार हूँ; मगर मुझे कोई इतना भी नहीं देता । तुम क्या माँगतीं ? अच्छे-अच्छे गहने ?

जालपा ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—क्यों चिढ़ाते हो मुझे, क्या मैं गहनों पर और स्त्रियों से ज्यादा जान देती हूँ ? मैंने तो तुमसे कभी आग्रह नहीं किया । तुम्हें ज़रूरत हो, तो आज उन्हें उठा ले जाओ, मैं ख़ुशी से दे दूँगी ।

रमा ने मुसकराकर कहा—तो फिर बतलाती क्यों नहीं ?

ज़ालपा—मैं यही माँगती, कि मेरा स्वामी सदा मुझसे प्रेम करता रहे. उसका मन कभी मुझसे न फिरे ?

रमा ने हँसकर कहा—क्या तुम्हें इसकी भी शंका है ?

'तुम देवता भी होते, तो शंका होती, तुम तो आदमी हो । मुझे तो ऐसी कोई स्त्री न मिली जिसने अपनी पति की निष्ठुरता का दुखड़ा न रोया हो । साल-दो-साल तो वह खूब प्रेम करते हैं; फिर न जाने क्यों उन्हें स्त्री से अरुचि-सी हो जाती है । मन चंचल होने लगता है । औरत के लिए इससे बड़ी विपत्ति नहीं । उस विपत्ति से बचने के सिवा मैं और क्या वरदान माँगती ?'—यह कहते हुए जालपा ने पति के गले में बाहें डाल दीं और प्रणय-खचित नेत्रों से देखती हुई बोली—सच बताना, तुम अब भी मुझे वैसे ही चाहते हो जैसे पहले चाहते थे ? देखो, सच कहना, बोलो !

रमा ने जालपा के गले से चिमटकर कहा—उससे कहीं अधिक, लाख गुना !

जालपा ने हँसकर कहा—झूठ ! बिलकुल झूठ ! सोलहो आना झूठ !

रमा—यह तुम्हारी ज़बरदस्ती है । आख़िर ऐसा तुम्हें कैसे जान पड़ा ?

जालपा—आँखों से देखती हूँ, और कैसे जान पड़ा ? तुमने मेरे पास बैठने की क़सम खा ली है । देखो, तुम गुम सुम रहते हो । मुझसे प्रेम होता तो मुझपर विश्वास भी होता । बिना विश्वास के प्रेम हो ही कैसे सकता है ? जिससे तुम अपनी बुरी-से-बुरी बात न कह सको, उससे तुम प्रेम नहीं कर सकते । हाँ, उसके साथ विहार कर सकते हो, उसी तरह जैसे कोई वेश्या के पास जाता है । वेश्या के पास लोग आनन्द उठाने ही जाते हैं, कोई उससे मन की बात कहने नहीं जाता । हमारी भी वही दशा है । बोलो, है या नहीं ? आँखें क्यों छिपाते हो ? क्या मैं देखती नहीं कि तुम बाहर से घबड़ाये हुए आते हो ? बातें करते समय देखती हूँ, तुम्हारा मन किसी और तरफ़ रहता है । भोजन में भी देखती हूँ, तुम्हें कोई आनन्द नहीं आता । दाल गाढ़ी है या पतली, शाक कम है या ज्यादा, चावल में कनी है या पक गये हैं, इस तरफ तुम्हारी निगाह नहीं जाती । बेगार की तरह भोजन करते हो और जल्दी से भागते हो । मैं यह सब क्या नहीं देखती ? मुझे देखना न चाहिए ! मैं विलासिनी हूँ, इस रूप में तुम मुझे देखते हो । मेरा काम है—विहार करना, विलास करना, आनन्द करना । मुझे तुम्हारी चिंताओं से मतलब ? मगर ईश्वर ने वैसा हृदय नहीं दिया । क्या करूँ ? मैं समझती हूँ जब मुझे जीवन ही व्यतीत करना है, जब मैं केवल तुम्हारे मनोरंजन की ही वस्तु हूँ, तो क्यों अपनी जान विपत्ति में डालूँ ?

जालपा ने रमा से कभी दिल खोलकर बात न की थी । वह इतनी विचारशील है, उसने अनुमान ही न किया था । वह उसे वास्तव में रमणी ही समझता था । अन्य पुरुषों की भाँति वह भी पत्नी को इसी रूप में देखता था । वह उसके यौवन पर मुग्ध था । उसकी आत्मा का स्वरूप देखने की चेष्टा कभी न की । शायद वह समझता था, इसमें आत्मा है ही नहीं । अगर वह रूप-लावण्य की राशि न होती, तो कदाचित् वह उससे बोलना भी पसन्द न करता । उसका सारा आकर्षण, उसकी सारी आसक्ति केवल उसके रूप पर

थी। वह समझता था, जालपा इसी में प्रसन्न है। अपनी चिन्ताओं के बोझ से वह उसे दबाना नहीं चाहता था, पर आज उसे ज्ञात हुआ, जालपा उतनी ही चिन्तनशील है, जितना वह खुद था। इस वक्त उसे अपनी मनोव्यथा कह डालने का बहुत ही अच्छा अवसर मिला था पर हाय संकोच! इसने फिर उसकी ज़बान बन्द कर दी। जो बातें वह इतने दिनों तक छिपाये रहा, वह अब कैसे कहे? क्या ऐसा करना जालपा के आरोपित आक्षेपों को स्वीकार करना न होगा? हाँ, उसकी आँखों से आज भ्रम का परदा उठ गया। उसे ज्ञात हुआ, कि विलास पर प्रेम का निर्माण करने की चेष्टा करना उसका अज्ञान था।

रमा इन्हीं विचारों में पड़ा-पड़ा सो गया। उस समय आधी रात के ऊपर गुज़र गयी थी। सोया तो इसी सबब से था कि बहुत सबेरे उठ जाऊँगा, पर नींद खुली तो कमरे में धूप की किरणें आ-आकर जगा रही थीं। वह चटपट उठा और बिना मुँह हाथ धोये कपड़े पहनकर जाने को तैयार हो गया। वह रमेश बाबू के पास जाना चाहता था। आज उनसे यह कथा कहनी पड़ेगी। स्थिति का पूरा ज्ञान हो जाने पर कुछ-न-कुछ सहायता करने पर तैयार हो जायेंगे।

जालपा उस समय भोजन बनाने की तैयारी कर रही थी। रमा को इस भाँति जाते देखकर प्रश्न-सूचक नेत्रों से देखा। रमा के चेहरे पर चिन्ता, भय, चंचलता और हिंसा मानों बैठी घूर रही थीं। एक क्षण के लिए वह बेसुध-सी हो गयी। एक हाथ में छुरी और दूसरे में एक करेला लिये हुए वह द्वार की ओर ताकती रही। यह बात क्या है, उसे कुछ बताते क्यों नहीं? वह और कुछ न कर सके, हमदर्दी तो कर ही सकती है। उसके जी में आया, पुकारकर पूछूँ क्या बात है। उठकर द्वार तक आयी भी, पर रमा सड़क पर दूर निकल गया था। उसने देखा, वह बड़ी तेजी से चला जा रहा है, जैसे सनक गया हो। न दाहिनी ओर ताकता है, न बायीं ओर। केवल सिर झुकाये, पथिकों से टकराता, पैरगाड़ियों की परवा न करता हुआ भागा चला जा रहा था। आखिर वह लौटकर फिर तरकारी काटने लगी; पर उसका मन उसी ओर लगा हुआ था। क्यों मुझसे इतना छिपाते हैं।

रमा रमेश के घर पहुँचा तो आठ बज गये थे। बाबू साहब चौकी पर

बैठे सन्ध्या कर रहे थे। इन्हें देखकर इशारे से बैठने को कहा। कोई आध-घण्टे में सन्ध्या समाप्त हुई। बोले—क्या अभी मुँह-हाथ भी नहीं धोया ? यही लीचड़पन मुझे नापसन्द है। तुम कुछ करो या न करो, बदन की सफ़ाई तो करते रहो। क्या हुआ, रुपये का कुछ प्रबन्ध हुआ ?

रमा०—इसी फ़िक्र में तो आपके पास आया हूँ।

रमेश—तुम भी अजीब आदमी हो, अपने बाप से कहते हुए तुम्हें क्यों शर्म आती है ? यही न होगा, तुम्हें ताने देंगे; लेकिन इस संकट से तो छूट जाओगे। उनसे सारी बातें साफ़-साफ़ कह दो। ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर हो जाया करती हैं। इसमें डर की क्या बात है। नहीं कहो, मैं चलकर कह दूँ।

रमा०—उनसे कहना होता, तो अब तक कभी कह चुका होता। क्या आप कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकते ?

रमेश०—कर क्यों नहीं सकता; पर करना नहीं चाहता। ऐसे आदमी के साथ मुझे कोई हमदर्दी नहीं हो सकती। तुम जो बात मुझसे कह सकते हो, क्या उनसे नहीं कह सकते ? मेरी सलाह मानो। उनसे जाकर कह दो। अगर वह रुपया न देंगे, तब मेरे पास आना।

रमा को अब और कुछ कहने का साहस न हुआ। लोग इतनी घनिष्ठता होने पर भी इतने कठोर हो सकते हैं। वह यहाँ से उठा; पर उसे कुछ सुझाई न देता था। चौधैया में आकाश से गिरते हुए जल-विन्दुओं की जो दशा होती है, वही इस समय रमा की हुई। दस क़दम तेजी से आगे चलता, तो फिर सोचकर रुक जाता और दस-पाँच कदम पीछे लौट जाता। कभी इस गली में घुस जाता, कभी उस गली में।

सहसा उसे एक बात सूझी। क्यों न जालपा को एक पत्र लिखकर अपनी सारी कठिनाइयाँ कह सुनाऊँ ? मुँह से तो वह कुछ कह न सकता था; पर क़लम से लिखने में उसे कोई मुश्किल मालूम नहीं होती थी। पत्र लिखकर जालपा को दे दूँगा, और बाहर के कमरे में आ बैठूँगा। इससे सरल और क्या हो सकता है ? वह भागा हुआ घर आया, और तुरन्त यह पत्र लिखा—

'प्रिये, क्या कहूँ, किस विपत्ति में फँसा हुआ हूँ। अगर एक घण्टे के अन्दर तीन सौ रुपये का प्रबन्ध न हो गया, तो हाथों में हथकड़ियाँ पड़

जायेंगी। मैंने बहुत कोशिश की, किसी से उधार ले लूँ; किन्तु कहीं न मिल सके। अगर तुम अपने दो-एक जेवर दे दो, तो मैं गिरवी रखकर काम चला लूँ! ज्यों ही रुपये हाथ में आ जायेंगे, छुड़ा दूँगा! अगर मजबूरी न आ पड़ती, तो तुम्हें कष्ट न देता। ईश्वर के लिए रुष्ट न होना! मैं बहुत जल्द छुड़ा दूँगा....'

अभी यह पत्र समाप्त न हुआ था कि रमेश बाबू मुस्कराते हुए आकर बैठ गये और बोले—कहा उनसे तुमने?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—अभी तो मौक़ा नहीं मिला।

रमेश०—तो क्या दो-चार दिन में मौक़ा मिलेगा? मैं डरता हूँ कि कहीं आज तुम योंही खाली हाथ न चले जाओ। नहीं तो ग़ज़ब ही हो जाये!

रमा०—जब उनसे माँगने का निश्चय कर लिया तो अब क्या चिंता।

रमेश०—आज मौक़ा मिले तो ज़रा रतन के पास चले जाना। उस दिन मैंने कितना ज़ोर देकर कहा था, लेकिन मालूम होता है, तुम भूल गये?

रमा०—भूल तो नहीं गया; लेकिन उससे कहते शर्म आती है।

रमेश०—अपने बाप से कहते शर्म आती है, रतन से कहते भी शर्म आती है? अगर अपने लोगों में यह संकोच न होता, तो आज हमारी यह दशा क्यों होती?

रमेश बाबू चले गये, तो रमा ने पत्र उठाकर जेब में डाला और उसे जालपा को देने का निश्चय करके घर में गया। जालपा आज किसी महिला के घर जाने को तैयार थी। थोड़ी देर हुई, बुलावा आया था। उसने अपनी सबसे सुन्दर साड़ी पहनी थी। हाथों में जड़ाऊ कंगन शोभा दे रहे थे, गले में चन्द्रहार। आईना सामने रखे हुए कानों में झूमक पहन रही थी। रमा को देखकर बोली—आज सबेरे कहाँ चले गये थे? हाथ-मुँह तक न धोया। दिन-भर तो बाहर रहते ही हो, शाम-सवेरे तो घर पर रहा करो। तुम नहीं रहते तो घर सूना-सूना लगता है। मैं अभी सोच रही थी, मुझे मैके जाना पड़े, तो जाऊँ या न जाऊँ? मेरा जी तो वहाँ बिलकुल न लगे।

रमा०—तुम तो कहीं जाने को तैयार बैठी हो।

जालपा—सेठानी जी ने बुला भेजा है, दोपहर तक चली आऊँगी।

रमा की दशा इस समय उस शिकारी की-सी थी, जो हिरनी को अपने

शावकों के साथ किलोल करते देखकर तनी हुई बन्दूक कंधे पर रेख लेता है, और वात्सल्य और प्रेम की क्रीड़ा देखने में तल्लीन हो जाता।

उसे अपनी ओर टकटकी लगाये देखकर जालपा ने मुसकराकर कहा—देखो, मुझे नज़र न लगा देना! मैं तुम्हारी आँखों से बहुत डरती हूँ।

रमा एक ही उड़ान में वास्तविक संसार से कल्पना और कवित्व के संसार में जा पहुँचा। ऐसे अवसर पर जब जालपा का रोम-रोम आनन्द से नाच रहा है, क्या वह अपना पत्र देकर उसकी सुखद कल्पनाओं को दलित कर देगा? वह कौन हृदयहीन व्याध है, जो चहकती हुई चिड़िया की गर्दन पर छुरी चला देगा? वह कौन अरसिक आदमी है, जो किसी प्रभात कुसुम को तोड़कर पैरों से कुचल डालेगा? रमा इतना हृदयहीन, इतना अरसिक नहीं है। वह जालपा पर इतना बड़ा आघात नहीं कर सकता। उसके सिर कैसी ही विपत्ति क्यों न पड़ जाय, उसकी कितनी ही बदनामी हो उसका जीवन ही क्यों न कुचल दिया जाय पर वह इतना निष्ठुर नहीं हो सकता। उसने अनुरक्त होकर कहा—नज़र तो न लगाऊँगा, हाँ हृदय से लगा लूँगा। इसी एक वाक्य से उसकी सारी चिन्तायें सारी बाधाएँ विसर्जित हो गयीं। स्नेह-संकोच की वेदी पर उसने अपने को भेंट कर दिया। इस अपमान के सामने जीवन के और सारे क्लेश तुच्छ थे। इस समय उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो फोड़े पर नश्तर की क्षणिक पीड़ा न सहकर उसके फूटने, नासूर पड़ने, वर्षों खाट पर पड़े रहने और कदाचित् प्राणान्त हो जाने के भय को भी भूल जाता है।

जालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले से लगा लिया और इस तरह भेंच-भेंचकर उसे आलिंगन करने लगा, मानो यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है, यही उसका अन्तिम आलिंगन हो। उसके कर-पाश मानो रेशम के सहस्रों तारों से संगठित होकर जालपा से चिमट गये थे। मानो कोई मरणासन्न कृपण अपने कोष की कुंजी मुट्ठी में बन्द किये हो, और प्रतिक्षण मुट्ठी कठोर पड़ती जाती हो। क्या मुट्ठी को बलपूर्वक खोल देने से ही उसके प्राण न निकल जायँगे?

सहसा जालपा बोली—मुझे कुछ रुपये दे तो दो, शायद वहाँ कुछ जरूरत पड़े।

रमा ने चौंककर कहा—रुपये ! रुपये इस वक्त तो नहीं हैं ?

जालपा—हैं, हैं, मुझसे बहाना कर रहे हो। बस, मुझे दो रुपये दे दो, और ज्यादा नहीं चाहती।

यह कहकर उसने रमा के जेब में हाथ डाल दिया, और कुछ पैसे के साथ वह पत्र भी निकाल लिया।

रमा ने हाथ बढ़ाकर पत्र को जालपा के हाथ से छीनने की चेष्टा करते हुए कहा—काग़ज़ मुझे दे दो, सरकारी काग़ज़ है।

जालपा—किसका ख़त है, बता दो ?

जालपा ने तह किये पुरज़े को खोलकर कहा—यह सरकारी काग़ज़ है ! झूठे कहीं के। तुम्हारा ही लिखा....

रमा०—दे दो, क्यों परेशान करती हो ?

रमा ने फिर काग़ज़ छीन लेना चाहा; पर जालपा ने हाथ पीछे फेरकर कहा—मैं विना पढ़े न दूँगी। कह दिया, ज्यादा ज़िद करोगे, तो फाड़ डालूँगी।

रमा०—अच्छा फाड़ डालो।

जालपा—तब मैं जरूर पढ़ूँगी।

उसने दो कदम पीछे हटकर फिर ख़त को खोला, और पढ़ने लगी।

रमा ने फिर उसके हाथ से काग़ज़ छीनने की कोशिश नहीं की। उसे जान पड़ा, आसमान फट पड़ा है, मानो कोई भयंकर जंतु उसे निगलने के लिए बढ़ा चला आता हैं। वह धड़-धड़ करता हुआ ऊपर से उतरा और घर के बाहर निकल गया। कहाँ अपना मुँह छिपा ले ? कहाँ छिप जाय कि कोई उसे देख न सके। उसकी दशा वही थी जो किसी नंगे आदमी की होती है। वह सिर से पांव तक कपड़े पहने हुए भी नंगा था। आह ! सारा परदा खुल गया ! उसकी सारी कपट लीला खुल गयी ! जिन बातों को छिपाने की उसने इतने दिनों चेष्टा की, जिनको गुप्त रखने के लिए उसने कौन-कौन सी कठिनाइयाँ नहीं झेलीं, उन सबों ने आज मानों उसके मुँह पर कालिख पोत दी। वह अपनी आँखों से नहीं देख सकता। जालपा की सिसकियाँ, पिता की झिड़कियाँ, पड़ोसियों की कानाफूसियाँ सुनने की अपेक्षा मर जाना कहीं आसान होगा। जब वह संसार में न रहेगा, तो उसे इसकी क्या परवा होगी,

कोई उसे क्या कह रहा है। हाय ! केवल तीन सौ रुपये के लिए उसका सर्वनाश हुआ जा रहा है; लेकिन ईश्वर की इच्छा है तो वह कर क्या सकता है। प्रियजनों की नज़रों से गिरकर जिये तो क्या जिये !

जालपा उसे कितना नीच, कितना कपटी, कितना धूर्त, कितना गपोड़िया समझ रही होगी। क्या वह अपना मुँह उसे दिखा सकता है ?

क्या संसार में कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ वह नये जीवन का सूत्रपात कर सके, जहाँ वह संसार से अलग-थलग सबसे मुँह मोड़कर अपना जीवन काट सके, जहाँ वह इस तरह छिप जाय कि पुलिस उसका पता न पा सके ? गंगा की गोद के सिवा ऐसी जगह और कहाँ थी ? अगर जीवित रहा तो महीने-दो-महीने में अवश्य पकड़ लिया जायगा। उस समय क्या दशा होगी—वह हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहने अदालत में खड़ा होगा ! सिपाहियों का एक दल उसके ऊपर सवार होगा। सारे शहर के लोग उसका तमाशा देखने जायेंगे। जालपा भी जायगी। रतन भी जायगी। उसके पिता, सम्बन्धी, मित्र, अपने-पराये सभी भिन्न-भिन्न भावों से उसकी दुर्दशा का तमाशा देखेंगे। नहीं, वह अपनी मिट्टी यों न खराब करेगा, न करेगा। इससे कहीं अच्छा है, डूब मरे।

मगर फिर खयाल आया कि जालपा किसकी होकर रहेगी ? हाय, मैं अपने साथ उसे भी ले डूबा ! बाबूजी और अम्माँजी तो रो-धोकर सब्र कर लेंगे; पर उसकी रक्षा कौन करेगा ? क्या वह छिपकर नहीं रह सकता ? क्या शहर से दूर किसी छोटे-से गाँव में वह अज्ञातवास नहीं कर सकता ? संभव है, कभी जालपा को उस पर याद आये; उसके अपराधों को क्षमा कर दे। सम्भव है, उसके पास धन भी हो जाय; पर यह असम्भव है कि वह उसके सामने आँखें सीधी कर सके। न जाने इस समय उसकी क्या दशा होगी ? शायद मेरे पत्र का आशय समझ गई हो। शायद परिस्थिति का उसे कुछ ज्ञान हो गया हो। शायद उसने अम्मा को मेरा पत्र दिखाया हो और घबराई हुई मुझे खोज रही हो। शायद पिता जी को बुलाने के लिए लड़कों को भेजा गया हो। चारों तरफ मेरी तलाश हो रही होगी। कहीं कोई इधर भी न आता हो। कदाचित् मौत को देखकर भी वह इस समय इतना भयभीत न होता, जितना किसी परिचित को देखकर। आगे-पीछे चौकन्नी आँखों से ताकता हुआ, वह उस

जलती हुई धूप में चला जा रहा था—कुछ खबर न थी, किधर। सहसा रेल की सीटी सुनकर वह चौंक पड़ा। अरे! मैं इतनी दूर निकल आया! रेलगाड़ी सामने खड़ी थी। उसे उस पर बैठ जाने की प्रबल इच्छा हुई, मानों उसमें बैठते ही वह सारी बाधाओं से मुक्त हो जायगा। मगर जेब में रुपये न थे। उँगली में अँगूठी पड़ी हुई थी। उसने कुलियोंके जमादार को बुलाकर कहा—कहीं यह अँगूठी बिकवा सकते हो? एक रुपया तुम्हें दूँगा। मुझे गाड़ी में जाना है। रुपये लेकर घर से चला था, पर मालूम होता है, कहीं गिर गये। फिर लौटकर जाने में गाड़ी न मिलेगी और बड़ा भारी नुकसान हो ज.येगा।

जमादार ने सिर से पाँव तक देखा, अँगूठी ली, और स्टेशन के अन्दर चला गया। रमा टिकट घर के सामने टहलने लगा। आँखें उसी ओर लगी हुई थीं। दस मिनट गुज़र गये और जमादार का कहीं पता नहीं। अँगूठी लेकर कहीं गायब तो नहीं हो जायगा? स्टेशन के अन्दर जाकर उसे खोजने लगा। एक कुली से पूछा। उसने पूछा—जमादार का नाम क्या है? रमा ने ज़बान दांतों से काट ली। नाम तो पूछा ही नहीं। बतलाये क्या? इतने में गाड़ी ने सीटी दी, रमा अधीर हो उठा। समझ गया, जमादार ने चरका दिया। बिना टिकट लिये ही गाड़ी में जा बैठा। मन में निश्चय कर लिया, साफ कह दूँगा, मेरे पास टिकट नहीं है। अगर उतरना भी पड़ा, तो यहाँ से दस-पाँच कोस तो चला ही जाऊँगा।

गाड़ी चल दी तो उस वक्त रमा को अपनी दशा पर रोना आ गया। हाय, न जाने उसे कभी लौटना नसीब भी हो या नहीं। फिर ये सुख के दिन कहाँ मिलेंगे? यह दिन तो गये, हमेशा के लिये गये। इसी तरह सारी दुनिया से मुँह छिपाये, वह एक दिन मर जायगा। कोई उसकी लाश पर आँसू बहाने वाला भी न होगा। घरवाले भी रो-धोकर चुप हो रहेंगे। केवल थोड़े-से संकोच के कारण उसकी यह दशा हुई। उसने शुरू ही से जालपा से अपनी सच्ची हालत कह दी होती, तो आज उसे मुंह पर कालिख लगाकर क्यों भागना पड़ता? मगर कहता कैसे, वह अपने को अभागिनी न समझने लगती? कुछ न सही; कुछ दिन तो उसने जालपा को सुखी रखा। उसकी लालसाओं की हत्या तो न होने दी। रमा के संतोष के लिए अब इतना ही काफ़ी था।

अभी गाड़ी को चले दस मिनट भी न बीते होंगे। गाड़ी का दरवाजा खुला, और टिकट बाबू अन्दर आये। रमा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। एक क्षण में वह उसके पास आ जायगा। इतने आदमियों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। उसका कलेजा धक-धक करने लगा। ज्यों-ज्यों टिकट बाबू उसके समीप आता था, उसकी नाड़ी की गति तीव्र होती जाती थी। आखिर बला सिर पर आ ही गयी। टिकट बाबू ने पूछा—आपका टिकट?

रमा ने जरा सावधान होकर कहा—मेरा टिकट तो कुलियों के जमादार के पास ही रह गया। उसे टिकट लाने के लिए रुपये दिये थे न जाने किधर निकल गया।

टिकट बाबू को यक़ीन न आया, बोला—मैं यह कुछ नहीं जानता। आपको अगले स्टेशन पर उतरना होगा। आप कहाँ जा रहे हैं?

रमा०—सफर तो बड़ी दूर का है, कलकत्ते तक जाना है।

टिकट बाबू—आगे के स्टेशन पर टिकट ले लीजियेगा।

रमा०—यही तो मुश्किल है। मेरे पास पच्चीस का नोट था। खिड़की पर बड़ी भीड़ थी। मैंने नोट उस जमादार को टिकट लाने के लिए दिया; पर वह ऐसा गायब हुआ कि लौटा ही नहीं। शायद आप उसे पहचानते हैं। लम्बा-लम्बा चेचकरू आदमी है।

टिकट बाबू—इस विषय में आप लिखा-पढ़ी कर सकते हैं; मगर बिला टिकट के जा नहीं सकते।

रमा ने विनती के भाव से कहा— भाई साहब, आपसे क्या छिपाऊँ? मेरे पास और रुपये नहीं हैं। आप जैसा मुनासिब समझें, करें।

टिकट बाबू—मुझे अफसोस है बाबू सहब, कायदे से मजबूर हूँ।

कमरे के सारे मुसाफिर आपस में कानाफूसी करने लगे। तीसरा दरजा था, अधिकांश मजदूर बैठे हुए थे, जो मजूरी की टोह में पूरब जा रहे थे। वे एक बाबू जाति के प्राणी को इस भाँति अपमानित होते देखकर आनन्द पा रहे थे। शायद टिकट बाबू ने रमा को धक्के देकर उतार दिया होता तो और भी खुश होते। रमा को जीवन में कभी इतनी झेंप न हुई थी। चुपचाप सिर झुकाये खड़ा था। अभी तो जीवन की इस नयी यात्रा का आरम्भ हुआ है। न जाने आगे क्या-क्या विपत्तियाँ झेलनी पड़ेंगी। किस-

किस के हाथों धोखा खाना पड़ेगा। उसके जी में आया—गाड़ी से कूद पड़ूँ, इस छीछालेदर से तो मर जाना ही अच्छा। उसकी आँखें भर आयीं, उसने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया और रोने लगा।

सहसा एक बूढ़े आदमी ने, जो उसके पास ही बैठा हुआ था, पूछा—कलकत्ते में कहाँ जाओगे बाबूजी ?

रमा ने समझा यह गँवार मुझे बना रहा है, झुंझलाकर बोला—तुमसे मतलब, मैं कहीं जाऊँगा।

बूढ़े ने इस उपेक्षा पर कुछ ध्यान भी न दिया, बोला—मैं भी वहीं चलूँगा। हमारा तुम्हारा साथ हो जाएगा। फिर धीरे से बोला—किराये के रुपये मुझसे ले लो, वहाँ दे देना।

अब रमा ने उसकी ओर ध्यान से देखा। कोई ६०-७० साल का बूढ़ा घुला हुआ आदमी था। मांस तो क्या हड्डियां तक गल गयी थीं। मूँछ और सिर के बाल मुड़े हुए थे। एक छोटी-सी बकुची के सिवा उसके पास और कोई असबाब भी न था।

रमा को अपनी ओर ताकते देखकर वह फिर बोला—आप हबड़े ही उतरेंगे या और कहीं जायँगे ?

रमा ने एहसान के भार से दबकर कहा—बाबा, आगे मैं उतर पड़ूँगा। रुपये का कोई बन्दोबस्त करके फिर आऊँगा।

बूढ़ा—तुम्हें कितने रुपये चाहिए, मैं भी तो वहीं चल रहा हूँ। जब चाहे दे देना। क्या मेरे दस-पाँच रुपये लेकर भाग जाओगे ? कहाँ घर है ?

रमा०—यहीं प्रयाग ही म रहता हूँ।

बूढ़े ने भक्ति के भाव से कहा—धन्य है प्रयाग ! धन्य है ! मैं भी त्रिवेणी का स्नान करके आ रहा हूँ, सचमुच देवताओं की पुरी है। तो के रुपये निकालूं ?

रमा ने सकुचाते हुए कहा—मैं चलते-ही-चलते रुपया न दे सकूँगा, यह समझ लो।

बूढ़े ने सरल भाव से कहा—अरे बाबूजी, मेरे दस-पाँच रुपये लेकर तुम भाग थोड़े ही जाओगे। मैंने तो देखा, प्रयाग के पण्डे यात्रियों को बिना लिखाये-पढ़ाये रुपये दे देते हैं। दस रुपये से तुम्हारा काम चल जायगा ?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—हाँ, बहुत है।

टिकट बाबू को किराया देकर रमा सोचने लगा—यह बूढ़ा कितना सरल, कितना परोपकारी, कितना निष्कपट जीव है। जो लोग सभ्य कहलाते हैं, उनमें कितने आदमी ऐसे निकलेंगे, जो बिना जान पहचान किसी यात्री को उबार लें। गाड़ी के और मुसाफिर भी बूढ़े को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

रमा को बूढ़े की बातों से मालूम हुआ कि वह जाति का खटिक है; कलकत्ते में उसकी शाक-भाजी की दूकान है। रहनेवाला तो बिहार का है; पर चालीस साल से कलकत्ते ही में रोज़गार कर रहा है। देवीदीन नाम है। बहुत दिनों से तीर्थयात्रा की इच्छा थी, बद्रीनाथ की यात्रा करके लौटा जा रहा है।

रमा ने आश्चर्य से पूछा—तुम बद्रीनाथ की यात्रा कर आये? वहाँ तो पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चढ़ाइयाँ हैं।

देवी०—भगवान् की दया होती है तो सब कुछ हो जाता है, बाबूजी! उनकी दया चाहिए।

रमा०—तुम्हारे बाल-बच्चे कलकत्ते ही में होंगे।

देवीदीन ने रूखी हँसी हँसकर कहा—बाल-बच्चे तो सब भगवान् के घर गये। चार बेटे थे। दो का ब्याह हो गया था। सब चल दिये। मैं बैठा हुआ हूँ। मुझी से तो सब पैदा हुए थे! अपने बोये हुए बीज को किसान ही तो काटता है।

यह कहकर वह फिर हँसा। जरा देर बाद बोला—बुढ़िया अभी जीती है। देखें, हम दोनों में पहले कौन चलता है। वह कहती है, पहले मैं जाऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं जाऊँगा। देखो, किसकी टेक रहती है। बन पड़ा तो तुम्हें दिखलाऊँगा! अब भी गहने पहनती है। सोने की बालियाँ और सोने की हँसली पहने दूकान पर बैठी रहती है। जब कहा कि चल तीर्थ कर आवें, तो बोली—तुम्हारे तीर्थ के लिए दूकान मिट्टी में मिला दूँ? यह है ज़िन्दगानी का हाल। आज मरे कि कल मरे; मगर दूकान न छोड़ेगी। न कोई आगे न कोई पीछे, न रोनेवाला न कोई हँसने वाला; मगर माया बनी हुई है। अब भी एक-न-एक गहना बनवाती ही रहती है। जाने कब उसका पेट भरेगा। सब घरों का यही हाल है। जहाँ देखो—हाय गहने! गहने के पीछे

जान दे दें; घर के आदमियों को भूखों मारें; घर की चीजें बेचें। और कहाँ तक कहूँ, अपनी आबरू तक बेच दें। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबको यही रोग लगा हुआ है। कलकत्ते में कहाँ काम करते हो भैया?

रमा०—अभी तो जा रहा । देखूँ कोई नौकरी-चाकरी मिलती है या नहीं?

देवी०—तो फिर मेरे ही घर ठहरना। दो कोठरियाँ हैं, सामने दलान है, एक कोठरी ऊपर है। आज बेचूँ तो दस हज़ार मिलें। एक कोठरी तुम्हें दे दूँगा। जब कहीं काम मिल जाय तो अपना घर ले लेना। पचास साल हुए घर से भाग कर हवड़े गया था, तब से सुख भी देखे और दुःख भी देखे। अब मना रहा हूँ, भगवान ले चलो। हाँ बुढ़िया को अमर कर दो, नहीं उसकी दूकान कौन खोलेगा, घर कौन लेगा और गहने कौन लेगा!

यह कहकर देवीदीन फिर हँसा। वह इतना हँसोड़, प्रसन्न-चित्त था कि रमा को आश्चर्य हो रहा था। बेबात की बात पर हँसता था। जिस बात पर और लोग रोते हैं उस पर उसे हँसी आती थी। किसी जवान को भी रमा ने यों हंसते न देखा था। इतनी ही देर में उसने अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनायी। कितने ही लतीफ़े याद थे। मालूम होता था, रमा से वर्षों की मुलाकात है। रमा को भी अपने विषय में एक मनगढ़न्त कथा कहनी पड़ी।

देवीदीन—तो तुम भी घर से भाग आये हो? समझ गया। घर में झगड़ा हुआ होगा। बहू कहती होगी—मेरे पास गहने नहीं, मेरा नसीब जल गया। सास-बहू में पटती न होगी। उनका कलह सुन-सुन जी और खट्टा हो गया होगा।

रमा०—हाँ बाबा, बात यही है; तुम कैसे जान गये?

देवीदीन हँसकर बोला—यह बड़ा भारी मन्त्र है भैया। इसे तेली की खोपड़ी पर जगाया जाता है। अभी लड़के-बाले तो नहीं हैं न?

रमा०—नहीं अभी तो नहीं हैं।

देवी०—छोटे भाई भी होंगे?

रमा चकित होकर बोला—हाँ दादा, ठीक कहते हो। तुमने कैसे जाना?

देवीदीन फिर ठट्टा मारकर बोला—यह सब मन्त्रों का खेल है। ससुराल धनी होगी, क्यों?

रमा०—हाँ, दादा, हैं तो।

देवी०—मगर हिम्मत न होगी।

रमा०—बहुत ठीक कहते हो दादा। बड़े कम हिम्मती हैं। जब से विवाह हुआ, अपनी लड़की तक को तो बुलाया नहीं।

देवी०—समझ गया भैया, यही दुनिया का दस्तूर है। बेटे के लिए कहो चोरी करें, भीख माँगें, बेटी के लिए घर में कुछ है ही नहीं।

तीन दिन से रमा को नींद न आयी थी। दिन-भर रुपये के लिए मारा-मारा फिरता, रात-भर चिन्ता में पड़ा रहता। इस वक्त बातें करते-करते उसे नींद आ गयी। गरदन झुकाकर झपकी लेने लगा। देवीदीन ने तुरन्त अपनी गठरी खोली, उसमें से एक दरी निकाली और तख्त पर बिछाकर बोला—तुम यहाँ आकर लेट रहो भैया, मैं तुम्हारी जगह पर बैठ जाता हूँ।

रमा लेट रहा। देवीदीन बार-बार उसे स्नेह-भरी आँखों से देखता था, मानो उसका पुत्र कहीं परदेश से लौटा हो।

२०

जब रमा कोठे से धम्-धम् नीचे उतर रहा था, उस वक्त जालपा को इसकी जरा भी शंका न हुई कि वह घर से भागा जा रहा है। पत्र तो उसने पढ़ ही लिया था। जी ऐसा झुंझला रहा था कि चलकर रमा को खूब खरी-खरी सुनाऊँ। मुझसे यह छल-कपट! पर एक ही क्षण में उसके भाव बदल गये। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ, सरकारी रुपये खर्च कर डाले हों। यही बात है। रतन के रुपये सराफ़ को दिये होंगे। उस दिन रतन को देने के लिए शायद वे सरकारी रुपये उठा लाये थे। यह सोचकर उसे फिर क्रोध आया—यह मुझसे इतना परदा क्यों करते हैं। क्यों मुझसे बढ़-बढ़कर बातें करते थे? क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि संसार में अमीर-गरीब दोनों ही होते हैं? क्या सभी स्त्रियाँ गहनों से लदी रहती हैं? गहने न पहनना क्या कोई पाप है? जब और जरूरी कामों से रुपये बचते हैं, तो गहने भी बन जाते हैं। पेट और तन काटकर, चोरी या बेईमानी करके तो गहने नहीं पहने जाते! क्या उन्होंने मुझे ऐसी गयी-गुजरी समझ लिया?

उसने सोचा, रमा अपने कमरे में होगा, चलकर पूछूँ, कौन-कौन से गहने

चाहते हैं। परिस्थिति की भयंकरता का अनुमान करके क्रोध की जगह उसके मन में भय का संचार हुआ। वह बड़ी तेजी से नीचे उतरी। उसे विश्वास था, वह नीचे बैठे हुए इन्तजार कर रहे होंगे। कमरे में आयी, तो उनका पता न था। साइकिल रखी हुई थी, तुरंत दरवाजे से झांका। सड़क पर भी पता न था। कहाँ चले गये ? लड़के दोनों स्कूल गये थे, किसको भेजे कि जाकर उन्हें बुला लाये। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। फौरन ऊपर गयी, गले का हार और हाथ का कंगन उतारकर रूमाल में बाँधा, फिर नीचे उतरी; सड़क पर आकर एक ताँगा किया, और कोचवान से बोली—चुंगी कचहरी चलो। वह पछता रही थी कि मैं इतनी देर बैठी क्यों रही। क्यों न गहने उतारकर तुरन्त दे दिये ?

रास्ते में वह दोनों तरफ बड़े ध्यान से देखती जाती थी। क्या इतनी जल्द इतनी दूर निकल आये ? शायद देर हो जाने के कारण वह भी आज ताँगे ही पर गये हैं, नहीं तो अब तक जरूर मिल गये होते। ताँगेवाले से बोली—क्यों जी, अभी तुमने किसी बाबूजी को ताँगे पर देखा ?

ताँगेवाले ने कहा—हाँ माईजी, एक बाबू अभी तो इधर ही से गये हैं।

जालपा को कुछ ढाढ़स हुआ, रमा के पहुँचते-पहुँचते वह भी पहुँच जायगी। कोचवान से बार-बार घोड़ा तेज़ करने को कहती। जब वह दफ्तर पहुँची तो ग्यारह बज गये थे, कचहरी में सैकड़ों आदमी इधर-उधर दौड़ रहे थे। किससे पूछे ? न जाने वह कहाँ बैठते हैं।

सहसा एक चपरासी दिखलायी दिया। जालपा ने उसे बुलाकर कहा—सुनो जी, जरा बाबू रमानाथ को बुला लाओ।

चपरासी बोला—उन्हीं को बुलाने तो जा रहा हूँ। बड़े बाबू ने भेजा है। आप क्या उनके घर ही से आयी हैं ?

जालपा—हाँ, मैं तो घर ही से आ रही हूँ। अभी दस मिनट हुए वह घर से चले हैं।

चपरासी—यहाँ तो नहीं आये।

जालपा बड़े असमंजस में पड़ी। वह यहाँ भी नहीं आये, रास्ते में भी नहीं मिले, तो फिर गये कहाँ ? उसका दिल बाँसों उछलने लगा। आँखें भर-भर आने लगीं। वहाँ बड़े बाबू के सिवा वह और किसी को न जानती

थी। उनसे बोलने का अवसर कभी न पड़ा था, पर इस समय उसका संकोच ग़ायब हो गया। भय के सामने मन के और सभी भाव दब जाते हैं। चपरासी से बोली—ज़रा बड़े बाबू से कह दो....नहीं चलो मैं ही चलती हूँ। बाबू से कुछ बात करनी है।

जालपा का ठाट-बाट और रंग-ढंग देखकर चपरासी रोब में आ गया; उलटे पाँव बाबू के कमरे की ओर चला। जालपा उसके पीछे-पीछे हो ली। बड़े बाबू खबर पाते ही तुरन्त बाहर निकल आये।

जालपा ने क़दम आगे बढ़ाकर कहा—क्षमा कीजिये बाबू साहब, आपको कष्ट हुआ। वह पन्द्रह-बीस मिनट हुए घर से चले, क्या अभी तक यहाँ नहीं आये?

रमेश०—अच्छा, आप मिसेज रमानाथ हैं! अभी तो यहाँ नहीं आये। मगर दफ्तर के वक्त सैर-सपाटे करने की तो उनकी आदत न थी।

जालपा ने चपरासी की ओर ताकते हुए कहा—मैं आपसे कुछ अर्ज़ करना चाहती हूँ।

रमेश०—तो चलो अन्दर बैठो, यहाँ कब तक खड़ी रहोगी? मुझे आश्चर्य है कि वह गये कहाँ। कहीं बैठे शतरंज खेल रहे होंगे।

जालपा—नहीं बाबुजी, मुझे ऐसा भय हो रहा है कि वह कहीं और न चले गये हों। अभी दस मिनट हुए, उन्होंने मेरे नाम एक पुरज़ा लिखा था। (जेब में टटोलकर) जी हाँ, देखिए, यह पुरजा मौजूद है। आप उन पर कृपा रखते हैं, आपसे तो कोई परदा नहीं! उनके ज़िम्मे कुछ सरकारी रुपये तो नहीं निकलते?

रमेश ने चकित होकर कहा—क्यों, उन्होंने तुमसे कुछ नहीं कहा?

जालपा—कुछ नहीं। इस विषय में कभी एक शब्द भी नहीं कहा।

रमेश०—कुछ समझ में नहीं आता। आज उन्हें तीन सौ रुपये जमा करना है। परसों की आमदनी उन्होंने जमा नहीं की थी। नोट थे, जेब में डालकर चल दिये। बाज़ार में किसी ने नोट निकाल लिये। (मुसकराकर) किसी और देवी की पूजा तो नहीं करते?

जालपा का मुख लज्जा से नत हो गया। बोली—अगर यह ऐब होता, तो आप भी उस इलज़ाम से न बचते। जेब से किसी ने निकाल लिये होंगे।

मारे शर्म के मुझसे न कहा होगा। मुझसे ज़रा भी कहा होता तो तुरन्त रुपये निकालकर दे देती, इसमें बात ही क्या थी।

रमेश बाबू ने अविश्वास के भाव से पूछा—क्या घर में रुपये हैं ?

जालपा ने निःशंक होकर कहा—तीन सौ चाहिये न, मैं अभी लिये आती हूँ।

रमेश०—अगर वह घर पर आ गये हों; तो भेज देना।

जालपा आकर ताँगे पर बैठी और कोचवान से चौक चलने को कहा। उसने अपना हार बेच डालने का निश्चय कर लिया। यों उसकी कई सहेलियाँ थीं, जिनसे उसे रुपये मिल सकते थे। स्त्रियों में बड़ा स्नेह होता है। पुरुषों की भाँति उनकी मित्रता केवल पान-पत्ते तक ही समाप्त नहीं हो जाती; मगर अवसर नहीं था। सराफ़े पहुँचकर मन में वह सोचने लगी, किस दूकान पर जाऊँ। भय हो रहा था कि कहीं ठगी न जाऊँ। इस सिरे से उस सिरे तक कई चक्कर लगा आयी, किसी दूकान पर जाने की हिम्मत न पड़ी। उधर वक्त भी निकलता जाता था। आखिर एक दूकान पर एक बूढ़े सराफ़ को देखकर उसका संकोच कुछ कम हुआ। सराफ़ बड़ा घाघ था, जालपा की झिझक और हिचक देखकर समझ गया, अच्छा शिकर फँसा।

जालपा ने हार दिखाकर कहा—आप इसे ले सकते हैं ?

सराफ़ ने हार को इधर-उधर देखकर कहा—मुझे चार पैसे की गुंजाइस होगी, तो क्यों न ले लूँगा। माल चोखा नहीं है।

जालपा—तुम्हें लेना हैं, इसलिए माल चोखा नहीं है; बेचना होता तो चोखा होता। कितने में लोगे ?

सराफ़—आप ही न कह दीजिए।

सराफ़ ने साढ़े तीन सौ दाम लगाये, और बढ़ते-बढ़ते चार सौ तक पहुँचा। जालपा को देर हो रही थी, रुपये लिये और चल खड़ी हुई। जिस हार को उसने इतने चाव से खरीदा था, जिसकी लालसा उसे बाल्यकाल ही में उत्पन्न हो गयी थी, उसे आज आधे दामों में बेचकर उसे ज़रा भी दुःख नहीं हुआ; बल्कि गर्वमय हर्ष का अनुभव हो रहा था। जिस वक्त रमा को मालूम होगा कि उसने रुपये दे दिये हैं, उन्हें कितना आनन्द होगा। कहीं दफ्तर पहुँच गये हों तो बड़ा मजा हो। सोचती हुई

वह दफ्तर पहुँची। रमेश बाबू उसे देखते ही बोले—क्या हुआ, घर पर मिले ?

जालपा—क्या अभी तक यहाँ नहीं आये ? घर तो नहीं गये। यह कहते हुए उसने नोटों का पुलिन्दा रमेश बाबू की तरफ बढ़ा दिया।

रमेश बाबू नोटों को गिनकर बोले—ठीक है, मगर वह अब तक कहाँ हैं। अगर न आना था तो एक खत लिख देते। मैं तो बड़े संकट में पड़ा हुआ था। तुम बड़े वक्त से आ गयीं। इस वक्त तुम्हारी सूझ-बूझ देखकर जी खुश हो गया। यही सच्ची देवियों का धर्म है।

जालपा फिर तांगे पर बैठकर घर चली, तो उसे मालूम हो रहा था मैं कुछ ऊंची हो गयी हूँ। शरीर से एक विचित्र स्फूर्ति दौड़ रही थी। उसे विश्वास था, वह आकर चिन्तित बैठे होंगे। वह जाकर पहले उन्हें खूब आड़े हाथों लेगी और खूब लज्जित करने के बाद यह हाल कहेगी। जब घर पहुँची तो रमानाथ का कहीं पता न था।

रामेश्वरी ने पूछा—कहाँ चली गयी थी इस धूप में ?

जालपा—एक काम से चली गयी थी। आज उन्होंने भोजन भी नहीं किया, न जाने कहाँ चले गये।

रामेश्वरी—दफ्तर गये होंगे।

जालपा—नहीं, दफ्तर नहीं गये। वहाँ से एक चपरासी पूछने आया था।

यह कहती हुई वह ऊपर चली गयी। बचे हुए रुपये सन्दूक में रखे और पंखा झलने लगी। मारे गरमी के देह फुंकी जा रही थी; लेकिन कान द्वार की ओर लगे थे। अभी तक उसे इसकी ज़रा भी शंका न थी कि रमा ने विदेश की राह ली है।

चार बजे तक तो जालपा को विशेष चिन्ता न हुई, लेकिन ज्यों-ज्यों दिन ढलने लगा, उसकी चिन्ता बढ़ने लगी। आखिर वह सबसे ऊँची छत पर चढ़ गयी, हालाँकि उसके जीर्ण होने के कारण कोई ऊपर नहीं आता था, और वहाँ चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी; लेकिन रमा किसी तरफ से आता दिखायी न दिया।

जब सन्ध्या हो गयी, और रमा घर न आया तो जालपा का जी घब-

ड़ाने लगा। कहाँ चले गये ? वह दफ्तर से बिना घर आये कहीं बाहर न जाते थे। अगर किसी मित्र के घर होते, तो क्या अब तक न लौटते ? मालूम नहीं जेब में कुछ है भी या नहीं। बेचारे दिन भर से न मालूम कहाँ भटक रहे होंगे। वह फिर पछताने लगी कि उनका पत्र पढ़ते ही उसने क्यों न हार निकालकर दे दिया ? क्यों दुबिधे में पड़ गयी ? बेचारे शर्म के मारे घर न आते होंगे। कहाँ जाय ! किससे पूछे ?

चिराग जल गये, तो उससे न रहा गया। सोचा, शायद रतन से कुछ पता चले। उसके बँगले पर गयी तो मालूम हुआ, आज तो वह इधर आये ही नहीं।

जालपा ने उन सभी पार्कों और मैदानों को छान डाला, जहाँ रमा के साथ वह बहुधा घूमने आया करती थी; और नौ बजते-बजते निराश लौट आयी। अब तक उसने अपने आँसुओं को रोका था, लेकिन घर में कदम रखते ही जब उसको मालूम हो गया कि अब तक वह नहीं आये, तो वह हताश होकर बैठ गयी। उसकी यह शंका अब दृढ़ हो गयी कि वह जरूर कहीं चले गये। फिर भी कुछ आशा थी कि शायद मेरे पीछे आये हों और चले गये हों। जाकर रामेश्वरी से पूछा—वह घर आये थे, अम्मा जी ?

रामेश्वरी—यार-दोस्तों में बैठे कहीं गप-शप कर रहे होंगे ! घर तो सराय है। दस बजे घर से निकले थे, अभी तक पता नहीं।

जालपा—दफ्तर से घर आकर तब कहीं जाते थे। आज तो आये ही नहीं। कहिए तो गोपी बाबू को भेज दूँ, जाकर देखें, कहाँ रह गये।

रामेश्वरी—लड़के इस वक्त कहाँ देखने जायेंगे। उनका क्या ठीक है। थोड़ी देर और देख लो, फिर खाना उठाकर रख देना। कोई कहाँ तक इन्तजार करे !

जालपा ने इसका कुछ जवाब न दिया। दफ्तर की कोई बात उसने न कही। रामेश्वरी सुनकर घबड़ा जाती और उसी वक्त रोना पीटना मच जाता। वह ऊपर जाकर लेट गयी, और अपने भाग्य पर रोने लगी। रह-रहकर चित्त ऐसा विकल होने लगा, मानो कलेजे में शूल उठ रहा हो। बार-

बार सोचती, अगर रात-भर न आये, तो कल क्या करना होगा ? जब तक कुछ पता न चले कि वह किधर गये, तब तक कोई जाय तो कहाँ जाय। आज उसके मन ने पहली बार स्वीकार किया कि यह सब उसी की करनी का फल है। यह सच है कि उसने कभी आभूषणों के लिए आग्रह नहीं किया; लेकिन उसने कभी स्पष्ट रूप से मना भी तो नहीं किया। अगर गहने चोरी हो जाने के बाद वह इतनी अधीर न हो गई होती, तो आज यह दिन क्यों आता! मन की इस दुर्बल अवस्था में जालपा अपने भार से अधिक भाग अपने ऊपर लेने लगी। वह जानती थी, रमा रिश्वत लेता है, नोच-खसोटकर रुपये लाता है। फिर भी कभी उसने मना नहीं किया। उसने खुद क्यों अपनी कमली के बाहर पाँव फैलाया ? क्यों उसे रोज़ सैर-सपाटे की सूझती थी ? उपहारों को ले लेकर वह क्यों फूली न समाती थी ? इस जिम्मेदारी को भी इस वक्त जालपा अपने ही ऊपर ले रही थी। रमानाथ प्रेम के वश होकर उसे प्रसन्न करने के लिए ही तो सब कुछ करते थे! युवकों का यही स्वभाव है। फिर उसने उनकी रक्षा के लिए क्या किया। क्यों उसे यह समझ न आयी कि आमदनी से ज़्यादा खर्च करने का दण्ड एक दिन भोगना पड़ेगा ? अब उसे ऐसी कितनी ही बातें याद आ रही थीं जिनसे उसे रमा के मन की विकलता का परिचय पा जाना चाहिये था, पर उसने कभी उन बातों की ओर ध्यान न दिया।

जालपा इन्हीं चिन्ताओं में डूबी हुई न जाने कब तक बैठी रही। जब चौकीदारों की सीटियों की आवाज उसके कानों में आयी, तो वह नीचे जाकर रामेश्वरी से बोली—वह तो अब तक नहीं आये। आप चलकर भोजन कर लीजिए।

रामेश्वरी बैठे-बैठे झपकियाँ ले रही थी। चौंककर बोली—कहाँ चले गये थे ?

रामेश्वरी—अब तक नहीं आये! आधी रात हो गयी होगी। जाते वक्त तुमसे कुछ कहा भी नहीं ?

जालपा—कुछ भी नहीं।

रामेश्वरी—तुमने तो कुछ नहीं कहा ?

जालपा—मैं भला क्या कहती!

रामेश्वरी—तो मैं लालाजी को जगाऊँ ?

जालपा—इस वक्त जगाकर क्या कीजिएगा ? आप चलकर कुछ खा लीजिए न।

रामेश्वरी—मुझसे अब कुछ न खाया जायगा। ऐसा मनमौजी लड़का है कि कुछ कहा न सूना, न जाने कहाँ जाकर बैठ रहा। कम-से-कम कहला तो देता कि मैं इस वक्त न आऊँगा।

रामेश्वरी फिर लेट रही, मगर जालपा उसी तरह बैठी रही। यहाँ तक कि सारी रात गुज़र गयी—पहाड़-सी रात जिसका एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान कट रहा था।

२३

एक सप्ताह हो गया, रमा का कहीं पता नहीं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बेचारे रमेश बाबू दिन में कई-कई बार आकर पूछ जाते हैं। तरह-तरह के अनुमान हो रहे हैं। केवल इतना ही पता चलता है कि रमानाथ ग्यारह बजे रेलवे स्टेशन की ओर गये थे। मुन्शी दयानाथ का ख्याल है, यद्यपि वे इसे स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं करते, कि रमा ने आत्म हत्या कर ली। ऐसी दशा में यही होता है। इसकी कई मिसालें उन्होंने खुद आँखों से देखी हैं। सास और ससुर दोनों ही जालपा पर सारा इलज़ाम थोप रहे हैं। साफ़-साफ़ कह रहे हैं कि इसी के कारण उसके प्राण गये। इसने उसका नाकों दम कर दिया। पूछो, थोड़ी-सी तो आपकी आमदनी फिर तुम्हें रोज़ सैर-सपाटे और दावत-तवाज़े की क्यों सूझती थी ? जालपा पर किसी को दया नहीं आती। कोई उसके आँसू नहीं पोंछता। केवल रमेश बाबू उसकी तत्परता और सद्बुद्धि की प्रशंसा करते हैं, लेकिन मुन्शी दयानाथ की आँखों में उस कृत्य का कुछ मूल्य नहीं। आग लगाकर पानी लेकर दौड़ने से कोई निर्दोष नहीं हो जाता।

एक दिन दयानाथ वाचनालय से लौटे तो मुँह लटका हुआ था। एक तो उनकी सूरत यों ही मुहर्रमी थी, उस पर मुँह लटका लेते थे तो कोई बच्चा भी कह सकता था कि इनका मिज़ाज बिगड़ा हुआ है।

रामेश्वरी ने पूछा—क्या है, किसी से कहीं बहस हो गयी क्या ?

दयानाथ—नहीं जी, इन तकाज़ों के मारे हैरान हो गया। जिधर

जाओ उधर लोग नोचने दौड़ते हैं। न जाने कितना कर्ज ले रखा है। आज तो मैंने साफ़ कह दिया, मैं कुछ नहीं जानता। मैं किसी का देनदार नहीं हूँ। जाकर मेमसाहब से माँगो।

इसी वक्त जालपा आ पड़ी। ये शब्द उसके कानों में पड़ गये। इन सात दिनों में उसकी सूरत ऐसी बदल गयी थी कि पहचानी न जाती थी। रोते-रोते आँखें सूज आयी थीं। ससुर के ये कठोर शब्द सुनकर तिलमिला उठी, बोली—जी हाँ ! आप उन्हें सीधे मेरे पास भेज दीजिए, मैं उन्हें या तो समझा दूँगी, या उनके दाम चुका दूँगी।

दयानाथ ने तीखे होकर कहा—क्या दे दोगी तुम, हज़ारों का हिसाब है। सात सौ एक ही सराफ़ के हैं। अभी कै पैसे दिये हैं तुमने ?

जालपा—उसके गहने मौजूद हैं, केवल दो-चार बार पहने गये हैं। वह आये तो मेरे पास भेज दीजिए। मैं उसकी चीज़ें वापस कर दूँगी। बहुत होगा, दस-पाँच रुपये तावान के ले लेगा !

यह कहती हुई ऊपर जा रही थी कि रतन आ गयी, और उसे गले से लगाती हुई बोली—क्या अब तक कुछ पता नहीं चला ?

जालपा को इन शब्दों में स्नेह और सहानुभूति का एक सागर उमड़ता हुआ जान पड़ा। यह ग़ैर होकर इतनी चिन्तित है, और यहाँ अपने ही सास और ससुर हाथ धोकर पीछे पड़े हुए हैं। इन अपनों से ग़ैर ही अच्छे। आँखों में आँसू भरकर बोली—अभी तो कुछ पता नहीं चला, बहन।

रतन—यह बात क्या हुई, कुछ तुमसे तो कहा-सुनी नहीं हुई ?

जालपा—जरा भी नहीं, क़सम खाती हूँ। उन्होंने नोटों के खो जाने का मुझसे जिक्र ही नहीं किया। अगर इशारा भी कर देते तो मैं रुपये दे देती। जब वह दोपहर तक नहीं आये और मैं उन्हें खोजती हुई दफ्तर गयी तब मुझे मालूम हुआ, कुछ नोट खो गये हैं। उसी वक्त जाकर मैंने रुपये जमा कर दिये।

रतन—मैं तो समझती हूँ; किसी से आँखें लड़ गयीं। दस-पाँच दिन में आप पता लग जायगा। यह बात सच न निकले, तो जो कहो; जुर्माना दूँ !

जालपा ने हकबकाकर पूछा—क्या तुमने कुछ सुना है ?

रतन—नहीं, सुना तो नहीं; पर मेरा अनुमान है।

जालपा—नहीं रतन, मैं इस पर जरा भी विश्वास नहीं करती। यह बुराई उनमें नहीं है, और चाहे जितनी बुराइयाँ हों। मुझे उन पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

रतन ने हँसकर कहा—इस कला में ये लोग निपुण होते हैं। तुम बेचारी क्या जानो।

जालपा दृढ़ता से बोली—अगर वह इस कला में निपुण होते हैं, तो हम भी हृदय को परखने में कम निपुण नहीं होतीं। मैं इसे नहीं मान सकती। अगर वह मेरे स्वामी थे, तो मैं उनकी स्वामिनी थी।

रतन—अच्छा चलो, कहीं घूमने चलती हो ? चलो, तुम्हें कहीं घुमा लावें।

जालपा—नहीं, इस वक्त तो मुझे फुरसत नहीं है। फिर घरवाले यों ही प्राण लेने पर तुले हुए हैं, तब तो जीता ही न छोड़ेंगे। किधर जाने का विचार है ?

रतन—कहीं नहीं, जरा बाज़ार तक जाना था।

जालपा—क्या लेना है ?

रतन—जौहरियों की दूकान पर दो-एक चीज देखूँगी। बस, मैं तुम्हारा जेसा कंगन चाहती हूँ। बाबूजी ने भीकई महीने के बाद रुपये लौटा दिये। अब खुद तलाश करूँगी !

जालपा—मेरे कंगन में ऐसे कौन से रूप लगे हैं। बाज़ार में उससे बहुत अच्छे मिल सकते हैं।

रतन—मैं तो उसी नमूने का चाहती हूँ।

जालपा—उस नमूने का तो बना-बनाया मुश्किल से मिलेगा, और बन-वाने में महीनों का झंझट। अगर सब्र न आता हो तो मेरा ही कंगन ले लो, मैं फिर बनवा लूँगी।

रतन ने उछलकर कहा—वाह, तुम अपना कंगन दे दो तो क्या कहना है ! मूसलों ढोल बजाऊँ ! छः सौ का था न ?

जालपा—हाँ, था तो छः सौ का, मगर महीनों सराफ़ की दूकान की खाक छाननी पड़ी थी। जड़ाई तो खुद बैठकर करवायी थी। तुम्हारी खातिर दे दूँगी।

जालपा ने कंगन निकालकर रतन के हाथों में पहना दिये। रतन के मुख पर एक विचित्र गौरव का आभास हुआ, मानो किसी कंगाल को पारस मिल गया हो। यही आत्मिक आनन्द की चरम सीमा है। कृतज्ञता से भरे हुए स्वर में बोली—तुम जितना कहो, उतना देने को तैयार हूँ। तुम्हें दबाना नहीं चाहती। तुम्हारे लिए यही क्या कम है कि तुमने इसे मुझे दे दिया। मगर एक बात है। अभी मैं सब रुपये न दे सकूँगी, अगर दो सौ रुपये फिर दे दूँ तो कुछ हरज है?

जालपा ने साहसपूर्वक कहा—कोई हरज नहीं, जी चाहे कुछ भी मत दो।

रतन—नहीं, इस वक्त मेरे पास चार सौ रुपये हैं। ये मैं दिये जाती हूँ। मेरे पास रहेंगे तो किसी दूसरी जगह खर्च हो जायेंगे। मेरे हाथ में तो रुपये टिकते ही नहीं, करूँ क्या। जब तक खर्च न हो जायँ, मुझे एक चिन्ता-सी लगी रहती है, जैसे सिर पर कोई बोझ सवार हो।

जालपा ने कंगन की डिबिया उसे देने के लिए निकाली तो उसका दिल मसोस उठा। उसकी कलाई पर यह कंगन देखकर रमा कितना खुश होता था! आज वह होता तो क्या यह चीज़ इस तरह जालपा के हाथ से निकल जाती! फिर कौन जाने कंगन पहनना उसे नसीब भी होगा या नहीं। उसने बहुत ज़ब्त किया पर आँसू निकल ही आये।

रतन उसके आँसू देखकर बोली—इस वक्त रहने दो बहन, फिर ले लूँगी, जल्दी ही क्या है।

जालपा ने उसकी ओर बक्स बढ़ाकर कहा—क्यों क्या मेरे आँसू देखकर? तुम्हारी ख़ातिर से दे रही हूँ। नहीं यह मुझे प्राणों से भी प्रिय था। तुम्हारे पास इसे देखूँगी तो मुझे तस्कीन होती रहेगी। किसी दूसरे को मत देना, इतनी दया करना।

रतन—किसी दूसरे को क्यों देने लगी। इसे तुम्हारी निशानी समझूँगी। आज बहुत दिन के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई। केवल दुःख इतना ही है कि बाबूजी अब नहीं हैं। मेरा मन कहता है कि वह जल्दी ही आयेंगे। वह मारे शर्म के चले गये हैं और कोई बात नहीं। वकील साहब को भी यह सुनकर दुःख हुआ। लोग कहते हैं—वकीलों का हृदय कठोर

होता है, मगर इनको तो मैं देखती हूँ, ज़रा भी किसी की विपत्ति सुनी और तड़प उठे।

जालपा ने मुसकराकर कहा—बहन, एक बात पूछूँ, बुरा तो न मानोगी? वकील साहब से तुम्हारा दिल तो न मिलता होगा?

रतन का विनोद-रंजित, प्रसन्न मुख एक क्षण के लिए मलिन हो उठा। मानों किसी ने उसे चिर-स्नेह की याद दिला दी हो, जिसके नाम को वह बहुत पहले रो चुकी थी। बोली—मुझे तो कभी यह ख़्याल भी नहीं आया बहन, कि मैं युवती हूँ और वे बूढ़े हैं। मेरे हृदय में जितना प्रेम, जितना अनुराग है वह सब मैंने उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग यौवन या रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग अनुराग से उत्पन्न होता है। मेरे ही कारण तो वे इस अवस्था में इतना परिश्रम कर रहे हैं। और दूसरा है ही कौन! क्या यह छोटी बात है? कल कहीं चलोगी? कहो तो शाम को आऊँ?

जालपा—जाऊँगी तो मैं कहीं नहीं। मगर तुम आना जरूर। दो घड़ी दिल बहलेगा। कुछ अच्छा नहीं लगता। मन डाल-डाल दौड़ता फिरता है। समझ में नहीं आता, मुझसे इतना संकोच क्यों किया। यह भी मेरा ही दोष है। मुझमें जरूर कोई ऐसी बात देखी होगी जिसके कारण मुझसे परदा करना उन्हें ज़रूरी मालूम हुआ। मुझे यही दुःख है कि मैं उनका सच्चा स्नेह न पा सकी। जिससे प्रेम होता है, उससे हम कोई भेद नहीं रखते।

रतन उठकर चली, तो जालपा ने देखा—कंगन का बक्स मेज पर पड़ा हुआ है। बोली—इसे लेती जाओ बहन, यहाँ क्यों छोड़े जाती हो?

रतन—ले जाऊँगी, अभी क्या जल्दी पड़ी है। अभी पूरे रुपये भी तो नहीं दिये।

जालपा—नहीं, लेती जाओ। मैं न मानूँगी।

मगर रतन सीढ़ी से नीचे उतर गयी। जालपा हाथ में कंगन लिये खड़ी रही। थोड़ी देर के बाद जालपा ने सन्दूक से पाँच सौ रुपये निकाले, और दयानाथ के पास जाकर बोली—ये रुपये लीजिए, नारायणदास के पास भिजवा दीजिए। बाकी रुपये भी जल्द ही दे दूँगी। दयानाथ ने झेंपकर कहा—रुपये कहाँ मिल गये?

जालपा ने निःसंकोच होकर कहा—रतन के हाथ कंगन बेच दिया।
दयानाथ उसका मुँह ताकने लगे।

२४

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के सबसे अधिक छपनेवाले दैनिक पत्र में एक नोटिस निकल रहा है, जिसमें रमानाथ के घर लौट आने की प्रेरणा दी गयी है, और उनका पता लगा लेने वाले आदमी को पाँच सौ रुपये इनाम देने का वचन दिया गया है; मगर अभी तक कोई खबर नहीं आयी। जालपा चिन्ता और दुःख से घुलती चली जाती है। उसकी दशा देखकर दयानाथ को भी उस पर दया आने लगी। आखिर एक दिन उन्होंने दीनदयाल को लिखा—आप आकर बहू को कुछ दिनों के लिए ले जाइये। दीनदयाल यह समाचार पाते ही घबड़ाये हुए आये; पर जालपा ने मैके जाने से इनकार कर दिया।

दीनदयाल ने विस्मित होकर कहा—क्या यहाँ पड़े-पड़े प्राण देने का विचार है ?

जालपा ने गम्भीर स्वर में कहा—अगर प्राणों को इसी भाँति जाना होगा, तो कौन रोक सकता है। मैं अभी नहीं मरने की दादाजी, सच मानिए। अभागिनों के लिए वहाँ भी जगह नहीं।

दीनदयाल—आखिर चलने में हरज ही क्या है। शहज़ादी और बसन्ती दोनों आयी हुई हैं। उनके साथ हँस-बोलकर जी बहलता रहेगा।

जालपा—यहाँ लाला और अम्माजी को अकेली छोड़ जाने को मेरा जी नहीं चाहता। जब रोना ही लिखा है, तो रोऊँगी।

दीनदयाल—यह बात क्या हुई ? सुनते हैं, कुछ कर्ज़ हो गया था। कोई कहता है—सरकारी रक़म खा गये थे।

जालपा—जिसने आपसे यह कहा, उसने सरासर झूठ कहा।

दीनदयाल—तो फिर क्यों चले गये ?

जालपा—यह मैं बिलकुल नहीं जानती। मुझे बार-बार खुद यही शंका होती है।

दीनदयाल—लाला दयानाथ से तो झगड़ा नहीं हुआ ?

जालपा—लालाजी के सामने तो वह सिर तक नहीं उठाते, पान तक

नहीं खाते, भला झगड़ा क्या करेंगे। उन्हें घूमने का शौक था। सोचा होगा—यों तो कोई जाने न देगा, चलो भाग चलें।

दीनदयाल—शायद ऐसा ही हो। कुछ लोगों को इधर-उधर भटकने की सनक होती है। तुम्हें यहाँ जो तकलीफ हो, मुझसे साफ़-साफ़ कह दो। ख़रच के लिए कुछ भेज दिया करूँ?

जालपा ने गर्व से कहा—मुझे कोई तकलीफ नहीं है, दादाजी। आपकी दया से किसी चीज की कमी नहीं है।

दयानाथ और रामेश्वरी, दोनों ने जालपा को समझाया; पर वह जाने पर राज़ी न हुई। तब दयानाथ झुंझलाकर बोले—यहाँ दिन भर पड़े-पड़े रोने से तो अच्छा है!

जालपा—क्या वह कोई दूसरी दुनिया है? क्या मैं वहाँ जाकर कुछ और हो जाऊँगी? और फिर रोने से क्यों डरूँ? जब हँसना था, तब हँसती थी; जब रोना है, तब रोऊँगी। वह काले कोसों चले गये हों, पर मुझे तो हर-दम यहीं बैठे दिखायी देते हैं। यहाँ वे स्वयं नहीं हैं, पर घर की एक-एक चीज़ में बसे हुए हैं; यहाँ से जाकर तो मैं निराशा से पागल हो जाऊँगी।

दीनदयाल समझ गये, यह अभिमानिनी अपनी टेक न छोड़ेगी। उठकर बाहर चले गये। संध्या समय चलते वक्त, उन्होंने पचास रुपये का एक नोट जालपा की तरफ बढ़ाकर कहा—इसे रख लो, शायद कोई ज़रूरत पड़े।

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—मुझे इसकी बिल्कुल ज़रूरत नहीं है, दादाजी! हाँ इतना चाहती हूँ कि आप मुझे आशीर्वाद दें। सम्भव है, आपके आशीर्वाद से मेरा कल्याण हो।

दीनदयाल की आँखों में आँसू भर आये, नोट वहीं चारपाई पर रखकर बाहर चले आये।

क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जल-शून्य टुकड़े कभी-कभी आकाश में दौड़ते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघ-खण्डों की किलोलें देखा करती। चिन्ता-व्यथित प्राणियों के लिये इससे अधिक मनोरंजन की वस्तु ही कौन है? बादल के टुकड़े भाँति-भाँति के रंग बदलते, भाँति-भाँति के रूप भरते। कभी आपस में प्रेम से मिल जाते, कभी रूठकर अलग-अलग हो जाते, कभी दौड़ने लगते, कभी ठिठक जाते। जालपा

सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे यही मेघ-क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना में उसे विचित्र आनन्द मिलता। किसी माली को अपने लगाये पौधों से, किसी बालक को अपने बनाये हुए घरौंदों से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाशगामी जीवों से होता था। विपत्ति में हमारा मन अन्तर्मुखी हो जाता है। जालपा को अब यही शंका होती थी, कि ईश्वर ने मेरे पापों का दण्ड दिया है। आख़िर रमानाथ दूसरों का गला दबाकर ही तो रोज रुपये लाते थे। कोई ख़ुशी से तो न देता था। यह रुपये देखकर वह कितनी ख़ुश होती थी। इन्हीं रुपयों से तो नित्य शौक-शृङ्गार की चीज़ें आती रहती थीं। उन वस्तुओं को देखकर अब उसका जी जलता था। यही सारे दुखों की मूल हैं। इन्हीं के लिए तो उसके पति को विदेश जाना पड़ा। ये चीज़ें उसकी आंखों में अब कांटों की तरह गड़ती थीं, उसके हृदय में शूल की तरह चुभती थीं।

आखिर एक दिन उसने इन सब चीजों को जमा किया—मखमली स्लीपर, रेशमी मोजे, तरह-तरह की बेलें, फ़ीते, पिन, कंघियाँ, आइने, कोई कहां तक गिनाये। अच्छा खासा एक ढेर हो गया। वह इस ढेर को गंगाजी में डुबा देगी, और अबसे एक नए जीवन का सूत्रपात करेगी। इन्हीं वस्तुओं के पीछे आज उसकी यह गति हो रही है। आज वह इस माया-जाल को नष्ट कर डालेगी। उसमें कितनी ही चीज़ें ऐसी सुन्दर थीं कि उन्हें फेंकते मोह आता था, मगर ग्लानि की उस प्रचण्ड ज्वाला को पानी के छींटे क्या बुझाते। आधी रात तक वह चीजों को उठा-उठाकर अलग रखती रही, मानों किसी यात्रा की तैयारी कर रही हो। हां, यह वास्तव में यात्रा ही थी—अँधेरे से उजाले को; मिथ्या से सत्य को। मन में सोच रही थी, अब यदि ईश्वर की दया हुई और वह फिर लौटकर आये, तो वह इस तरह घर रखेगी कि थोड़े-से-थोड़े में निर्वाह हो जाय। एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करेगी। अपनी मजदूरी के उपर एक कौड़ी भी घर न आने देगी। आज उसके नये जीवन का आरम्भ होगा।

ज्यों ही चार बजे, सड़क पर लोगों के आने-जाने की आहट मिलने लगी, जालपा ने बेग उठा लिया, और गंगा-स्नान करने चली। बेग बहुत भारी था, हाथ में उसे लटकाकर दस कदम भी चलना कठिन हो गया। बार-बार

हाथ बदलती थी। यह भय भी लगा हुआ था कि कोई देख न ले। बोझ लेकर चलने का उसे कभी अवसर न पड़ा था। इक्केवाले पुकारते थे पर वह उधर कान न देती थी। यहां तक कि हाथ बेकाम हो गये, तो उसने बेग को पीठ पर रख लिया, और कदम बढ़ाकर चलने लगी। लम्बा घूँघट निकाल लिया था कि कोई पहचान न सके।

वह घाट के समीप पहुँची तो प्रकाश हो गया था। सहसा उसने रतन को अपनी मोटर पर आते देखा। उसने चाहा, सिर झुकाकर मुँह छिपा ले, पर रतन ने दूर ही से पहचान लिया। मोटर रोककर बोली—कहाँ जा रही हो बहन, यह पीठ पर बेग कैसा है?

जालपा ने घूँघट हटा लिया और निशंक होकर बोली—गंगा-स्नान करने जा रही हूँ!

रतन—मैं तो स्नान करके लौट आयी। लेकिन चलो, तुम्हारे साथ चलती हूँ। तुम्हें घर पहुँचाकर लौट जाऊँगी। बेग रख दो।

जालपा—नहीं-नहीं, यह भारी नहीं है। तुम जाओ, तुम्हें देर होगी। मैं चली जाऊँगी।

मगर रतन ने न माना, कार से उतरकर उसके हाथ से बेग ले ही लिया और कार में रखती हुई बोली—क्या भरा है तुमने इसमें, बहुत भारी है। खोलकर, देखूँ?

जालपा—इसमें तुम्हारे देखने लायक कोई चीज नहीं है।

बेग में ताला न लगा था। रतन ने खोलकर देखा, तो विस्मित होकर बोली—इन चीजों को कहां लिये जाती हो?

जालपा ने कार पर बैठते हुए कहा—इन्हें गंगाजी में बहा दूँगी।

रतन ने और भी विस्मय में पड़कर कहा—गंगा में! कुछ पागल तो नहीं हो गयीं? चलो, घर लौट चलो। बेग रखकर फिर आ जाना।

जालपा ने दृढ़ता से कहा—नहीं रतन, मैं इन चीजों को डुबाकर ही जाऊँगी।

रतन—आखिर क्यों?

जालपा—पहले कार को बढ़ाओ, फिर बताऊँ।

रतन—नहीं, पहले बता दो!

जालपा—नहीं यह न होगा। पहले कार को बढ़ाओ।

रतन ने हारकर कार को बढ़ाया और बोली—अच्छा अब तो बताओगी।

जालपा ने उलाहने के भाव से कहा—इतनी बात तो तुम्हें खुद ही समझ लेनी चाहिए थी। मुझसे क्या पूछती हो। अब ये चीजें मेरे किस काम की हैं। इन्हें देख-देखकर मुझे दुःख होता है। जब देखनेवाला ही न रहा, तो इन्हें रखकर क्या करूँ।

रतन ने एक लम्बी सांस खींची और जालपा का हाथ पकड़कर काँपते हुए स्वर में बोली—बाबूजी के साथ तुम यह बड़ा अन्याय कर रही हो बहन! वह कितनी उमंग से इन्हें लाये होंगे। तुम्हारे अंगों पर इनकी शोभा देखकर कितने प्रसन्न हुए होंगे। एक-एक चीज उनके प्रेम की एक-एक स्मृति है। इन्हें गंगा में बहाकर तुम उस प्रेम का घोर अनादर कर रही हो!

जालपा विचार में डूब गयी, मन में संकल्प-विकल्प होने लगा; किन्तु एक ही क्षण में वह फिर सँभल गयी। बोली—यह बात नहीं है बहन, जब तक ये चीजें मेरी आंखों से दूर न हो जायँगी, मेरा चित्त शान्त न होगा। इसी विलासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरे विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।

रतन—तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है जालपा, मैं तो शायद ऐसा न कर सकती।

जालपा—लेकिन मैं तो इन्हें अपनी विपत्ति का मूल समझती हूँ।

एक क्षण चुप रहने के बाद वह फिर बोली—उन्होंने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, बहन। जो पुरुष अपनी स्त्री से कोई परदा रखता है, मैं समझती हूँ, वह उससे प्रेम नहीं करता। मैं उनकी जगह पर होती तो यों तिलांजलि देकर न भागती। अपने मन को सारी व्यथा कह सुनाती, और जो कुछ करती, उनकी सलाह से करती। स्त्री और पुरुष में दुराव कैसा?

रतन ने गम्भीर मुस्कान के साथ कहा—ऐसे पुरुष तो बहुत कम होंगे जो स्त्री से अपना दिल खोलते हों। जब तुम स्वयं दिल में चोर रखती हो, तो उनसे क्यों आशा रखती हो कि वे तुमसे कोई परदा न रखें। तुम ईमान से कह सकती हो कि तुमने उनसे परदा नहीं रखा?

जालपा ने सकुचाते हुए कहा—मैंने तो अपने मन में परदा नहीं रखा।

रतन ने जोर देकर कहा—झूठ बोलती हो, बिल्कुल झूठ! अगर तुमने विश्वास किया होता, तो वे भी खुलते।

जालपा इस आक्षेप को अपने सिर से न टाल सकी। उसे आज ज्ञात हुआ कि कपट का आरम्भ पहले उसी की ओर से हुआ।

गंगा का तट आ पहुँचा। कार रुक गयी। जालपा उतरी और बेग को उठाने लगी किन्तु रतन ने उसका हाथ हटाकर कहा—नहीं, मैं इसे न ले जाने दूँगी। समझ लो कि डूब गये।

जालपा—ऐसा कैसे समझ लूं?

रतन—मुझ पर इतनी दया करो, बहन के नाते।

जालपा—बहन के नाते तुम्हारे पैर धो सकती हूँ, मगर इन काँटों को हृदय में नहीं रख सकती।

रतन ने भौंहें सिकोड़कर कहा—किसी तरह न मानोगी?

जालपा ने स्थिर भाव से कहा—हाँ किसी तरह नहीं!

रतन ने विरक्त होकर मुँह फेर लिया। जालपा ने बेग उठा लिया, और तेजी से घाट से उतरकर जल-तट तक पहुँच गयी; फिर बेग को उठाकर पानी में फेंक दिया। अपनी निर्बलता पर विजय पाकर उसका मुख प्रदीप्त हो गया। आज उसे जितना गर्व और आनन्द हुआ, उतना इन चीज़ों को पाकर भी न हुआ था। उन असंख्य प्राणियों में जो इस समय स्नान-ध्यान कर रहे थे, कदाचित् किसी को अपने अन्तःकरण में प्रकाश का ऐसा अनुभव न हुआ होगा। मानो प्रभात की सुनहरी ज्योति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो रही है। जब वह स्नान करके ऊपर आयी, तो रतन ने पूछा—डुबा दिया?

जालपा—हाँ।

रतन—बड़ी निष्ठुर हो!

जालपा—यही निष्ठुरता मन पर विजय पाती है। अगर कुछ दिन पहले निष्ठुर हो जाती तो यह दिन क्यों आता!

कार चल पड़ी।

२५

रमानाथ को कलकत्ते आये हुए दो महीने से ऊपर हो गये हैं। वह अभी

तक देवीदीन के घर पड़ा हुआ है। उसे हमेशा यही धुन सवार रहती है कि रुपये कहाँ से आयें; तरह-तरह के मन्सूबे बाँधता है, भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करता है पर घर के बाहर नहीं निकलता। हाँ, जब खूब अँधेरा हो जाता है तो वह एक बार मुहल्ले के वाचनालय में ज़रूर जाता है। अपने नगर और प्रान्त के समाचारों के लिए उसका मन सदैव उत्सुक रहता हैं। उसने वह नोटिस देखी, जो दयानाथ ने पत्रों में छपायी थी; पर उस पर विश्वास न आया। कौन जाने, पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने के लिये माया रची हो। रुपये भला किसने चुकाये होंगे ? असम्भव !

एक दिन उसी पत्र में रमानाथ को जालपा का एक खत छपा मिला। जालपा ने आग्रह और याचना से भरे शब्दों में उसे घर लौट आने की प्रेरणा की थी। उसने लिखा था—तुम्हारे ज़िम्मे किसी का कुछ बाकी नहीं है, कोई तुमसे कुछ न कहेगा। रमानाथ का मन चंचल हो उठा; लेकिन तुरन्त ही ख्याल आया—यह भी पुलिस की शरारत होगी। जालपा ने यह पत्र लिखा, इसका क्या प्रमाण है ? अगर यह भी मान लिया जाय, कि रुपये घरवालों ने अदा कर दिये होंगे, तो क्या इस दशा में भी वह घर जा सकता है ? शहर भर में उसकी बदनामी हो ही गयी होगी, पुलिस में इत्तला की ही जा चुकी होगी। उसने निश्चय किया कि मैं नहीं जाऊँगा। जब तक कम-से-कम पाँच हजार रुपये हाथ में न हो जायँगे, घर जाने का नाम न लूँगा। और अगर रुपये नहीं दिये गये, पुलिस मेरी खोज में है, तो कभी घर न आऊँगा, कभी नहीं।

देवीदीन के घर में दो कोठरियाँ थीं और सामने एक बरामदा था। बरामदे में दूकान थी, एक कोठरी में खाना बनता था, दूसरी कोठरी में बरतन-भाँड़े रखे हुए थे। ऊपर एक कोठरी थी और छोटी-सी खुली हुई छत। रमा इसी ऊपर के हिस्से में रहता था। देवीदीन के रहने, सोने, बैठने का कोई विशेष स्थान न था। रात को दूकान बढ़ाने के बाद वही बरामदा शयन-गृह बन जाता था। दोनों वहीं पड़े रहते थे। देवीदीन का काम चिलम पीना और दिन भर गप्पें लड़ाना था, दूकान का सारा काम तो बुढ़िया करती थी। मण्डी जाकर माल लाना, स्टेशन से माल भेजना या लेना, यह सब भी वही कर लेती थी। देवीदीन ग्राहकों को पहचानता तक न था। थोड़ी-सी हिन्दी जानता था। बैठा-बैठा रामायण, तोता-मैना, रासलीला या माता मरियम की कहानी

पढ़ा करता था। जब से रमा आ गया है, बुड्ढे को अँगरेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सवेरे ही प्राइमर लेकर बैठ जाता है और नौ-दस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता है। बीच-बीच में लतीफे भी होते जाते हैं, जिनका देवीदीन के पास अक्षय भंडार है। मगर जग्गी को रमा का आसन जमाना अच्छा नहीं लगता। वह उसे अपना मुनीम तो बनाये हुए है—हिसाब-किताब उसी से लिखवाती है—पर इतने से काम के लिए वह एक आदमी रखना व्यर्थ समझती है। यह काम तो वह ग्राहकों से यों ही करा लेती थी। उसे रमा का रहना खलता था; पर वह इतना नम्र, इतना सेवा-तत्पर, इतना धर्मनिष्ठ है कि वह स्पष्ट रूप से कोई आपत्ति नहीं कर सकती। हाँ, दूसरों पर रखकर, श्लेषरूप से उसे सुना-सुनाकर दिल का गुबार निकालती रहती है। रमा ने अपने को ब्राह्मण कह रखा है और उसी धर्म का पालन करता है। ब्राह्मण और धर्मनिष्ठ बनकर वह दोनों प्राणियों का श्रद्धा-पात्र बन सकता है। बुढ़िया के भाव और व्यवहार को वह खूब समझता है; पर करे क्या? बेहयाई करने पर मजबूर है! परिस्थिति ने उसके आत्म-सम्मान का अपहरण कर डाला है।

एक दिन रमानाथ वाचनालय में बैठा हुआ पत्र पढ़ रहा था, कि एकाएक उसे रतन दिखायी पड़ गयी। उसके अन्दाज़ से मालूम होता था कि वह किसी को खोज रही है। बीसों आदमी बैठे पुस्तकें और पत्र पढ़ रहे थे। रमा की छाती धक-धक् करने लगी। वह रतन की आंखें बचाकर सिर झुकाये हुए कमरे से निकल गया और पीछे के अँधेरे बरामदे में, जहाँ पुराने टूटे-फूटे सन्दूक और कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं, छिपा खड़ा रहा। रतन से मिलने और घर के समाचार पूछने के लिये उसकी आत्मा तड़प रही थी; पर मारे संकोच के सामने न आ सकता था। आह! कितनी बातें पूछने को थीं! पर उनमें मुख्य यही थी कि जालपा के विचार उसके विषय में क्या हैं। उसकी निष्ठुरता पर रोती तो नहीं है? उसकी उद्दंडता पर क्षुब्ध तो नहीं है? उसे धूर्त और बेईमान तो नहीं समझ रही है? दुबली तो नहीं हो गयी है? और लोगों के क्या भाव हैं? क्या घर की तलाशी हुई? मुकद्दमा चला? ऐसी हज़ारों बातें जानने के लिए वह विकल हो रहा था; पर मुँह कैसे दिखाये? वह झाँक-झाँक कर देखता रहा। जब रतन चली गयी—

मोटर चल दी, तब उसकी जान-में-जान ग्रायी। उस दिन से एक सप्ताह तक वह वाचनालय न गया। घर से निकला तक नहीं।

कभी-कभी पड़े-पड़े रमा का जी ऐसा घबराता कि पुलिस में जाकर सारी कथा कह सुनाये। जो कुछ होना है, हो जाय। साल-दो-साल की क़ैद इस ग्राजीवन कारावास से तो ग्रच्छी ही है। फिर वह नये सिरे से जीवन-संग्राम में प्रवेश करेगा, हाथ-पाँव बचाकर काम करेगा, ग्रपनी चादर के बाहर जौ भर भी पाँव न फैलायगा, लेकिन एक क्षण में हिम्मत टूट जाती।

इस प्रकार दो महीने ग्रौर बीत गये। पूस का महीना ग्राया। रमा के पास जाड़ों का कोई कपड़ा न था। घर से तो वह कोई चीज़ लाया ही न था, यहाँ भी कोई चीज बनवा न सका था। ग्रब तक तो उसने धोती ग्रोढ़कर किसी तरह रातें काटीं; पर पूस के कड़कड़ाते जाड़े लिहाफ या कम्बल के बग़ैर कैसे कटते। बेचारा रात-भर गठरी बना पड़ा रहता। जब बहुत सर्दी लगती तो बिछावन ग्रोढ़ लेता। देवीदीन ने उसे एक पुरानी दरी बिछाने को दे दी थी। उसके घर में शायद यही सबसे ग्रच्छा बिछावन था। इस श्रेणी के लोग चाहे दस हज़ार के गहने पहन लें, शादी-ब्याह में दस हज़ार खर्च कर दें; पर बिछावन गूदड़ा ही रखेंगे। इस सड़ी हुई दरी से जाड़ा भला क्या जाता; पर कुछ न होने से ग्रच्छा ही था। रमा संकोचवश देवीदीन से कुछ कह न सकता था ग्रौर देवीदीन भी शायद इतना बड़ा खर्च न उठाना चाहता था; या सम्भव है, इधर उसकी निगाह ही न जाती हो। जब दिन ढलने लगता, तो रमा रात के कष्ट की कल्पना से भयभीत हो उठता था, मानो काली बला दौड़ती चली ग्राती हो। रात को बार-बार खिड़की खोलकर देखता कि सबेरा होने में कितनी कसर है।

एक दिन शाम को वह वाचनालय में जा रहा था कि उसने देखा, एक बड़ी कोठी के सामने हजारों कँगले जमा हैं। उसने सोचा—यह क्या बात है; क्यों इतने ग्रादमी जमा हैं? भीड़ के ग्रन्दर घुसकर देखा तो मालूम हुग्रा, सेठजी कम्बलों का दान कर रहे हैं। कम्बल बहुत घटिया थे, पतले ग्रौर हलके, पर जनता एक-पर-एक टूटी पड़ती थी। रमा के मन में ग्राया, एक कम्बल ले लूँ। यहाँ मुझे कौन जानता है? ग्रगर कोई जान भी जाय तो क्या हरज? गरीब ब्राह्मण ग्रगर दान का ग्रधिकारी नहीं तो ग्रौर कौन है; लेकिन एक ही

क्षण में उसका आत्म-सम्मान जाग उठा। वह कुछ देर वहाँ खड़ा ताकता रहा, फिर आगे बढ़ा। उसके माथे पर तिलक देखकर मुनीमजी ने समझ लिया, यह ब्राह्मण है। इतने सारे कंगलों में ब्राह्मणों की संख्या बहुत कम थी। ब्राह्मणों को दान देने का पुण्य कुछ और ही है। मुनीम मन में प्रसन्न था कि एक ब्राह्मण देवता दिखायी तो दिये। इसलिए जब उसने रमा को जाते देखा तो बोला—पंडितजी, कहाँ चले, कम्बल तो लेते जाइए। रमा मारे संकोच के गड़ गया। उसके मुँह से केवल इतना ही निकला—मुझे इच्छा नहीं है। यह कहकर वह फिर बढ़ा। मुनीमजी ने समझा, शायद कम्बल घटिया देखकर देवताजी चले जा रहे हैं। ऐसे आत्म-सम्मान-वाले देवता उसे अपने जीवन में शायद कभी मिले ही न थे। कोई दूसरा ब्राह्मण होता, तो दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातें करता और अच्छे कम्बल माँगता। यह देवता बिना कुछ कहे, निर्व्याज भाव से चले जा रहे हैं तो अवश्य कोई त्यागी जीव हैं। उसने लपककर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—आओ तो महाराज, आपके लिए चोखा कम्बल रखा है। यह तो कँगलों के लिये है। रमा ने देखा कि बिना माँगे एक चीज मिल रही है, जबरदस्ती गले लगायी जा रही है, तो वह दो बार और नहीं-नहीं करके मुनीम जी के साथ अन्दर चला गया। मुनीम ने उसे कोठी में ले जाकर तख्त पर बैठाया और एक अच्छा-सा दबीज कम्बल भेंट किया। रमा को संतोष-वृत्ति का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने पाँच रुपये दक्षिणा भी देना चाहा; किन्तु रमा ने उसे लेने से साफ़ इनकार कर दिया। जन्म-जन्मान्तर की संचित मर्यादा कम्बल लेकर ही आहात हो उठी थी, दक्षिणा के लिए हाथ फैलाना उसके लिए असम्भव हो गया।

मुनीम ने चकित होकर कहा—आप यह भेंट न स्वीकार करेंगे, तो सेठजी को बड़ा दुःख होगा।

रमा ने विरक्त होकर कहा—आपके आग्रह से मैंने कम्बल ले लिया; पर दक्षिणा नहीं ले सकता। मुझे धन की आवश्यकता नहीं। जिस सज्जन के घर टिका हुआ हूँ, वह मुझे भोजन देते हैं। और मुझे लेकर क्या करना है?

'सेठजी नहीं मानेंगे!'

'आप मेरी ओर से क्षमा माँग लीजिएगा।'

'आपके त्याग को धन्य है। ऐसे ब्राह्मणों से धर्म की मर्यादा बनी हुई है।' कुछ देर बैठिए तो, सेठजी आते होंगे। ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। त्रिकाल संध्यावन्दन करते हैं, महाराज। तीन बजे रात को गंगातट पर पहुँच जाते हैं और वहाँ से आकर पूजन पर बैठ जाते हैं। दस बजे भागवत का पारायण करते हैं। मध्याह्न भोजन पाते हैं तब कोठी में आते हैं। तीन-चार बजे फिर संध्या करने चले जाते हैं। आठ बजे थोड़ी देर के लिए फिर आते हैं। नौ बजे फिर ठाकुरद्वारे में कीर्तन सुनते हैं और फिर संध्या करके भोजन पाते हैं। थोड़ी देर में आते ही होंगे। आप कुछ देर बैठें तो बड़ा अच्छा हो। आपका स्थान कहाँ है?'

रमा ने प्रयाग न बतलाकर काशी बतलाया। इस पर मुनीमजी का आग्रह और बढ़ा; पर रमा को यह शंका हो रही थी कि कहीं सेठ जी ने कोई धार्मिक प्रसंग छेड़ दिया तो सारी कलई खुल जायगी। किसी दूसरे दिन आने का वचन देकर उसने पिंड छुड़ाया।

नौ बजे वह वाचनालय से लौटा तो डर रहा था कि कहीं देवीदीन ने कम्बल देखकर पूछा—कहाँ से लाये, तो क्या जवाब दूँगा! कोई बहाना कर दूँगा, एक पहचान की दूकान से उधार लाया हूँ।

देवीदीन ने कम्बल देखते ही पूछा—सेठ करोड़ीमल के यहाँ पहुँच गये क्या महाराज?

रमा ने पूछा—कौन सेठ करोड़ीमल?

'अरे वही, जिसकी वह लाल कोठी है।'

रमा कोई बहाना न कर सका। बोला—हाँ, मुनीमजी ने पिंड ही न छोड़ा। बड़ा धर्मात्मा जीव है।

देवीदीन ने मुस्कराकर कहा—बड़ा धर्मात्मा! उसी के थामे तो यह धरती थमी है, नहीं तो अब तक मिट गयी होती!

रमा०—काम तो धर्मात्माओं ही के करता है, मन का हाल ईश्वर जाने जो सारे। दिन पूजा-पाठ और दान-व्रत में लगा रहे, उसे धर्मात्मा नहीं तो और क्या कहा जाय।

देवी०—उसे पापी कहना चाहिए, महापापी। दया तो उसके पास से होकर भी नहीं निकली। उसकी जूट की मिल है। मजदूरों के साथ जितनी

निर्दयता इसकी मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाया है, हंटरों से! चरबी मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिये। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर साल में दो-चार हजार दान न करे तो पाप का धन पचे कैसे। धर्म-कर्मवाले ब्राह्मण तो उसके द्वार पर झाँकते भी नहीं। तुम्हारे सिवा वहाँ और कोई पंडित था?

रमा ने सिर हिलाया।

'कोई जाता ही नहीं। हाँ लोभी-लम्पट पहुँच जाते हैं। जितने पुजारी देखे, सबको पत्थर ही पाया। पत्थर पूजते-पूजते इनके दिल भी पत्थर हो जाते हैं। इसके तीन तो बड़े-बड़े धर्मशाले हैं; मुदा है पाखंडी। आदमी चाहे, और कुछ न करे, मन में दया बनाये रखे। यही सौ धरम का एक धरम है।

दिन की रखी हुई रोटियाँ खाकर जब रमा कम्बल ओढ़कर लेटा, तो उसे बड़ी ग्लानि होने लगी। रिश्वत में उसने हजारों रुपये मारे थे; पर कभी एक क्षण के लिये भी उसे ग्लानि न आयी थी। रिश्वत बुद्धि से, कौशल से पुरुषार्थ से मिलती है। दान पौरुषहीन, कर्महीन या पाखण्डियों का आधार है। वह सोच रहा था—मैं अब इनता दीन हूँ कि भोजन और वस्त्र के लिए मुझे दान लेना पड़ता है। वह देवीदीन के घर दो महीने से पड़ा हुआ था, पर देवीदीन उसे भिक्षुक नहीं, मेहमान समझता था। उसके मन में कभी दान का भाव आया ही न था। रमा के मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी दम थाने में जाकर अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाये। यही न होगा, दो-तीन साल की सजा हो जायगी; फिर तो यों प्राण सूली पर न टँगे रहेंगे। कहीं डूब ही क्यों न मरूँ। इस तरह जीने से फ़ायदा ही क्या? न घर का हूँ, न घाट का। दूसरों का भार तो क्या उठाऊँगा, अपने ही लिए दूसरों का मुँह ताकता हूँ। इस जीवन से किसका उपकार हो रहा है। धिक्कार है मेरे जीने को!

रमा ने निश्चय किया, कल निश्शंक होकर काम की टोह में निकलूँगा। जो कुछ होना है, हो।

२६

अभी रमा मुँह-हाथ धो रहा था, कि देवीदीन प्राइमर लेकर आ पहुँचा और बोला—भैया, यह तुम्हारी अँगरेज़ी बड़ी विकट है। एस-आई-आर

'सर' होता है, तो पी-आई-टी 'पिट' क्यों हो जाता है ? बी-यू-टी' 'बट' होता है; लेकिन पी-यू-टी 'पुट' क्यों होता है ? तुम्हें भी बड़ी कठिन लगती होगी ?

रमा ने मुसकराकर कहा—पहले तो कठिन लगती थी, पर अब आसान मालूम होती है।

देवी—जिस दिन प्राइमर खतम होगी, महावीरजी को सवा सेर लड्डू चढ़ाऊँगा। पराई-मर का मतलब है पराई स्त्री मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर। पराई के मरने से हमें क्या सुख ! तुम्हारे बाल-बच्चे तो हैं न भैया ?

रमा ने इस भाव से कहा मानों हैं, पर न होने के बराबर हैं—हाँ, हैं तो !

'कोई चिट्ठी-चपाती आयी थी ?'

'न !'

'और न तुमने लिखी ? अरे ! तीन महीने से कोई चिट्ठी भी नहीं भेजी ? घबराते न होंगे लोग ?'

'जब तक यहाँ कोई ठिकाना न लग जाय, क्या पत्र लिखूँ ?'

'अरे भले आदमी, इतना तो लिख दो कि मैं यहाँ कुशल से हूँ। घर से भाग आये थे, उन लोगों को कितनी चिन्ता हो रही होगी ? माँ-बाप तो है न ?'

'हाँ, हैं तो।'

देवीदीन ने गिड़गिड़ाकर कहा—तो भैया, आज ही चिट्ठी डाल दो, मेरी बात मानो।

रमा ने अब तक अपना हाल छिपाया था। उसके मन मे कितनी ही बार इच्छा हुई कि देवीदीन से कह दूँ; पर बात ओठों तक आकर रुक जाती थी। वह देवीदीन के मुँह से आलोचना सुनना चाहता था। वह जानना चाहता था कि वह क्या सलाह देता है। इस समय देवीदीन के सद्भाव ने पराभूत कर दिया। बोला—मैं घर से भाग आया हूँ, दादा।

देवीदीन ने मूछों में मुसकराकर कहा—यह तो मैं जानता हूँ। क्या बाप से लड़ाई हो गयी ?

'नहीं !'

'माँ ने कुछ कहा होगा ?'

'यह भी नहीं !'

'तो फिर घरवाली से ठन गयी होगी। वह कहती होगी, मैं अलग रहूँगी। तुम कहते होगे मैं अपने माँ-बाप से अलग न रहूँगा। या गहने के लिये ज़िद करती होगी, नाक में दम कर दिया होगा। क्यों ?

रमा ने लज्जित होकर कहा—कुछ ऐसी ही बात थी, दादा। वह तो गहनों की बहुत इच्छुक न थी, लेकिन पा जाती थी, तो प्रसन्न हो जाती थी, और मैं प्रेम की तरंग में आगा-पीछा कुछ न सोचता था।

देवीदीन के मुँह से मानो आप-ही-आप निकल आया—सरकारी रक़म तो नहीं उड़ा दी ?

रमा को रोमांच हो आया। छाती धक्-से हो गयी। वह सरकारी रक़म की बात उससे छिपाना चाहता था। देवीदीन के इस प्रश्न ने उस पर छापा मार दिया। वह कुशल सैनिक की भाँति अपनी सेना को घाटियों से, जासूसों की आंख बचाकर, निकाल ले जाना चाहता था, पर इस छापे ने उसकी सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह एकाएक कोई निश्चय न कर सका कि इसका क्या जवाब दूँ।

देवीदीन ने उसके मन का भाव भांपकर कहा—प्रेम बड़ा बेढब होता है भैया। बड़े-बड़े चूक जाते हैं; तुम तो अभी लड़के हो। ग़बन के हजारों मुकदमे हर साल होते हैं। तहकीकात की जाय तो सबका कारण एक ही होगा—गहना ! दस बीस वारदात तो मैं आंखों देख चुका हूँ। वह रोग ही ऐसा है। औरत मुँह से तो यही कहे जाती है कि यह क्यों लाये वह क्यों लाये, रुपये कहां से आयेंगे, लेकिन उसका मन आनन्द से नाचने लगता है। यहीं एक डाक बाबू रहते थे। बेचारे ने छुरी से गला काट लिया ! एक दूसरे मियां साहब को मैं जानता हूँ, जिनको पांच साल की सजा हो गयी, जेहल में मर गये। एक तीसरे पण्डितजी को जानता हूँ, जिन्होंने अफीम खाकर जान दे दी। बुरा रोग है। दूसरों को क्या कहूँ, मैं भी तीन साल की सजा काट चुका हूँ। जवानी की बात है, जब बुढ़िया पर जोबन था। ताकती थी तो मानो कलेजे पर तीर चला देती थी ! मैं डाकिया था। मनीआर्डर तकसीम

किया करता था। यह कानों के झूमक के लिए जान खा रही थी। कहती थी, सोने ही का लूँगी। इसका बाप चौधरी था। मेवे की दूकान थी। मिजाज बढ़ा हुआ था। मुझ पर प्रेम का नशा छाया हुआ था। अपनी आमदनी की डींगें मारता रहता था। कभी फूलों का हार लाता, कभी मिठाई, कभी अतर-फुलेल। सदर का हल्का था। जमाना अच्छा था। दूकानदारों से जो चीज़ मांग लेता, मिल जाती थी। आखिर मैंने एक मनीआर्डर पर झूठे दस्तखत बनाकर रुपये उड़ा दिये। कुल तीस रुपये थे। झूमक लाकर इसे दिये। इतनी खुश हुई कि कुछ न पूछो; लेकिन एक महीने में चोरी पकड़ ली गयी। तीन साल की सजा हो गयी। सज़ा काटकर निकला तो यहां भाग आया। फिर कभी घर नहीं गया। वहां मुँह कैसे दिखाता। हां, घर पत्र भेज दिया। बुढ़िया ख़बर पाते ही चली आयी। यह सब कुछ हुआ; मगर गहनों से उसका पेट नहीं भरा। जब देखो, कुछ-न-कुछ बनता ही रहता है। एक चीज़ आज बनवायी, कल उसी को तुड़वाकर कोई दूसरी चीज़ बनवायी। यही तार चला जाता है। एक सोनार मिल गया है, मजूरी में साग-भाजी ले जाता है। मेरी तो सलाह है, घर एक खत लिख दो। लकिन पुलिस तो तुम्हारी टोह में होगी? कहीं पता मिल गया, तो काम बिगड़ जायगा। मैं न किसी से एक खत लिखवाकर भेज दूँ?

रमा ने आग्रहपूर्वक कहा—नहीं दादा! दया करो। अनर्थ हो जायगा। पुलिस से ज्यादा तो मुझे घर वालों का भय है।

देवी०—घरवाले ख़बर पाते ही आ जायँगे। यह चर्चा ही न उठेगी। उनकी कोई चिन्ता ही नहीं। डर पुलिस ही का है।

रमा—मैं सज़ा से बिल्कुल नहीं डरता। तुमसे कहा नहीं, एक दिन मुझे वाचनालय में जान-पहचान की एक स्त्री दिखायी दी। हमारे घर बहुत आती-जाती थी। मेरी स्त्री से बड़ी मित्रता थी। एक बड़े वकील की पत्नी हैं। उसे देखते ही मेरी नानी मर गयी। ऐसा सिटपिटा गया कि उसकी ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी। चुपके से उठकर पीछे के बरामदे में जा छिपा। अगर उस वक्त उससे दो-चार बातें कर लेता, तो घर का सारा समाचार मालूम हो जाता, और मुझे विश्वास है, कि वह इस मुलाक़ात की किसी से चर्चा भी न करती। मेरी पत्नी से भी न कहती; लेकिन मेरी हिम्मत न

पड़ी। अब अगर मिलना भी चाहूँ, तो नहीं मिल सकता। उसका पता-ठिकाना कुछ भी तो नहीं मालूम।

देवी०—तो फिर उसी को क्यों नहीं एक चिट्ठी लिखते।

रमा०—चिट्ठी तो मुझसे न लिखी जायेगी।

देवी०—तो कब तक चिट्ठी न लिखोगे?

रमा०—देखा चाहिये।

देवी०—पुलिस तुम्हारी टोह में होगी।

देवीदीन चिंता में डूब गया। रमा को भ्रम हुआ शायद पुलिस का भय इसे चिंतित कर रहा है। बोला—हाँ, इसकी शंका मुझे हमेशा बनी रहती है। तुम देखते हो, मैं दिन को बहुत कम घर से निकलता हूँ, लेकिन मैं तुम्हें अपने साथ नहीं घसीटना चाहता। मैं तो जाऊँगा ही, तुम्हें क्यों उलझन में डालूँ। सोचता हूँ, कहीं और चला जाऊँ; किसी ऐसे गाँव में जाकर रहूँ, जहाँ पुलिस की गन्ध भी न हो।

देवीदीन ने गर्व से सिर उठाकर कहा—मेरे बारे में तुम कुछ चिन्ता न करो भैया, यहाँ पुलिस से डरनेवाले नहीं हैं। किसी परदेशी को अपने घर ठहराना पाप नहीं। हमें क्या मालूम किसके पीछे पुलिस है? यह पुलिस का काम है, पुलिस जाने। मैं पुलिस का मुख़बिर नहीं, जासूस नहीं, गोइन्दा नहीं। तुम अपने को बचाये रहो, देखो भगवान् क्या करते हैं। हाँ, कहीं बुढ़िया से न कह देना, नहीं तो उसके पेट में पानी न पचेगा।

दोनों एक क्षण चुपचाप बैठे रहे। दोनों इस प्रसंग को इस समय बंद कर देना चाहते थे। सहसा देवीदीन ने कहा—क्यों भैया, कहो मैं तुम्हारे घर चला जाऊँ। किसी को कानोंकान ख़बर न होगी। मैं इधर-उधर से सारा ब्योरा पूछ आऊँगा। तुम्हारे पिता से मिलूँगा, तुम्हारी माता को समझाऊँगा, तुम्हारी घरवाली से बातचीत करूँगा। फिर जैसा उचित जान पड़े वैसा करना।

रमा ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर कहा—लेकिन कैसे पूछोगे दादा, लोग कहेंगे न कि तुम्हें इन बातों से क्या मतलब।

देवीदीन ने ठट्ठा मारकर कहा—भैया, इससे सहज तो कोई काम ही नहीं। एक जनेऊ गले में डाला और ब्राह्मण बन गये। फिर चाहे हाथ देखो,

चाहे कुण्डली बांचो, चाहे सगुन विचारो, सब कुछ कर सकते हो। बुढ़िया भिक्षा लेकर आयेगी। उसे देखते ही कहूँगा, माता तेरे को पुत्र के परदेश जाने का बड़ा कष्ट है, क्या तेरा कोई पुत्र विदेश गया है? इतना सुनते ही घर-भर के लोग आ जायेंगे। वह भी आयेगी। उसका हाथ देखूँगा। इन बातों में मैं पक्का हूँ भैया, तुम निश्चिन्त रहो। कुछ कमा लाऊँगा, देख लेना। माघ-मेला भी होगा। स्नान करता आऊँगा।

रमा की आँखें मनोल्लास से चमक उठीं। उसका मन मधुर-कल्पनाओं के संसार में जा पहुँचा। जालपा उसी वक्त रतन के पास दौड़ी जायगी। दोनों भाँति-भाँति के प्रश्न करेंगी—क्यों बाबा;, वह कहाँ गये हैं? अच्छी तरह हैं न? कब तक घर आयेंगे? कभी बाल-बच्चों की सुधि आती है उनको? वहां किसी कामिनी के माया-जाल में तो नहीं फँस गये? दोनों शहर का नाम भी पूछेंगी? कहीं दादा ने सरकारी रुपये चुका दिये हों, तो मजा आ जाय। तब एक ही चिन्ता रहेगी।

देवीदीन बोला—तो है न सलाह?

रमा०—कहाँ जाओगे दादा, कष्ट होगा।

'माघ का स्नान भी तो करूँगा। कष्ट के बिना कहीं पुन्न होता है! मैं तो कहता हूँ, तुम भी चलो। मैं वहाँ सब रंग-ढंग देख लूँगा। अगर देखना कि मामला टिचन है, तो चैन से घर चले जाना। कोई खटका मालूम हो तो मेरे साथ ही लौट आना।'

रमा ने हँसकर कहा—कहाँ की बात करते हो दादा? मैं यों कभी न जाऊँगा! स्टेशन पर उतरते ही कहीं पुलिस का सिपाही पकड़ ले तो बस!

देवीदीन ने गंभीर होकर कहा—सिपाही क्या पकड़ लेगा, दिल्लगी है। मुझसे कहो मैं प्रयागराज के थाने में ले जाकर खड़ा कर दूँ। अगर कोई तिरछी आँखों से भी देख ले तो मूँछ मुड़ा लूँ। ऐसी बात है भला, सैकड़ों खूनियों को जानता हूँ, जो यहीं कलकत्ते में रहते हैं! पुलिस के अफसरों के साथ दावतें खाते हैं, पुलिस उन्हें जानती है, फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती। रुपये में बड़ा बल है भैया!

रमा ने कुछ जवाब न दिया। उसके सामने यह नया प्रश्न आ खड़ा हुआ। जिन बातों को वह अनुभव न होने के कारण महा कष्ट-साध्य समझता था,

उन्हें इस बूढ़े ने निर्मूल कर दिया और बूढ़ा शेखीबाजों में नहीं है। वह मुँह से जो कहता है, उसे पूरा कर दिखाने का सामर्थ्य रखता है। उसने सोचा, तो क्या मैं सचमुच देवीदीन के साथ घर चला जाऊँ? यहाँ कुछ रुपये मिल जाते, तो नये सूट बनवा लेता, फिर शान से जाता। वह उस अवसर की कल्पना करने लगा, जब वह सूट पहने हुए घर पहुँचेगा। उसे देखते ही गोपी और विश्वम्भर दौड़ेंगे—भैया आये, भैया आये! दादा निकल आयेंगे। अम्मां को पहले विश्वास न आयेगा, मगर जब दादा जाकर कहेंगे—हां आ तो गये, तब वह रोती हुई, द्वार की ओर चलेंगी। उसी वक्त मैं पहुँचकर उनके पैरों पर गिर पड़ूँगा। जालपा वहां न आयेगी। वह मान किये बैठी रहेगी। रमा ने मन-ही-मन वह वाक्य भी सोच लिया, जो वह जालपा को मनाने के लिए कहेगा। शायद रुपये की चर्चा ही न आये! इस विषय पर कुछ कहते हुए सभी को संकोच होगा। अपने प्रिय-जनों से जब कोई अपराध हो जाता है तो हम उघाड़कर उसे दुःखी नहीं करते। चाहते हैं कि उस बात का उसे ध्यान ही न आये; उसके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, कि उसे हमारी ओर से ज़रा भी भ्रम न हो, वह भूल कर भी न समझे, कि मेरी अपकीर्ति हो रही है।

देवीदीन ने पूछा—क्या सोच रहे हो? चलोगे न?

रमा ने दबी जबान से कहा—तुम्हारी इतनी दया है, तो चलूंगा; मगर पहले तुम्हें मेरे घर जाकर पूरा-पूरा समाचार लाना पड़ेगा। अगर मेरा मन न भरा तो मैं लौट आऊँगा।

देवीदीन से दृढ़ता से कहा—मंजूर!

रमा ने संकोच से आँखें नीची करके कहा—एक बात और है।

देवी०—क्या बात है? कहो।

'मुझे कुछ कपड़े बनवाने पड़ेंगे।'

'बन जायँगे।'

'मैं घर पहुँचकर तुम्हारे रुपये दिला दूँगा।'

'और मैं तुम्हारी गुरु-दक्षिणा भी वहीं दे दूँगा।'

'गुरु-दक्षिणा भी मुझी को देनी पड़ेगी। मैंने चार हरफ़ अंगरेजी पढ़ा दिये, तो तुम्हारा इससे कोई उपकार न होगा। तुमने मुझे जो पाठ पढ़ाये

हैं, उन्हें मैं उम्र भर नहीं भूल सकता। मुँह पर बड़ाई करना खुशामद है; लेकिन दादा, माता-पिता के बाद जितना प्रेम मुझे तुमसे है उतना और किसी से नहीं। तुमने ऐसे गाढ़े समय मेरी बांह पकड़ी जब मैं बीच धार में बहा जा रहा था। ईश्वर ही जाने, अब तक मेरी क्या गति हुई होती. किस घाट लगा होता!'

देवीदीन ने चुहल से कहा—और जो कहीं तुम्हारे दादा ने मुझे घर में न घुसने दिया तो?

रमा ने हँसकर कहा—दादा तुम्हें अपना बड़ा भाई समझेंगे, तुम्हारी इतनी खातिर करेंगे, कि तुम ऊब जाओगे। जालपा तुम्हारे चरण धो-धो पियेगी, तुम्हारी इतनी सेवा करेगी कि जवान हो जाओगे।

देवीदीन ने हँसकर कहा—तब तो बुढ़िया डाह के मारे जल मरेगी। मानेगी नहीं, नहीं तो मेरा जी चाहता है कि हम दोनों अपना डेरा-डंडा लेकर चलते और वहीं अपनी सिरकी तानते। तुम लोगों के साथ ज़िन्दगी के बाक़ी दिन आराम से कट जाते। मगर इस चुड़ैल से कलकत्ता न छोड़ा जायगा। तो बात पक्की हो गयी न?

'हाँ, पक्की ही है।'

'दूकान खुले तो चलें, कपड़े लायें और आज ही सिलने को दे दें।'

देवीदीन के चले जाने के बाद रमा बड़ी देर तक आनन्द-कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। जिन भावनाओं को कभी उसने अपने मन में आश्रय न दिया था, जिनकी गहराई, विस्तार और उद्वेग से वह इतना भयभीत था कि उनमें फिसलकर डूब जाने के भय से चंचल मन को उधर भटकने भी न देता था, उसी अथाह और अछोर कल्पना-सागर में वह आज स्वच्छन्द रूप से क्रीड़ा करने लगा। उसे अब एक नौका मिल गयी थी। वह त्रिवेणी की सैर, वह अल्फ्रेड पार्क की बहार, वह खुसरो बाग़ का आनन्द, वह मित्रों के जलसे, सब याद आ-आकर हृदय को गुदगुदाने लगे। रमेश उसे देखते ही गले लिपट जायेगा। मित्रगण पूछेंगे, कहां गये थे यार? खूब सैर की? रतन उसकी खबर पाते ही दौड़ी आयेगी और पूछेगी—तुम कहां ठहरे थे बाबूजी, मैंने सारा कलकत्ता छान मारा। फिर जालपा की मान-प्रतिमा सामने आ खड़ी हुई।

सहसा देवीदीन ने आकर कहा—भैया, दस बज गये, चलो बाजार होते आयें।

रमा ने चौंककर पूछा—क्या दस बज गये ?

देवी०—दस नहीं, ग्यारह का अमल होगा।

रमा चलने को तैयार हुआ; लेकिन द्वार तक आकर रुक गया।

देवीदीन ने पूछा—क्यों, खड़े कैसे हो गये ?

'तुम्हीं चले जाओ; मैं जाकर क्या करूँगा !'

'क्या डर रहे हो ?'

'नहीं, डर नहीं रहा हूँ, मगर फायदा ?'

'मैं अकेले जाकर क्या करूँगा। मुझे क्या मालूम, तुम्हें कौन कपड़ा पसन्द है। चलकर अपनी पसन्द का ले लो। वहीं दरज़ी को दे देंगे।'

'तुम जैसा कपड़ा चाहे ले लेना। मुझे सब पसन्द है।'

'तुम्हें डर किस बात का ? पुलिस तुम्हारा कुछ नहीं करेगी। कोई तुम्हारी तरफ ताकेगा भी नहीं।'

'मैं डर नहीं रहा हूँ, दादा ! जाने की इच्छा नहीं है।'

'डर नहीं रहे तो क्या कर रहे हो। कह रहा हूँ, कि कोई तुम्हें कुछ न कहेगा, इसका मेरा जिम्मा; मुदा तुम्हारी जान निकली जाती है।'

देवीदीन ने बहुत समझाया, आश्वासन दिया; पर रमा जाने पर राज़ी न हुआ। वह डरने से कितना ही इनकार करे, पर उसकी हिम्मत घर से बाहर निकलने की न पड़ती थी। वह सोचता था, अगर किसी सिपाही ने पकड़ लिया, तो देवीदीन क्या कर लेगा। माना सिपाही से इसका परिचय भी हो, तो यह आवश्यक नहीं कि वह सरकारी मामले में मैत्री का निर्वाह करे। यह मिन्नत-खुशामद करके रह जायगा, आयेगी मेरे सिर। कहीं पकड़ जाऊँ, तो प्रयाग के बदले जेल जाना पड़े। आखिर देवीदीन लाचार होकर अकेला ही गया।

देवीदीन घण्टे-भर में लौटा, तो देखा, रमा छत पर टहल रहा है। बोला—कुछ ख़बर है, कै बज गये ? बारह का अमल है। आज रोटी न बनाओगे क्या ? घर जाने की खुशी में खाना-पीना छोड़ दोगे ?

रमा ने झेंपकर कहा—बना लूँगा दादा, जल्दी क्या है।

'यह देखो, नमूने लाया हूँ। इनमें जौन-सा पसन्द करो, ले लूँ।'

यह कहकर देवीदीन ने ऊनी और रेशमी कपड़ों के सैकड़ों नमूने निकाल कर रख दिये। पांच छः रुपये गज से कम का कोई न था।

रमा ने नमूनों को उलट-पलटकर देखा और बोला—इतने मँहगे कपड़े क्यों लये दादा? और सस्ते न थे?

'सस्ते थे, मुदा विलायती थे।'

'तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते?'

'इधर बीस साल से तो नहीं लिये, उधर की बात नहीं कहता। कुछ बेसी दाम लग जाता है, पर रुपया तो देश ही में रह जाता है'

रमा ने लजाते हुए कहा—तुम नियम के बड़े पक्के हो, दादा।

देवीदीन की मुद्रा सहसा तेजवान् हो गयी। उसकी बुझी हुई आँखें चमक उठीं। देह की नसें तन गयीं। अकड़कर बोला—जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न-जल खाते हैं, उसके लिए इतना भी न करें, तो जीने को धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी सुदेशी की भेंट कर चुका हूँ, भैया। ऐसे-ऐसे पट्ठे थे कि तुमसे क्या कहें! दोनों विदेशी कपड़े की दुकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कि कोई गाहक दूकान पर आ जाय। हाथ जोड़कर, विघियाकर धमकाकर, लजवाकर सबको फेर देते थे। बजाजे में सियार लोटने लगे। सबों ने जाकर कमिसनर से फ़रियाद की। सुनकर आग हो गया। बीस फौजी गोरे भेजे, कि अभी जाकर बाजार से पहरे उठा दो। गोरों ने दोनों भाइयों से कहा—यहां से चले जाव, मुदा वह अपनी जगह से जौ भर न हिले। भीड़ लग गयी। गोरे उन पर घोड़े चढ़ा लाते थे, पर दोनों चट्टान की तरह डटे खड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डण्डों से पीटना शुरू किया। दोनों वीर डंडे खाते थे, पर जगह से न हिलते थे। जब बड़ा भाई गिर पड़ा तो छोटा उसकी जगह पर आ खड़ा हुआ। अगर दोनों अपने डंडे सँभाल लेते, तो भैया, उन बीसों को मार भगाते, लेकिन हाथ उठाना तो बड़ी बात है, सिर तक न उठाया। अन्त में छोटा भी वहीं गिर पड़ा। दोनों को लोगों ने उठाकर अस्पताल भेजा। उसी रात को दोनों सिधार गये। तुम्हारे चरन छूकर कहता हूँ भैया, उस वक्त ऐसा जान पड़ता था, कि मेरी छाती गज-भर की हो गयी है, पांव जमीन पर न

पड़ते थे। यही उमंग आती थी कि भगवान् ने औरों को पहले न उठा लिया होता, तो इस समय उन्हें भी भेज देता। जब अर्थी चली है, तो एक लाख आदमी साथ थे। बेटों को गंगा में सौंपकर मैं सीधे बजाजे पहुँचा और उसी जगह खड़ा हुआ, जहां दोनों वीरों की लहास गिरी थी। गाहक के नाम चिड़िये का पूत तक न दिखायी दिया। आठ दिन वहां से हिला तक नहीं। बस, भोर के समय आध घंटे के लिए घर आता था और नहा-धोकर कुछ जलपान करके चला जाता था। नवें दिन दूकानदारों ने कसम खायी, कि विलायती कपड़े अब न मँगायेंगे। तब पहरे उठा लिये गये। तब से विदेशी दियासलाई तक घर में नहीं लाया।

रमा ने सच्चे हृदय से कहा—दादा, तुम सच्चे वीर हो, और वे दोनों लड़के भी सच्चे योद्धा थे। तुम्हारे दर्शन से आंखें पवित्र होती हैं।

देवीदीन ने इस भाव से देखा मानो इस बड़ाई को वह बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं समझता। शहीदों की शान से बोला—इन बड़े-बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। छोकरियों की भांति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देशभगतों को बिना विलायती सराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देशी चीज़ न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिये, घर का और सब सामान विलायती है। सब-के-सब भोग-विलास में अन्धे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे! पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूटकर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। इसीलिए तुम्हारा इस देश में जनम हुआ है। हां, रोये जाओ, और विलायती सराबें उड़ाये जाओ! विलायती मोटरें दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और अचार चखो, विलायती बरतनों में खाओ, विलायती दवाइयां पीयो, पर देश के नाम को रोये जाओ। मुदा इस रोने से कुछ न होगा। रोने से माँ दूध पिलाती है, शेर अपना शिकार नहीं छोड़ता। रोओ उसके सामने जिसमें दया और धरम हो। तुम धमकाकर ही क्या कर लोगे? जिस धमकी में कुछ दया नहीं है उस धमकी की परवाह कौन करता है? एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खड़े होकर खूब उछले-कूदे। जब वह नीचे

आये तब मैंने उनसे पूछा—साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन-सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है ? तुम भी बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंगरेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अँगरेजी ठाट बनाये घूमोगे। इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा ? तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बन्दों की जिन्दगी भले आराम और ठाट से गुजरे; पर देश का तो कोई भला न होगा ! बस, बगलें झांकने लगे। तुम दिन में पाँच बेर खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल; गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूसकर तो सरकार तुम्हें हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है ? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो तुम भोग-विलास पर इतना मरते हो, जब तुहारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगे।

रमा भद्र समाज पर यह आक्षेप न सुन सका। आखिर वह भी तो भद्र समाज का एक ही अंग था। बोला—यह तो नहीं है दादा, कि पढ़े-लिखे लोग किसानों का ध्यान नहीं करते। उनमें से कितने ही खुद किसान थे या हैं। उन्हें अगर विश्वास हो जाय कि हमारे कष्ट उठाने से किसानों का कोई उपकार होगा, और जो बचत होगी वह किसानों के लिए खर्च की जायगी, तो वह खुशी से कम वेतन पर काम करेंगे; लेकिन जब वह देखते हैं कि बचत दूसरे हड़प जाते हैं, तो वह सोचते हैं, अगर दूसरों को ही खाना है, तो हम क्यों न खायें।

देवी०—तो सुराज मिलने पर दस-दस पांच-पांच हज़ार के अफसर नहीं रहेंगे ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी ? पुलिस की लूट बन्द हो जायगी ?

एक क्षण के लिए रमा सिटपिटा गया। इस विषय में उसने खुद कभी विचार न किया था; मगर तुरन्त ही उसे जवाब सूझ गया। बोला—दादा, तब तो सभी काम बहुमत से होगा। अगर बहुमत कहेगा कि कर्मचारियों के वेतन घटा दिये जांय, तो घट जायँगे। देहातों के संगठन के लिए भी बहुमत जितने रुपये मांगेगा, मिल जायँगे। कुंजी बहुमत के हाथों में रहेगी। और अभी दस-पांच बरस चाहे न हो, लेकिन आगे चलकर बहुमत किसानों और मजूरों का ही हो जायगा।

देवीदीन ने मुसकराकर कहा—भैया, तुम भी इन बातों को समझते

हो । यही मैंने भी सोचा था । भगवान करें, अभी कुछ दिन और जीऊँ । मेरा पहला सवाल यह होगा कि विलायती चीजों पर दुगुना महसूल लगाया जाय और मोटरों पर चौगुना । अच्छा, अब भोजन बनाओ । सांझ को चलकर कपड़े दरजी को दे देंगे । मैं भी जब तक खा लूँ ।

शाम को देवीदीन ने आकर कहा—चलो भैया, अब तो अँधेरा हो गया ।

रमा सिर पर हाथ धरे बैठा हुआ था; मुख पर उदासी छायी हुई थी । बोला—दादा, मैं घर न जाऊँगा ।

देवीदीन ने चकित होकर पूछा—क्यों क्या बात हुई ?

रमा की आंखें सजल हो गयीं । बोला—कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ दादा ! मुझे तो डूब मरना चाहिए था ।

यह कहते-कहते वह खुलकर रो पड़ा । वह वेदना जो अब तक मूर्छित पड़ी थी, शीतल जल के यह छींटे पाकर सचेत हो गयी; और उसके क्रन्दन ने रमा के सारे अस्तित्व को जैसे छेद डाला । इसी क्रन्दन के भय से वह उसे छेड़ता न था, उसे सचेत करने की चेष्टा न करता था, संयत विस्मृति से उसे अचेत ही रखना चाहता था; मानो कोई दु:खिनी माता अपने बालक को इसलिए जगाते डरती हो कि तुरन्त खाने को मांगने लगेगा ।

२७

कई दिनों के बाद एक दिन कोई ८ बजे रमा पुस्तकालय से लौट रहा था कि मार्ग में उसे कई युवक शतरंज के किसी नक्शे की बातचीत करते मिले । यह नक्शा वहाँ के एक हिन्दी दैनिक पत्र में छपा था और उसे हल करनेवाले को पचास रुपये इनाम देने का वचन दिया गया था । नक्शा असाध्य-सा जान पड़ता था । कम-से-कम इन युवकों की बातचीत से ऐसा ही टपकता था । यह भी मालूम हुआ कि वहां के और भी कितने शतरंजबाजों ने उसे हल करने के लिए भरपूर ज़ोर लगाया पर कुछ पेश न पाया । अब रमा को याद आया कि पुस्तकालय में एक पत्र पर बहुत-से आदमी झुके हुए थे और उस नक़शे की नक़ल कर रहे थे । जो आता था, दो-चार मिनट तक वह पत्र देख लेता था । अब मालूम हुआ, यह बात थी ।

रमा का इनमें से किसी से भी परिचय न था; पर वह नकशा देखने के

लिए इतना उत्सुक हो रहा था कि उससे बिना पूछे न रहा गया। बोला—आप लोगों में से किसी के पास वह नक़शा है ?

युवकों ने एक कम्बलपोश आदमी को नकशे की बात पूछते सुना तो समझे, कोई अताई होगा। एक ने रुखाई से कहा—हाँ, है तो; मगर तुम देखकर क्या करोगे, यहां अच्छे-अच्छे गोते खा रहे हैं। एक महाशय, जो शतरंज में अपना सानी नहीं रखते, उसे हल करने के लिए सौ रुपये अपने पास से देने को तैयार है।

दूसरा युवक बोला—दिखा क्यों नहीं देते जो ? कौन जाने यही बेचारे हल कर लें, शायद इन्हीं की सूझ लड़ जाय।

इस प्रेरणा में सज्जनता नहीं, व्यंग्य था। उसमें यह भाव छिपा था, कि हमें दिखाने में कोई उज्र नहीं है, देखकर अपनी आंखों को तृप्त कर लो; मगर तुम जैसे उल्लू उसे समझ ही नहीं सकते, हल क्या करेंगे !

जान पहचान की एक दूकान में जाकर उन्होंने रमा को नकशा दिखाया। रमा को तुरन्त याद आ गया, यह नक़शा पहले भी कहीं देखा है। सोचने लगा, कहां देखा है।

एक युवक ने चुटकी ली—आपने तो हल कर लिया होगा ?

दूसरा—अभी नहीं किया तो एक क्षण में किये लेते हैं !

तीसरा—ज़रा दो-एक चाल बताइए तो ?

रमा ने उत्तेजित होकर कहा—यह मैं नहीं कहता कि मैं इसे हल कर ही लूँगा; मगर ऐसा नक़शा मैंने एक बार हल किया है और संभव है इसे भी हल कर लूँ। जरा काग़ज़-पेंसिल दीजिए तो नकल कर लूँ।

युवकों का अविश्वास कुछ कम हुआ। रमा को कागज़-पेंसिल मिल गया। एक क्षण में उसने नक़शा नकल कर लिया और युवकों को धन्यवाद देकर चला। एकाएक उसने फिर पूछा—'प्रजा मित्र' के सम्पादक के पास ?

रमा ने घर पहुँचकर उस नक़शे पर दिमाग लगाना शुरू किया; लेकिन मुहरों की चालें सोचने को जगह वह यही सोच रहा था कि यह नक़शा कहां देखा। शायद यह याद आते ही उसे नक़शे का हल भी सूझ जायगा ! अन्य प्राणियों की तरह मस्तिष्क भी कार्य में तत्पर न होकर बहाने खोजता है। कोई आधार मिल जाने से वह मानो छुट्टी पा जाता है। रमा आधी रात तक

नकशा सामने खोले बैठा रहा। शतरंज की बड़ी-बड़ी मार्के की बाजियाँ खेली थीं, उन सबका नक़शा उसे याद था। पर यह नक़शा कहाँ देखा?

सहसा उसकी आँखों के सामने बिजली-सी कौंध गयी। खोयी हुई स्मृति मिल गयी। अहा! राजा साहब ने यह नक़शा दिया था। हाँ, ठीक है। लगातार तीन दिन दिमाग लड़ाने के बाद इसे उसने हल किया था। नक़शे की नक़ल भी कर लाया था। फिर तो उसे एक-एक चाल याद आ गयी। एक क्षण में नक़शा हल हो गया। उसने उल्लास के नशे में जमीन पर दो-तीन कुलाचें लगायीं। मूछों पर ताव दिया, आईने में मुँह देखा, और चारपाई पर लेट गया। इस तरह अगर महीने में एक नक़शा मिलता जाय, तो क्या पूछना?

देवीदीन अभी आग सुलगा रहा था कि रमा प्रसन्न मुख आकर बोला—दादा, जानते हो 'प्रजा-मित्र, अखबार का दफ्तर कहाँ है?

देवी०—जानता क्यों नहीं हूँ। यहाँ कौन अखबार है, जिसका पता मुझे न मालूम हो? 'प्रजा-मित्र' का संपादक एक रंगीला युवक है, जो हरदम मुँह में पान भरे रहता है। मिलने जाओ, तो आँखों से बातें करता है, मगर है हिम्मत का धनी। दो बेर जेहल हो आया है।

रमा०—आज ज़रा वहाँ तक जाओगे?

देवीदीन ने कातर भाव से कहा—मुझे भेजकर क्या करोगे? मैं न जा सकूँगा।

'क्या बहुत दूर है?'

'नहीं, दूर नहीं है।'

'फिर क्या बात है?'

देवीदीन ने अपराधियों के भाव के कहा—बात कुछ नहीं है, बुढ़िया बिगड़ती है। उसे वचन दे चुका हूँ, कि सुदेशी-विदेशी के झगड़े में न पड़ूँगा, न किसी अख़बार के दफ्तर में जाऊँगा। उसका दिया खाता हूँ, तो उसका हुकुम भी तो बजाना पड़ेगा।

रमा ने मुसकराकर कहा—दादा, तुम तो दिल्लगी करते हो। मेरा एक बड़ा जरूरी काम है। उसने शतरंज का एक नक़शा छापा था, जिस पर पचास रुपया इनाम है। मैंने वह नकशा हल कर दिया है। आज छप जाय, तो

मुझे यह इनाम मिल जाय। अखबार के दफ्तर में अक्सर खुफिया पुलिस के आदमी आते-जाते हैं। यही भय है। नहीं तो मैं खुद चला जाता। लेकिन तुम नहीं जा रहे हो तो लाचारीवश मुझे ही जाना पड़ेगा। बड़ी मेहनत से यह नक्शा हल किया है। सारी रात जागता रहा हूँ।

देवीदीन ने चिन्तित स्वर में कहा—तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं।

रमा ने हैरान होकर पूछा—तो फिर? क्या डाक से भेज दूँ?

देवीदीन ने एक क्षण सोचकर कहा—नहीं, डाक से क्या भेजोगे। सादा लिफ़ाफ़ा इधर-उधर हो जाय तो तुम्हारी मेहनत अकारथ जाय। रजिस्ट्री कराओ तो कहीं परसों पहुँचेगा, कल इतवार है। किसी और ने जवाब भेज दिया, तो इनाम वह ले जायगा। यह भी तो हो सकता है कि अखबारवाले धांधली कर बैठें और तुम्हारा जवाब अपने नाम से छापकर रुपया हजम कर लें।

रमा ने दुविधे में पड़कर कहा—मैं ही चला जाऊँगा।

'तुम्हें मैं जाने न दूँगा। कहीं फँस जाओ तो बस!'

'फँसना तो एक दिन है ही! कब तक छिपा रहूँगा?'

'तो मरने के पहले ही क्यों रोना-पीटना हो? जब फँसोगे, तब देखी जायगी। लाओ मैं चला जाऊँ। बुढ़िया से कोई बहाना कर दूँगा। अभी भेंट भी हो जायगी। दफ्तर ही में रहते भी हैं। फिर घूमने-घामने चल देंगे, दस बजे से पहले न लौटेंगे।'

रमा ने डरते-डरते कहा—तो दस बजे के बाद जाना, क्या हरज है?

देवीदीन ने खड़े होकर कहा—तब तक कोई दूसरा काम आ गया, तो आज रह जायगा। घण्टे-भर में लौट आता हूँ। अभी बुढ़िया देर में आयेगी।

यह कहते हुए देवीदीन ने अपना कम्बल ओढ़ा, रमा से लिफ़ाफ़ा लिया और चल दिया।

जग्गो साग-भाजी और फल लेने मण्डी गयी हुई थी। आध-घण्टे में सिर पर एक टोकरी रखे और एक बड़ा-सा टोकरा मजूर के सिर पर रखवाये आयी। पसीने से तर थी। आते ही बोली—कहाँ गये? जरा बोझ तो उतारो, गर्दन टूट गयी।

रमा ने आगे बढ़कर टोकरी उतरवा ली। इतनी भारी थी कि सँभाले न सँभलती थी।

जग्गो ने पूछा—वह कहाँ गये हैं ?

रमा ने बहाना किया—मुझे तो नहीं मालूम, अभी इस तरफ चले गये हैं।

बुढ़िया ने मजूर के सिर का टोकरा उतरवाया और ज़मीन पर बैठकर एक टूटी-सी पंखिया झलती हुई बोली—चरस की चाट लगी होगी और क्या! मैं मर-मर कमाऊँ और यह बैठे-बैठे मौज उड़ायें और चरस पीयें।

रमा जानता था, देवीदीन चरस पीता है; पर बुढ़िया को शान्त करने के लिए बोला—क्या चरस पीते हैं ? मैंने तो नहीं देखा।

बुढ़िया ने पीठ की सारी हटाकर, उसे पंखे की डंडी के खुजलाते हुए कहा—इनसे कौन नशा छूटा है, चरस यह पियें, गांजा यह पियें, शराब इन्हें चाहिए, भांग इन्हें चाहिए। हां, अभी तक अफ़ीम नहीं खायी, या राम जाने खाते हों, मैं कौन हरदम देखती रहती हूँ। मैं तो सोचती हूँ कौन जाने आगे क्या हो, हाथ में चार पैसे होंगे, तो पराये भी अपने हो जायँगे, पर इस भले आदमी को रत्ती-भर चिन्ता नहीं सताती। कभी तीरथ है, कभी कुछ, कभी कुछ; मेरा तो (नाक पर उँगली रखकर) नाक में दम आ गया। भगवान उठा ले जाते तो यह कुसंग तो छूट जाता। तब याद करेंगे लाला। तब जग्गो कहां मिलेगी जो कमा-कमाकर गुलछर्रे उड़ाने को दिया करेगी। रकत के आँसू न रोयें, तो कह देना कोई कहता था। (मजुर से) कै पैसे हुए तेरे ?

मजूर ने बीड़ी जलाते हुए कहा—बोझ देख लो माई, गर्दन टूट गयी!

जग्गो ने निर्दय भाव से कहा—हाँ, हां, गर्दन टूट गयी! बड़ा सुकुमार है न! यह ले, कल फिर चले आना।

मजूर ने कहा—यह तो बहुत कम है। मेरा पेट न भरेगा। जग्गो ने दो पैसे और थोड़े आलू देकर उसे विदा किया और दूकान सजाने लगी। सहसा उसे हिसाब की याद आ गयी। रमा से बोली—भैया, जरा आज का खरचा तो टांक दो। बाजार में जैसे आग लग गयी है।

बुढ़िया छबड़ियों में चीजें लगा-लगाकर रखती जाती थी और हिसाब

भी लिखती जाती थी। आलू, टमाटर, कद्दू, केले, पालक, सेम, सन्तरे, गोभी, सब चीजों का तौल और दर उसे याद था। रमा से दोबारा पढ़वाकर उसने सुना, तब उसे सन्तोष हुआ। इन सब कामों से छुट्टी पाकर उसने अपनी चिलम भरी और मोढ़े पर बैठकर पीने लगी, लेकिन उसके अन्दाज से मालूम होता था कि वह तम्बाकू का रस लेने के लिए नहीं, दिल को जलाने के लिए पी रही है। एक क्षण के बाद बोली—दूसरी औरत होती तो घड़ी भर इनके साथ निवाह न होता। पहर रात से चक्की में जुत जाती हूँ और दस बजे रात तक दूकान पर बैठी सती होती रहती हूँ। खाते-पीते बारह बजते हैं। तब जाकर चार पैसे दिखायी देते हैं। और जो कुछ कमाती हूँ, यह नशे में बरबाद कर देता है। सात कोठरी में छिपा के रखूँ, पर इसकी निगाह पहुँच जाती है। निकाल लेता है। कभी एक-आध चीज-वस्तु बनवा लेती हूँ तो वह आँखों मे गड़ने लगती है! तानों से छेदने लगता है। भाग में लड़कों का सुख भोगना नहीं बदा था, तो क्या करूँ? छाती फाड़के मर जाऊँ? मांगे से मौत भी तो नहीं मिलती। सुख भोगना लिखा होता, तो जवान बेटे चल देते, और इस पियक्कड़ के हाथों मेरी यह सांसत होती? इसी ने सुदेसी के झगड़े में पड़कर मेरे लालों की जान ली। आओ इस कोठरी में भैया, तुम्हें सुन्दर की जोड़ी दिखाऊँ। दोनों इस जोड़ी से पांच-पांच सौ हाथ फेरते थे।

अँधेरी कोठरी में जाकर रमा ने सुन्दर की जोड़ी देखी। उस पर वार्निश थी साफ-सुथरी, मानो किसी ने फेरकर रख दिया हो।

बुढ़िया ने सगर्व नेत्रों से देखकर कहा—लोग कहते थे कि यह जोड़ी महाब्राह्मन को दे दो, तुझे देख-देख कलक होगा। मैंने कहा—यह जोड़ी मेरे लालों की जुगल जोड़ी है। यही मेरे दोनों लाल हैं।

बुढ़िया के प्रति आज रमा के हृदय में असीम श्रद्धा जागृत हुई। कितना पावन धैर्य है, कितनी विशाल वत्सलता, जिसने लकड़ी के इन दो टुकड़ों को जीवन प्रदान कर दिया है! रमा ने जग्गो को माया और लोभ में डूबी हुई, पैसे पर जान देनेवाली, कोमल भावों से सर्वथा विहीन समझ रखा था। आज उसे विदित हुआ कि उसका हृदय कितना स्नेहमय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है। बुढ़िया ने उसके मुँह की ओर देखा तो न जाने क्यों

उसका मातृ-हृदय उसे गले लगाने के लिए अधीर हो उठा। दोनों के हृदय प्रेम के सूत्र में बँध गये। एक ओर पुत्र-स्नेह था, दूसरी ओर मातृ-भक्ति। वह मालिन्य जो अब तक गुप्त भाव से दोनों को पृथक् किये था, आज एकाएक दूर हो गया।

बुढ़िया ने कहा—मुँह-हाथ धो लिया है न बेटा! बड़े मीठे सन्तरे लायी हूँ, एक लेकर चखो तो।

रमा ने सन्तरा खाते हुए कहा—आज से मैं तुम्हें अम्मा कहा करूँगा।

बुढ़िया के शुष्क, ज्योतिहीन, ठंडे; कृपण नेत्रों से मोती के-से दो विन्दु निकल पड़े।

इतने में देवीदीन दबे पाँव आकर खड़ा हो गया। बुढ़िया ने तड़पकर पूछा—यह इतने सबेरे किधर सवारी गयी थी सरकार की?

देवी ने सरलता से मुसकराकर कहा—कहीं नहीं, जरा एक काम से चला गया था।

'क्या काम था, जरा मैं भी सुनूँ, या मेरे सुनने लायक नहीं है?'

'पेट में दरद था, जरा बैदजी के पास चूरन लेने गया था।'

'झूठे हो तुम, उडो उससे जो तुम्हें जानता न हो। चरस की टोह में गये थे तुम?'

'नहीं, तेरे चरन छूकर कहता हूँ, यह झूठ-मूठ मुझे बदनाम करती है।'

'तो फिर कहाँ गये थे तुम?'

'बता तो दिया। रात खाना दो कौर ज्यादा खा गया था, सो पेट फूल गया, और मीठा-मीठा....'

'झूठ है, बिल्कुल झूठ! तुम चाहे झूठ बोलो, तुम्हारा मुँह साफ कहे देता है, यह बहाना है। चरस, गाँजा इसी टोह में गये थे तुम। एक न मानूँगी। तुम्हें इस बुढ़ापे में नसे को सूझती है, यहाँ मेरा मरन हुआ जाता है। सबेरे के गये-गये नौ बजे लौटे हैं, जानो यहाँ कोई उनकी लौंडी है!'

देवीदीन ने एक झाड़ू लेकर दूकान में झाड़ू लगाना शुरू किया, पर बुढ़िया ने उसके हाथ से झाड़ू छीन लिया और पूछा—तुम अब तक थे कहाँ? जब तक यह न बताओगे, भीतर घुसने न दूँगी।

देवीदीन ने सिटपिटाकर कहा—क्या करोगी पूछकर, एक अख़बार के दफ्तर में तो गया था। जो चाहे कर ले।

बुढ़िया ने माथा ठोंककर कहा—तुमने फिर वही लत पकड़ी ? तुमने कान पकड़ा था कि अब कभी अख़बारों के नगीच न जाऊँगा। बोलो, यही मुँह था कि कोई और ?

'तू बात तो समझती नहीं, बस बिगड़ने लगती है।'

'खूब समझती हूँ। अख़बार वाले दंगा मचाते हैं और गरीबों को जेहल ले जाते हैं। आज बीस साल से देख रही हूँ। वहाँ जो आता-जाता है, पकड़ लिया जाता है। तलासी तो आये-दिन हुआ करती है। क्या बुढ़ापे में जेहल की रोटियाँ तोड़ोगे ?'

देवीदीन ने एक लिफ़ाफ़ा रमानाथ को देकर कहा यह रुपये हैं, भैया, गिन लो। देख, यह रुपये वसूल करने गया था। जी न मानता हो, तो, आधे ले लो। बुढ़िया ने आँख फाड़कर कहा—अच्छा! तो तुम अपने साथ इस बेचारे को भी डुबाना चाहते हो ? तुम्हारे रुपये में आग लगा दूँगी। तुम रुपये मत लेना भैया। जान से हाथ धोओगे। अब सेतमेत आदमी नहीं मिलते, तो लालच दिखाकर लोगों को फँसाते हैं। बाज़ार में पहरा दिलवावेंगे, अदालत में गवाही करावेंगे। फेंक दो उसके रुपये। जितने रुपये चाहो, मुझसे ले जाओ।

जब रमानाथ ने सारा वृत्तान्त कहा तो बुढ़िया का चित्त शांत हुआ। तनी हुई भवें ढीली पड़ गयीं, कठोर मुद्रा नर्म हो गयी। मेघ-पट को हटाकर नीला आकाश हँस पड़ा। विनोद करके बोली—इसमें से मेरे लिए क्या लाओगे बेटा ?

रमा ने लिफ़ाफ़ा उसके सामने रखकर कहा—तुम्हारे तो सभी हैं अम्मा, मैं रुपये लेकर क्या करूँगा ?

'घर क्यों नहीं भेज देते ? इतने दिन आये हो गये, कुछ भेजा नहीं।'

'मेरा घर यही है, अम्मा। कोई दूसरा घर नहीं है।'

बुढ़िया का वंचित हृदय गद्गद् हो उठा। इस मातृ-भक्ति के लिए कितने दिनों से उसकी आत्मा तड़प रही थी। इस कृपण हृदय में जितना प्रेम संचित हो रहा था, वह सब माता के स्तन में एकत्र होने वाले दूध की भाँति निकलने के लिए आतुर हो गया।

उसने नोटों को गिनकर कहा—पचास हैं बेटा ! पचास मुझसे और ले लो। चाय का पतीला रखा हुआ है। चाय की दूकान खोल दो। यहीं एक तरफ़ पाँच-चार मोढ़े और एक मेज रख लेना। दो-दो घंटे साँझ-सवेरे बैठ जाओगे तो गुजर भर को मिल जायगा। हमारे जितने गाहक आवेंगे, उनमें से कितने ही चाय भी लेंगे।

देवीदीन बोला—तब चरस के पैसे मैं इस दूकान से लिया करूँगा।

बुढ़िया ने विहँसित और पुलकित नेत्रों से देखकर कहा—कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लूँगी। इस फेर में न रहना।

रमा अपने कमरे में गया, तो उसका मन बहुत प्रसन्न था। आज उसे कुछ वह आनन्द मिल रहा था, जो अपने घर भी कभी न मिला था। घर पर जो स्नेह मिलता था, वह उसे मिलना ही चाहिए था। यहाँ जो स्नेह मिला, वह मानो आकाश से टपका था।

उसने स्नान किया, माथे पर तिलक लगाया और पूजा का स्वाँग भरने बैठा कि बुढ़िया आकर बोली—बेटा, तुम्हें रसोई बनाने में बड़ी तकलीफ़ होती है, मैंने एक ब्राह्मनी ठीक कर दी है। बेचारी ग़रीब है। तुम्हारा भोजन बना दिया करेगी। उसके हाथ का तुम खा लोगे। धरम-करम से रहती है बेटा, ऐसी बात नहीं है। मुझसे रुपये-पैसे उधार ले जाती है, इसी से राजी हो गयी है।

उन वृद्ध आँखों से प्रगाढ़, अखण्ड मातृत्व झलक रहा था—कितना विशुद्ध कितना पवित्र ! ऊँच-नीच और जाति की मर्यादा का विचार आप-ही-आप मिट गया। बोला—जब तुम मेरी माता हो गयीं, तो फिर काहे का छूत-विचार ? मैं तुम्हारे हाथ का खाऊँगा।

बुढ़िया ने जीभ दाँतों से दबाकर कहा—अरे नहीं बेटा, मैं तुम्हारा धरम न लूँगी। कहाँ तुम ब्राह्मन और कहाँ हम खटिक ! ऐसा कहीं हुआ है ?

'मैं तो तुम्हारी रसोई में खाऊँगा। जब माँ-बाप खटिक हैं, तो बेटा भी खटिक है। जिसकी आत्मा बड़ी हो, वही ब्राह्मण है।'

'और जो तुम्हारे घरवाले सुनें तो क्या कहें !'

'मुझे किसी के कहने-सुनने की चिन्ता नहीं है, अम्मा। आदमी पाप से

नीच होता है, खाने-पीने से नीच नहीं होता। प्रेम से जो भोजन मिलता है, वह पवित्र होता है। उसे तो देवता, भी खाते हैं।'

बुढ़िया के हृदय में भी जाति-गौरव का भाव उदय हुआ। बोली—बेटा, खटिक कोई नीच जात नहीं हैं। हम लोग ब्राह्मन के हाथ का भी नहीं खाते। कहार का पानी तक नहीं पीते। मास-मछरी हाथ से नहीं छूते। कोई कोई शराब पीते हैं, मुदा लुक-छिपकर। इसने किसी को नहीं छोड़ा बेटा। बड़े-बड़े तिलकधारी गटागट पीते हैं। लेकिन मेरी रोटियाँ अच्छी लगेंगी ?

रमा ने मुसकराकर कहा—प्रेम की रोटियों में अमृत रहता है अम्मा, चाहे गेहूँ की हों या बाजरे की।

बुढ़िया यहाँ से चली तो मानों अंचल में आनन्द की निधि भरे हो।

२८

जब से रमा चला गया, रतन को जालपा के विषय में बड़ी चिन्ता हो गयी थी। वह किसी बहाने से उसकी मदद करते रहना चाहती थी। इसके साथ ही यह भी चाहती थी कि जालपा किसी तरह ताड़ने न पाये। अगर कुछ रुपया खर्च करके भी रमा का पता चल सकता, तो वह सहर्ष खर्च कर देती। जालपा की रोती हुई आँखें देखकर उसका दिल मसोस उठता था। वह उसे प्रसन्न मुख देखना चाहती थी। अपने अँधेरे, रोने घर से ऊबकर वह जालपा के घर चली जाया करतीं। वहाँ घड़ी भर हँस-बोल लेने से उसका चित्त प्रसन्न हो जाता था। अब वहाँ भी वही नहूसत छा गयी। यहाँ आकर उसे अनुभव होता था कि मैं भी संसार में हूँ—उस संसार में जहाँ जीवन है, लालसा है, प्रेम है, विनोद है। उसका अपना जीवन तो व्रत की वेदी पर अर्पित हो गया था। वह तन-मन से उस व्रत का पालन करती थी; पर शिव-लिंग के ऊपर रखे हुए घट में क्या वह प्रवाह है, तरंग है, नाद है जो सरिता में है ? वह शिव के मस्तक को शीतल करता रहे, यही उसका काम है; लेकिन क्या उसमें सरिता के प्रवाह और तरंग और नाद का लोप हो गया है ?

इसमें सन्देह नहीं कि नगर के प्रतिष्ठित और सम्पन्न घरों से रतन का परिचय था; लेकिन जहाँ प्रतिष्ठा थी, वहाँ तकल्लुफ था, दिखावा था, ईर्ष्या थी, निन्दा थी। क्लब के संसर्ग से भी उसे अरुचि हो गयी थी। वहाँ विनोद अवश्य था, क्रीड़ा अवश्य थी, किन्तु पुरुषों के आतुर नेत्र भी थे, विकल हृदय,

उन्मत्त शब्द भी। जालपा के घर अगर वह शान न थी, वह दौलत न थी, तो वह दिखावा भी न था, वह ईर्ष्या भी न थी। रमा जवान था, रूपवान था, चाहे रसिक भी हो; पर रतन को अभी तक उसके विषय में सन्देह करने का कोई अवसर न मिला था, और जालपा जैसी सुन्दरी के रहते हुए उसकी सम्भावना भी न थी। जीवन के बाजार में और सभी दुकानदारों की कुटिलता और ज़टटूपन से तंग आकर उसने इस छोटी दूकान का आश्रय लिया था, किन्तु यह दूकान भी टूट गयी। अब वह जीवन की सामग्रियाँ कहाँ बेसाहेगी, सच्चा माल कहाँ पायेगी?

एक दिन वह ग्रामोफोन लायी और शाम तक बजाती रही। दूसरे दिन ताजे मेवों की एक टोकरी लाकर रख गयी। जब आती कोई न कोई सौग़ात लिये आती। अब तक रामेश्वरी से बहुत कम मिलती थी, पर अब बहुधा उसके पास आ बैठती और इधर-उधर की बातें करती। कभी-कभी उसके सिर में तेल डालती और बाल गूँथती। गोपी और विश्वम्भर से भी अब उसे स्नेह हो गया। कभी-कभी दोनों को मोटर पर घुमाने ले जाती। स्कूल से आते ही दोनों उसके बँगले पर पहुँच जाते और कई लड़कों के साथ वहाँ खेलते। उनके रोने चिल्लाने और झगड़ने में रतन को हार्दिक आनन्द प्राप्त होता था। वकील साहब को भी अब रमा के घरवालों से कुछ आत्मीयता हो गयी थी। बार-बार कहते—रमा बाबू का कोई ख़त आया? कुछ पता लगा? उन लोगों को कोई तकलीफ़ तो नहीं है?

एक दिन रतन आयी, तो चेहरा उतरा हुआ था, आँखें भारी हो रही थीं। जालपा ने पूछा—आज जी अच्छा नहीं है क्या?

रतन ने कुण्ठित स्वर में कहा—जी तो अच्छा है; पर रात-भर जागना पड़ा। रात से उन्हें बड़ा कष्ट है। जाड़ों में उनको दमे का दौरा हो जाता है। बेचारे जाड़ों भर एमलशन और सनाटोजन और न जाने कौन से रस खाते रहते हैं; पर यह रोग गला नहीं छोड़ता। कलकत्ते में एक नामी वैद्य हैं। अबकी उन्हीं से इलाज कराने का इरादा है। कल चली जाऊँगी। मुझे ले तो नहीं जाना चाहते, कहते हैं, वहाँ बहुत कष्ट होगा, लेकिन मेरा जी नहीं मानता। कोई बोलनेवाला तो होना चाहिए। वहाँ दो बार हो आयी हूँ और जब-जब गयी हूँ बीमार हो गयी हूँ। मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता; लेकिन

अपने आराम को देखूँ या उनकी बीमारी को देखूँ। बहन, कभी-कभी ऐसा जी ऊब जाता है कि थोड़ी-सी संखिया खाकर सो रहूँ। विधाता से इतना भी नहीं देखा जाता। अगर कोई मेरा सर्वस्व लेकर भी इन्हें अच्छा कर दे कि इस बीमारी की जड़ टूट जावे, तो मैं खुशी से दे दूँगी।

जालपा ने सशंक होकर कहा—यहाँ किसी वैद्य को नहीं बुलाया ?

'यहाँ के वैद्यों को देख चुकी हूँ, बहन। वैद्य-डाक्टर सबको देख चुकी !'

'तो कब तक आओगी ?'

'कुछ ठीक नहीं। उनकी बीमारी पर है ! एक सप्ताह में आ जाऊँ, महीने दो महीने लग जायँ, क्या ठीक है। मगर जब तक बीमारी की जड़ न टूट जायगी न आऊँगी।'

विधि अन्तरिक्ष में बैठी हँस रही थी ! जालपा मन में मुसकायी। जिस बीमारी की जड़ जवानी में न टूटी, बुढ़ापे में क्या टूटेगी। लेकिन इस सदिच्छा से सहानुभूति न रखना असम्भव था। बोली—ईश्वर चाहेंगे, तो वह वहाँ से जल्द अच्छे होकर लौटेंगे, बहन।

'तुम भी चलतीं तो बड़ा आनन्द आता।'

जालपा ने करुण भाव से कहा—क्या चलूँ बहन, जाने भी पाऊँ। यहाँ दिन भर यह आशा लगी रहती है कि कोई खबर मिलेगी। वहाँ मेरा जी और घबराया करेगा।

'मेरा दिल कहता है कि बाबू जी कलकत्ते में हैं।'

'तो जरा इधर-उधर खोजना। अगर कहीं पता मिले तो मुझे तुरंत खबर देना।'

'यह तुम्हारे कहने की बात नहीं है, जालपा !'

'यह मुझे मालूम है, खत तो बराबर भेजती रहोगी ?'

'हाँ अवश्य, रोज़ नहीं तो अँतरे दिन जरूर लिखा करूँगी। मगर तुम भी जवाब देना।'

जालपा पान बनाने लगी। रतन उसके मुँह की ओर अपेक्षा के भाव से ताकती रही, मानो कुछ कहना चाहती है और संकोचवश नहीं कह सकती। जालपा ने पान देते समय उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या है बहन, क्या कह रही हो ?

रतन—कुछ नहीं, मेरे पास कुछ रुपये हैं, तुम रख लो। मेरे पास रहेंगे तो ख़र्च हो जायँगे।

जालपा ने मुसकराकर आपत्ति की—और जो मुझसे खर्च हो जायँ तो?

रतन ने प्रफुल्ल मन से कहा—तुम्हारे ही तो हैं बहन, किसी ग़ैर के तो हैं नहीं!

जालपा विचारों में डूबी हुई ज़मीन की तरफ ताकती रही। कुछ जवाब न दिया। रतन ने शिकवे के अन्दाज़ से कहा—तुमने कुछ जवाब नहीं दिया बहन। मेरी समझ में नहीं आता, तुम मुझसे खिंची क्यों रहती हो। मैं चाहती हूँ, हममें और तुममें ज़रा भी अन्तर न रहे, लेकिन तुम मुझसे दूर भागती हो! अगर मान लो मेरे सौ-पचास रुपये तुम्हीं से ख़र्च हो गये, तो क्या हुआ? बहनों में ऐसा कौड़ी-कौड़ी का हिसाब नहीं होता!

जालपा ने गम्भीर होकर कहा—कुछ कहूँ, बुरा तो न मानोगी?

'बुरा मानने की बात होगी तो जरूर बुरा मानूँगी।'

'मैं तुम्हारा दिल दुखाने के लिए नहीं कहती। संभव है, तुम्हें बुरी बुरी लगे। तुम अपने मन में सोचो, तुम्हारे इस बहनापे में दया का भाव मिला हुआ है या नहीं? तुम मेरी गरीबी पर तरस खाकर....

रतन ने लपककर दोनों हाथों से उसका मुँह बन्द कर दिया और बोली—बस, अब रहने दो। तुम चाहे जो ख्याल करो, मगर वह भाव कभी मेरे मन में न था और न हो सकता है। मैं जानती हूँ, अगर मुझे भूख लगी हो, तो मैं निस्संकोच होकर तुमसे कह दूँगीं, बहन, मुझे कुछ खाने को दो, भूखी हूँ।

जालपा ने उसी निर्ममता से कहा—इस समय ऐसा कह सकती हो। तुम जानती हो किसी दूसरे समय तुम पूरियाँ क्या रोटियों के बदले मेवे खिला सकती हो; लेकिन ईश्वर न करे कोई ऐसा समय आये जब तुम्हारे घर में रोटी का टुकड़ा न हो, तो शायद तुम इतनी निस्संकोच न हो सको।

रतन ने दृढ़ता से कहा—मुझे उस दशा में भी तुमसे माँगने में संकोच न होगा। मैत्री परिस्थितियों का विचार नहीं करती। अगर यह विचार बना रहे, तो समझ लो, मैत्री नहीं है। ऐसी बातें करके तुम मेरा द्वार बन्द कर रही हो। मैंने मन में समझा था, तुम्हारे साथ जीवन के दिन काट दूँगी; लेकिन तुम अभी से चेतावनी दिये देती हो! अभागों को प्रेम की भिक्षा भी नहीं मिलती।

यह कहते-कहते रतन की आँखें सजल हो गयीं। जालपा अपने को दुखिनी समझ रही थी और दुखी जनों को निर्भय कहने की स्वाधीनता होती है; लेकिन रतन की मनोव्यथा उसकी व्यथा से कहीं विदारक थी। जालपा के पति के लौट आने की आशा अभी थी। वह जवान है, उसके आते ही जालपा को ये बुरे दिन भूल जायँगे। उसकी आशाओं का सूर्य फिर उदय होगा। इसकी इच्छाएँ फिर फूलेंगी। भविष्य अपनी सारी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ उसके सामने था—विशाल, उज्ज्वल, रमणीक। रतन का भविष्य क्या था? कुछ नहीं, शून्य. अन्धकार!

जालपा आँखें पोंछकर उठ खड़ी हुई। बोली—पत्रों के जवाब देती रहना। रुपये देती जाओ।

रतन ने पर्स से नोटों का एक बंडल निकालकर उसके सामने रख दिया; पर उसके चेहरे पर प्रसन्नता न थी।

जालपा ने सरल भाव से कहा—क्या बुरा मान गयीं?

रतन ने रूठे हुए शब्दों में कहा—बुरा मानकर तुम्हारा क्या कर लूँगी।

जालपा ने उसके गले में बाँहें डाल दीं। अनुराग से उसका हृदय गद्गद हो गया। रतन से उसे इतना प्रेम कभी न हुआ था। वह उससे अब तक खिचती थी, ईर्ष्या करती थी। आज उसे रतन का असली रूप दिखायी दिया, यह सचमुच अभागिनी है और मुझसे बढ़कर।

एक क्षण बाद, रतन आँखों में आँसू और हँसी एक साथ भरे विदा हो गयी।

२६

कलकत्ते में वकील साहब ने ठहरने का पहले ही इन्तजाम कर लिया था। कोई कष्ट न हुआ। रतन ने महाराज और टीमल कहार को साथ ले लिया था। दोनों वकील साहब के पुराने नौकर थे और घर के-से आदमी हो गये थे। शहर के बाहर एक बँगला था। उसके कमरे मिल गये। इससे ज्यादा जगह की वहाँ जरूरत भी न थी। हाते में तरह-तरह के फूल-पौधे लगे हुए थे। स्थान बहुत सुन्दर मालूम होता था। पास-पड़ोस में और कितने ही बँगले थे। शहर के लोग उधर हवाखोरी के लिए जाया करते थे, और

हरे होकर लौटते थे; पर रतन को वह जगह फाड़े खाती थी। बीमार के साथ वाले भी बीमार होते हैं। उदासों के लिये स्वर्ग भी उदास है।

सफ़र ने वकील साहब को और भी शिथिल कर दिया था। दो-तीन दिन तो उनकी दशा उससे भी ख़राब रही, जैसी प्रयाग में थी लेकिन दवा शुरू होने के दो-तीन दिन बाद वह कुछ सँभलने लगे। रतन सुबह से आधी रात तक उनके पास कुरसी डाले बैठी रहती। स्नान-भोजन की भी सुधि न रहती। वकील साहब चाहते थे कि यह यहाँ से हट जाय तो दिल खोल कर कराहें। उसे तसकीन देने के लिए वह अपनी दशा को छिपाने की चेष्टा करते रहते थे। वह पूछती, आज कैसी तबीयत है? तो वह फीकी मुसकराहट के साथ कहते—आज तो जी बहुत हल्का मालूम होता है। बेचारे सारी रात करवटें बदल कर काटते थे, पर रतन पूछती—रात नींद आयी थी? तो कहते—हाँ, खूब सोया। रतन पथ्य सामने ले जाती, तो अरुचि होने पर भी खा लेते। रतन समझती, अब यह अच्छे हो रहे हैं। कविराजजी से भी वह यही समाचार कहती। वह भी अपने उपचार की सफलता पर प्रसन्न थे।

एक दिन वकील साहब ने रतन से कहा—मझे डर है कि मुझे अच्छा होकर तुम्हारी दवा न करनी पड़े।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—इससे बढ़कर क्या बात होगी। मैं तो ईश्वर से मनाती हूँ कि तुम्हारी बीमारी मुझे दे दें।

'शाम को घूम आया करो। अगर बीमार पड़ने की इच्छा हो, तो मेरे अच्छे हो जाने पर पड़ना।'

'कहाँ जाऊँगी, मेरा कहीं जाने को जी ही नहीं चाहता। मुझे यहीं सबसे अच्छा लगता है।'

वकील साहब को एकाएक रमानाथ का ख्याल आ गया। बोलें—जरा शहर के पार्कों में घूम-घाम कर देखो, शायद रमानाथ का पता चल जाय।

रतन को अपना वादा याद आ गया। रमा को पा जाने की आनन्दमय आशा ने एक क्षण के लिए उसे चंचल कर दिया। कहीं वह पार्क में बैठे मिल जायँ, तो पूछूँ, कहिये बाबूजी, अब कहाँ भाग कर जाइयेगा? इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल उठी। बोली—जालपा से मैंने वादा किया था कि पता लगाऊँगी; पर यहाँ आकर भूल गयी।

वकील साहब ने साग्रह कहा—आज चली जाओ। आज क्या, शाम को रोज़ घण्टे-भर के लिए निकल जाया करो।

रतन ने चिन्तित होकर कहा—लेकिन चिन्ता तो लगी रहेगी।

वकील साहब ने मुसकराकर कहा—मेरी ? मैं तो अच्छा हो रहा हूँ।

रतन ने सन्दिग्ध भाव से कहा—अच्छा, चली जाऊँगी।

रतन को कल से वकील साहब के आश्वासन पर कुछ संदेह होने लगा था। उनकी चेष्टा से अच्छे होने का कोई लक्षण उसे न दिखायी देता था। इनका चेहरा क्यों दिन-दिन पीला पड़ता जाता है ? इनकी आँखें क्यों हर-दम बन्द रहती हैं ? देह क्यों दिन-दिन घुलती जाती है ? महाराज और कहार से वह यह शंका न कह सकती थी। कविराजजी से पूछते उसे संकोच होता था। अगर कहीं रमा मिल जाते, तो उनसे पूछती। वह इतने दिनों से यहाँ हैं। किसी दूसरे डाक्टर को दिखाती। इन कविराजजी से उसे कुछ-कुछ निराशा हो चली थी।

जब रतन चली गयी, तो वकील साहब ने टीमल से कहा—मुझे ज़रा उठाकर बिठा दो टीमल। पड़े-पड़े कमर सीधी हो गयी। एक प्याला चाय पिला दो। कई दिन हो गये, चाय की सूरत नहीं देखी। यह पथ्य मुझे मारे डालता है। दूध देखकर ज्वर चढ़ आता है; पर उनकी खातिर से पी लेता हूँ। मुझे तो इन कविराज की दवा से कोई फ़ायदा नहीं मालूम होता। तुम्हें क्या मालूम होता है ?

टीमल ने वकील साहब को तकिये के सहारे बैठाकर कहा—बाबूजी, सो देख लेव, यह तो मैं पहले ही कहने वाला था। सो देख लेव, बहूजी के डर के मारे नहीं कहता था।

वकील साहब ने कई मिनट चुप रहने के बाद कहा—मैं मौत से डरता नहीं, टीमल। बिल्कुल नहीं। मुझे स्वर्ग और नरक पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। अगर संस्कारों के अनुसार आदमी को जन्म लेना पड़ता है तो मुझे विश्वास है, मेरा जन्म किसी अच्छे घर में होगा। फिर भी मरने को जी नहीं चाहता। सोचता हूँ, मर गया तो क्या होगा।

टीमल ने कहा—बाबूजी, सो देख लेव, आप ऐसी बातें न करें। भगवान चाहेंगे, तो अच्छे हो जायेंगे। किसी दूसरे डाक्टर को बुला लाऊँ ? आप

लोग तो अगरेजो पढ़ें हैं, सो देख लेव, कुछ मानते ही नहीं। मुझे तो कुछ और ही सन्देह हो रहा है। कभी-कभी गँवारों की भी सुन लिया करो। सो देख लेव, आप मानो चाहे न मानो, मैं तो एक [illegible] ने को लाऊँगा। बँगला के ओझे सयाने मसहूर हैं।

वकील साहब ने मुँह फेर लिया। प्रेत-बाधा का वह हमेशा मज़ाक उड़ाया करते थे। कई ओझों को पीट चुके थे। उनका ख्याल था कि यह प्रवंचना है, ढोंग है; लेकिन इस वक्त उनमें शक्ति भी न थी कि टीमल के इस प्रस्ताव का विरोध करते। मुंह फेर लिया।

महाराज ने चाय लाकर कहा—सरकार चाय लाया हूँ।

वकील साहब ने चाय के प्याले को क्षुधित नेत्रों से देखकर कहा—ले जाओ, अब न पीऊँगा। उन्हें मालूम होगा, तो दुःखी होंगी। क्यों महाराज, जब से मैं आया हूँ मेरा चेहरा कुछ हरा हुआ है ?

महाराज ने टीमल की ओर देखा। वह हमेशा दूसरों की राय देखकर राय दिया करते थे। खुद सोचने की शक्ति उनमें न थी। अगर टीमल ने कहा है, आप अच्छे हो रहे हैं, तो वह भी इसका समर्थन करेंगे। टीमल ने इसके विरुद्ध कहा है, तो उन्हें भी इसके विरुद्ध ही कहना चाहिए। टीमल ने उसके असमंजस को भाँपकर कहा—हरा क्यों नहीं हुआ है; हाँ जितना होना चाहिये उतना नहीं हुआ।

महाराज बोले—हाँ, कुछ हरा जरूर हुआ है मुदा बहुत कम।

वकील साहब ने कुछ जवाब नहीं दिया। दो-चार वाक्य बोलने के बाद वह शिथिल हो जाते थे और दस-पाँच मिनट शान्त अचेत पड़े रहते थे। कदाचित् उन्हें अपनी यथार्थ दशा का ज्ञान हो चुका था। उनके मुख पर, बुद्धि पर, मस्तिष्क पर मृत्यु की छाया पड़ने लगी थी। अगर कुछ आशा थी, तो इतनी ही कि शायद मन की दुर्बलता से उन्हें अपनी दशा इतनी हीन मालूम होती हो। उनका दम अब पहले से ज्यादा फूलने लगा था, कभी-कभी तो ऊपर की साँस ऊपर ही रह जाती थी। जान पड़ता था, बस प्राण निकला।

भीषण प्राण-वेदना होने लगती थी। कौन जाने, कब यही अवरोध एक क्षण और बढ़कर जीवन का अन्त कर दे।

सामने उद्यान में चाँदनी कुहरे की चादर ओढ़े ज़मीन पर पड़ी सिसक रही थी। फूल और पौधे मलिन मुख, सिर झुकाये, आशा और भय से विकल हो-होकर मानो उसके वक्ष पर हाथ रखते थे, उसकी शीतल देह का स्पर्श करते थे और आँसू की दो बूँदें गिराकर फिर उसी भाँति देखने लगते थे।

सहसा वकील साहब ने आँखें खोलीं। आँखों के कोने में आँसू की दो बूँदें मचल रही थीं।

क्षीण स्वर में बोले—टीमल ! क्या सिद्धू आये थे ?

फिर इस प्रश्न पर आप ही लज्जित होकर मुसकराते हुए बोले—मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे सिद्धू आये हों।

फिर गहरी साँस लेकर चुप हो गये और आँखें बन्द कर लीं।

सिद्धू उस बेटे का नाम था, जो जवान होकर मर गया था। इस समय वकील साहब को बराबर उसी की याद आ रही थी। कभी उसका बालकपन सामने आ जाता, कभी उसका मरना आगे दिखायी देने लगता—कितने स्पष्ट, कितने सजीव चित्र थे। उनकी स्मृति कभी इतनी मूर्तिमान, इतनी चित्रमय न थी।

कई मिनट के बाद उन्होंने फिर आँख खोली और इधर-उधर खोई हुई आँखों से देखा। उन्हें अभी ऐसा जान पड़ा था कि मेरी माता आकर पूछ रही हैं, बेटा, तुम्हारा जी कैसा है ?

सहसा उन्होंने टीमल से कहा—यहाँ आओ। किसी वकील को बुला लाओ। जल्दी जाओ, नहीं वह घूमकर आती होगी।

इतने में मोटर का हार्न सुनाई दिया और एक पल में रतन आ पहुँची। वकील को बुलाने की बात उड़ गयी।

वकील साहब ने प्रसन्न-मुख होकर पूछा—कहाँ-कहाँ गयीं ? कुछ उनका पता मिला ?

रतन ने उनके माथे पर हाथ रखते हुए कहा—कई जगह देखा। कहीं न दिखायी दिये। इतने बड़े शहर में सड़कों का पता तो जल्दी चलता नहीं, वह भला क्या मिलेंगे। दवा खाने का समय तो हो गया न ?

वकील साहब ने दबी ज़बान से कहा—लाओ, खा लूँ।

रतन ने दवा निकाली और उन्हें उठाकर पिलायी। इस समय वह न

जाने कुछ भयभीत-सी हो रही थी। एक अस्पष्ट, अज्ञात, शंका उसके हृदय को दबाये हुए थी।

एकाएक उसने कहा—उन लोगों में से किसी को तार दे दूँ ?

वकील साहब ने प्रश्न की आँखों से देखा। फिर आप-ही-आप उसका आशय समझकर बोले—नहीं, नहीं, किसी को बुलाने की ज़रूरत नहीं। मैं अच्छा हो रहा हूँ।

फिर एक क्षण के बाद सावधान होने की चेष्टा करके बोले—मैं चाहता हूँ कि अपनी वसीयत लिखवा दूँ।

जैसे एक शीतल, तीव्र बाण रतन के पैर से घुसकर सिर से निकल गया; मानो उसकी देह के सारे बन्धन खुल गये, सारे अवयव बिखर गये। उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा में उड़ गये, मानो नीचे से धरती निकल गयी, ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निःस्पन्द, निर्जीव खड़ी है! अवरुद्ध, अश्रु-कंपित कंठ से बोली—घर से किसी को बुलाऊँ ? यहाँ किससे सलाह ली जाय ? कोई भी तो अपना नहीं है।

अपनों के लिए इस समय रतन अधीर हो रही थी। कोई भी तो अपना होता, जिस पर वह विश्वास कर सकती, जिससे सलाह ले सकती। घर के लोग आ जाते, तो दौड़-धूप करके किसी दूसरे डाक्टर को बुलाते। वह अकेली क्या-क्या करे ? आखिर भाई-बन्द और किस दिन काम आते ? संकट में ही तो अपने काम आते हैं। फिर यह क्यों कहते हैं कि किसी को मत बुलाओ ?

वसीयत की बात फिर उसे याद आ गयी। यह विचार क्यों इनके मन में आया ? वैद्यजी ने कुछ कहा ता नहीं ? क्या होनेवाला है भगवान् ! यह शब्द अपने सारे संसर्गों के साथ उसके हृदय को विदीर्ण करने लगा। चिल्ला-चिल्लाकर रोने के लिए उसका मन विकल हो उठा। अपनी माता याद आयी। उसके अंचल में मुँह छिपाकर रोने की आकांक्षा उसके मन में उत्पन्न हुई। उस स्नेहमय अंचल में रोकर उसकी बाल-आत्मा को कितना संतोष होता था। कितनी जल्द उसकी सारी मनोव्यथा शांत हो जाती थी। आह ! वह आधार भी अब नहीं !

महाराज ने आकर कहा—**सरकार, भोज**न तैयार है; थाली परसूँ ?

रतन ने उसकी ओर कठोर नेत्रों से देखा। वह बिना जवाब की अपेक्षा किये चुपके से चला गया।

मगर एक ही क्षण में रतन को महाराज पर दया आ गयी। उसने कौन-सी बुराई की, जो भोजन के लिए पूछने आया? भोजन भी ऐसी चीज है, जिसे कोई छोड़ सके? वह रसोई में जाकर महाराज से बोली—तुम लोग खा लो, महाराज! मुझे आज भूख नहीं लगी है।

महाराज ने आग्रह किया—दो ही फुलके खा लीजिए सरकार।

रतन ठिठक गयी। महाराज के आग्रह में इतनी सहृदयता, इतनी समवेदना भरी हुई थी कि रतन को एक प्रकार की सांत्वना का अनुभव हुआ। यहाँ कोई अपना नहीं है, यह सोचने में उसे अपनी भूल प्रतीत हुई। महाराज ने अब तक रतन को कठोर स्वामिनी के रूप में देखा था। वही स्वामिनी आज उसके सामने खड़ी, मानो सहानुभूति की भिक्षा माँग रही थी। उसकी सारी सद्वृत्तियाँ उमड़ उठीं। रतन को उसके दुर्बल मुख पर अनुराग का तेज नजर आया।

उसने पूछा—क्यों महाराज, बाबूजी को इस कविराज की दवा से कोई लाभ हो रहा है?

महाराज ने डरते-डरते वही शब्द दुहरा दिये जो वकील साहब से कहे थे—कुछ-कुछ तो हो रहा है, लेकिन जितना होना चाहिए उतना नहीं।

रतन ने अविश्वास के अन्दाज से देखकर कहा—तुम भी मुझे धोखा देते हो महाराज?

महाराज की आँखें डबडबा गयीं। बोले—भगवान् सब अच्छा ही करेंगे बहूजी, घबराने से क्या होगा! अपना तो कोई बस नहीं है।

रतन ने पूछा—यहाँ कोई ज्योतिषी न मिलेगा? जरा उनसे पूछते। कुछ पाठ-पूजा भी करा लेने से अच्छा होता है।

महाराज ने तुष्टि के भाव से कहा—यह तो मैं पहले कहने वाला था, बहूजी, लेकिन बाबूजी का मिजाज तो जानती हो। इन बातों से वह कितना बिगड़ते हैं!

रतन ने दृढ़ता से कहा—सबेरे किसी को ज़रूर बुला लाना।

'सरकार चिढ़ेंगे।'

'मैं जो कहती हूँ।'

यह कहती हुई वह कमरे में आयी और रोशनी के सामने बैठकर जालपा को पत्र लिखने लगी—

'बहन, नहीं कह सकती, क्या होने वाला है। आज मुझे मालूम हुआ कि मैं अब तक मीठे भ्रम में पड़ी हुई थी। बाबूजी अब तक मुझसे अपनी दशा छिपाते थे; मगर आज यह बात उनके काबू के बाहर हो गई। तुमसे क्या कहूँ, आज वह वसीयत लिखाने की चर्चा कर रहे थे। मैंने ही टाला। दिल घबरा रहा है। बहन, जी चाहता है, थोड़ी-सी संखिया खाकर सो रहूँ। विधाता को संसार दयालु, कृपालु, दीनबन्धु और जाने कौन-कौन-सी उपाधियाँ देता है। मैं कहती हूँ, उससे निर्दयी, निर्मम, निष्ठुर कोई शत्रु भी नहीं हो सकता। पूर्व जन्म का संस्कार केवल मन को समझाने की चीज है। जिस दण्ड का हेतु ही हमें न मालूम हो, उस दण्ड का मूल्य ही क्या? वह तो जबर-दस्त की लाठी है, जो आघात करने के लिए कोई कारण गढ़ लेती है। इस अँधेरे, निर्जन, काँटों से भरे हुए जीवन-मार्ग में केवल एक टिमटिमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे अंचल में छिपाये, विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी; पर वह दीपक भी मुझसे छीना जा रहा है! इस अन्ध-कार में मैं कहाँ जाऊँगी, कौन मेरा रोना सुनेगा कौन मेरी बाँह पकड़ेगा?

'बहन, मुझे क्षमा करना। मुझे बाबू जी का पता लगाने का अवकाश नहीं मिला। आज कई पार्कों में चक्कर लगा आयी, पर कहीं पता नहीं चला। कुछ अवसर मिला तो फिर जाऊँगी। माता जी को मेरा प्रणाम कहना।'

पत्र लिखकर रतन बरामदे में आयी। शीतल पवन के झोंके आ रहे थे। प्रकृति मानो रोगशय्या पर पड़ी सिसक रही थी।

३०

उसी वक्त वकील साहब की साँस वेग से चलने लगी।

रात के तीन बज चुके थे। रतन आधी रात के बाद आरामकुर्सी पर लेटे ही लेटे झपकियाँ ले रही थी कि सहसा वकील साहब के गले का खर्राटा सुनकर चौंक पड़ी। उलटी साँसें चल रही थीं। वह उनके सिरहाने चारपाई पर बैठ गयी और उनका सिर उठाकर अपनी जाँघ पर रख लिया। अभी न जाने कितनी रात बाकी है। मेज पर रखी हुई छोटी घड़ी की ओर देखा: अभी तीन

बजे थे। सवेरा होने में अभी चार घण्टे को देर थी। कविराज कहीं नौ बजे आयेंगे। यह सोचकर वह हताश हो गयी। यह अभागिन रात क्या अपना काला मुँह लेकर विदा न होगी? मालूम होता है, एक युग हो गया।

कई मिनट के बाद वकील साहब की साँस रुकी; सारी देह पसीने से तर थी। हाथ से रतन को हट जाने का इशारा किया और तकिये पर सिर रखकर फिर आँखें बन्द कर लीं।

एकाएक उन्होंने क्षीण स्वर में कहा—रतन, अब विदाई का समय आ गया। मेरे अपराध....

उन्होंने दोनों हाथ जोड़ लिये और उसकी ओर दीन याचना की आँखों से देखा। कुछ कहना चाहते थे, पर मुँह से आवाज न निकली।

रतन ने चीखकर कहा—टीमल! महाराज! क्या दोनों मर गये?

महाराज ने आकर कहा—मैं सोया थोड़े ही था, बहूजी! क्या बाबू जी....

रतन ने डाँटकर कहा—बको मत, जाकर कविराज को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए।

महाराज ने तुरन्त अपना पुराना ओवरकोट पहना, सोटा उठाया और चल दिया। रतन उठकर स्टोव जलाने लगी, कि शायद सेंक से कुछ फ़ायदा हो। उसकी सारी घबराहट, सारी दुर्बलता सारा शोक मानो लुप्त हो गया। उसकी जगह एक प्रबल आत्मनिर्भरता का उदय हुआ। कठोर कर्तव्य ने सारे अस्तित्व को सचेत कर दिया।

स्टोव जलाकर उसने रुई के गाले से छाती को सेंकना शुरू किया। कोई पंद्रह मिनट तक ताबड़तोड़ सेंकने के बाद वकील साहब की सांस कुछ थमी। आवाज़ काबू में हुई। रतन के दोनों हाथ अपने गालों पर रखकर बोले—तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हो रही है, मुन्नी! क्या जानता था इतनी जल्द यह समय आ जायगा। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है, प्रिये! ओह, कितना बड़ा अन्याय! मन की सारी लालसा मन में रह गयी। मैंने तुम्हारे जीवन का सर्वनाश कर दिया—क्षमा करना।

यही अन्तिम शब्द थे जो उनके मुख से निकले। यही जीवन का अंतिम सूत्र था, यही मोह का अन्तिम बन्धन था।

रतन ने द्वार की ओर देखा। अभी तक महाराज का पता न था। हां,

टीमल खड़ा था और सामने अथाह् अन्धकार जैसे अपने जीवन की अन्तिम वेदना में मूर्छित पड़ा था।

रतन ने कहा—टीमल, जरा पानी गरम करोगे?

टीमल ने वहीं खड़े-खड़े कहा—पानी गरम करके क्या करोगी, बहूजी, गोदान करा दो। दो बूँद गंगाजल मुँह् में डाल दो।

रतन ने पति की छाती पर हाथ रखा। छाती गरम थी। उसने फिर द्वार की ओर ताका। महाराज न दिखायी दिये। वह अब भी सोच रही थी, कविराज जी आ जाते तो शायद इनकी हालत सँभल जाती। पछता रही थी, कि इन्हें यहाँ क्यों लायी। कदाचित् रास्ते की तकलीफ़ और जल-वायु ने बीमारी को असाध्य कर दिया। यह भी पछतावा हो रहा था कि मैं सन्ध्या समय क्यों घूमने चली गयी। शायद उतनी ही देर में इन्हें ठण्ड लग गयी। जीवन एक दीर्घ पश्चात्ताप के सिवा और क्या है!

पछतावे की एक-दो बात थी? इस आठ साल के जीवन में मैंने पति को क्या आराम पहुँचाया? वह बारह बजे रात तक कानूनी पुस्तकें देखते रहते थे, मैं पड़ी सोती रहती थी। वह सन्ध्या समय भी मुवक्किलों से मामले की बातें करते थे, मैं पार्क और सिनेमा की सैर करती थी, बाजारों में मटरगश्ती करती थी। मैंने इन्हें धनोपार्जन के एक यन्त्र के सिवा और क्या समझा! यह कितना चाहते थे कि मैं इनके साथ बैठूँ और बातें करूँ; पर मैं भागती फिरती थी। मैंने कभी इनके हृदय के समीप जाने की चेष्टा नहीं की, कभी प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा। अपने घर में दीपक न जला-कर दूसरों के उजाले घर का आनन्द उठाती फिरती—मनोरंजन के सिवा मुझे और कुछ सूझता ही न था। विलास और मनोरंजन, यही मेरे जीवन के दो लक्ष्य थे। अपने जले हुए दिल को इस तरह शान्त करके मैं सन्तुष्ट थी। खीर और मलाई की थाली क्यों न मुझे मिली, इस क्षोभ में मैंने अपनी रोटियों को लात मार दी।

आज रतन को उस प्रेम का पूर्ण परिचय मिला, जो इस विदा होने-वाली आत्मा को उससे था—वह इस समय भी उसी की चिन्ता में मग्न थी। रतन के लिए जीवन में फिर भी कुछ आनन्द था, कुछ रुचि थी, कुछ उत्साह था। इनके लिए जीवन में कौन-सा सुख था। न खाने-पीने का सुख, न

मले-तमाशे का शौक़। जीवन क्या एक दीर्घ तपस्या थी, जिसका मुख्य उद्देश्य कर्तव्य का पालन था। क्या रतन उनका जीवन सुखी न बना सकती थी? क्या एक क्षण के लिए कठोर कर्तव्य की चिन्ताओं से उन्हें मुक्त न कर सकती थी? कौन कह सकता है कि विराम और विश्राम से वह बुझने वाला दीपक कुछ दिन और न प्रकाशमान रहता? लेकिन उसने कभी अपने पति के प्रति अपना कर्तव्य ही न समझा। उसकी अन्तरात्मा सदैव विद्रोह करती रही, केवल इसलिए कि इनसे मेरा सम्बन्ध क्यों हुआ। क्या उस विषय में सारा अपराध इन्हीं का था? कौन कह सकता है कि दरिद्र माता-पिता ने मेरी भी दुर्गति न की होती—जवान आदमी भी सब-के-सब क्या आदर्श ही होते हैं? उनमें भी तो व्यभिचारी, क्रोधी, शराबी, सभी तरह के होते हैं। कौन कह सकता है, इस समय मैं किस दिशा में होती। रतन का एक-एक रोआं इस समय उसका तिरस्कार कर रहा था। उसने पति के शीतल चरणों पर सिर झुका लिया और बिलख-बिलखकर रोने लगी। वह सारे कठोर भाव जो बराबर उसके मन में उठते रहते थे, वह सारे कटु वचन जो उसने जल-जलकर उन्हें कहे थे, इस समय सैकड़ों बिच्छुओं के समान डंक मार रहे थे। हाय! मेरा यह व्यवहार उस प्राणी के साथ था, जो सागर की भाँति गम्भीर था। इस हृदय में कितनी कोमलता थी, कितनी उदारता! मैं एक बीड़ा पान दे देती थी तो कितने प्रसन्न हो जाते थे, जरा हँसकर बोल देती थी, तो कितने तृप्त हो जाते थे; पर मुझसे इतना भी न होता था। इन बातों को याद करके उसका हृदय फटा जाता था। उसे प्रबल आकांक्षा हो रही थी कि इन चरणों पर सिर रखे हुए मेरे प्राण इसी क्षण निकल जायँ। उन चरणों को मस्तक से स्पर्श करके आज उसके हृदय में कितना अनुराग उमड़ा आता था, मानो एक युग की संचित निधि को वह आज ही, इसी क्षण लुटा देगी। मृत्यु की दिव्य ज्योति के सम्मुख उसके अन्दर का सारा मालिन्य, सारी दुर्भावना, सारा विद्रोह मिट गया था।

वकील साहब की आँखें खुली हुई थीं, पर मुख पर किसी भाव का चिह्न न था। रतन की विह्वलता भी अब उनकी बुझती हुई चेतना को प्रदीप्त न कर सकती थी। हर्ष और शोक के बन्धन से वह मुक्त हो गये थे, कोई रोये तो ग़म नहीं, हँसे तो खुशी नहीं।

टीमल ने आचमनी में गंगाजल लेकर उनके मुंह में डाल दिया। आज उन्होंने कुछ बाधा न दी। वह जो पाखंडों और रूढ़ियों का शत्रु था, इस समय शान्त हो गया था; इसलिए नहीं कि उसमें धार्मिक विश्वास का उदय हो गया था, बल्कि इसलिए कि उसमें अब कोई इच्छा न थी। इतनी ही उदासीनता से वह विष का घूंट पी जाता।

मानव-जीवन की सबसे महान् घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है। वह विश्व का एक महान् व्यंग, वह महत्वाकांक्षाओं का प्रचण्ड सागर, वह उद्योग का अनन्त भन्डार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुःख का लीला-क्षेत्र, वह बुद्धि और बल की रंगभूमि न जाने कब और कहाँ लीन हो जाती है, किसी को ख़बर नहीं होती। एक हिचकी भी नहीं, एक उच्छ्वास भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती! सागर की हिलोरों का कहाँ अन्त होता है, कौन बता सकता है? ध्वनि कहाँ वायुमग्न हो जाती है, कौन जानता है? मानवीय जीवन उस हिलोर के सिवा, उस ध्वनि के सिवा और क्या है? उसका अवसान भी उतना ही शान्त, उतना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य है? भूतों के भक्त पूछते हैं, क्या वस्तु निकल गयी? कोई विज्ञान का उपासक कहता है, एक क्षीण ज्योति निकल जाती है। कपोल-विज्ञान के पुजारी कहते हैं, आँखों से प्राण निकले, मुँह से निकले, ब्रह्माण्ड से निकले! कोई उनसे पूछे, हिलोर लय होते समय क्या चमक उठती है? ध्वनि लीन होते समय क्या मूर्तिमान् हो जाती है? यह उस अनन्त यात्रा का एक विश्राम मात्र है जहाँ यात्रा का अन्त नहीं, नया उत्थान होता है!

कितना महान् परिवर्तन है! वह जो मच्छर के डंक को सहन न कर सकता था, अब उसे चाहे मिट्टी में दबा दो, चाहे अग्नि-चिता पर रख दो, उसके माथे पर बल तक न पड़ेगा।

टीमल ने वकील साहब के मुख की ओर देखकर कहा—बहूजी, आइए खाट से उतार दें। मालिक चले गये!

यह कहकर वह भूमि पर बैठ गया और दोनों आँखों पर हाथ रखकर फूट-फूटकर रोने लगा। आज तीस वर्ष का साथ छूट गया। जिसने कभी आधी बात नहीं कही, कभी तू करके नहीं पुकारा, वह मालिक अब उसे छोड़े चला जा रहा था।

रतन अभी तक कविराज की बाट जोह रही थी। टीमल के मुख से यह शब्द सुनकर उसे धक्का-सा लगा। उसने उठकर पति की छाती पर हाथ रखा। साठ वर्ष तक अविश्राम गति से चलने के बाद वह अब विश्राम कर रही थी। फिर उसे माथे पर हाथ रखने की हिम्मत न पड़ी। उस देह का स्पर्श करते हुए, उस मरे हुए मुख की ओर ताकते हुए, उसे ऐसा विराग हो रहा था, जो ग्लानि से मिलता था। अभी जिन चरणों पर सिर रखकर वह रोयी थी, उसे छूते हुए उसकी उँगलियाँ-सी कटी जाती थीं। जीवन-सूत्र इतना कोमल है, उसने कभी न समझा था। मौत का खयाल कभी उसके मन में न आया था। उस मौत ने आँखों के सामने उसे लूट लिया!

एक क्षण के बाद टीमल ने कहा—बहूजी, अब क्या देखती हो, खाट के नीचे उतार दो, जो होना था हो गया।

उसने पैर पकड़ा, रतन ने सिर पकड़ा और दोनों ने, शव को नीचे लिटा दिया और वहीं ज़मीन पर बैठकर रतन रोने लगी, इसलिए नहीं कि संसार में अब उसके लिए कोई अवलम्ब न था, बल्कि इसलिए कि वह उनके साथ अपने कर्तव्य को पूरा न कर सकी।

उसी वक्त मोटर की आवाज़ आयी और कविराज ने पदार्पण किया।

कदाचित् अब भी रतन के हृदय में कहीं आशा की कोई बुझती हुई चिनगारी पड़ी हुई थी। उसने तुरन्त आँखें पोंछ डालीं; सिर का अंचल सँभाल लिया, उलझे हुए केश समेट लिये और खड़ी होकर द्वार की ओर देखने लगी। प्रभात ने आकाश को अपनी सुनहरी किरणों से रंजित कर दिया था। क्या इस आत्मा के नव-जीवन का भी यही प्रभात था?

३१

उसी दिन शव काशी लाया गया। यहीं उसकी दाह-क्रिया हुई। वकील साहब के एक भतीजे मालवे में रहते थे। उन्हें तार देकर बुला लिया गया। दाह-क्रिया उन्होंने की। रतन को चिता के दृश्य की कल्पना ही से रोमांच होता था। वहाँ पहुँचकर शायद वह बेहोश हो जाती।

जालपा आजकल प्रायः सारे दिन उसी के साथ रहती। शोकातुर रतन को न घर-बार की सुधि थी, न खाने-पीने की। नित्य ही कोई-न-कोई ऐसी बात याद आ जाती, जिस पर वह घण्टों रोती। पति के साथ उसका

जो धर्म था, उसके एक अंश का भी उसने पालन किया होता, तो उसे बोध होता। अपनी कर्त्तव्यहीनता, अपनी निष्ठुरता, अपनी शृङ्गार-लोलुपता की चर्चा करके वह इतना रोती कि हिचकियाँ बँध जातीं। वकील साहब के सद्गुणों की चर्चा करके ही वह अपनी आत्मा को शान्ति देती थी। जब तक जीवन के द्वार पर एक रक्षक बैठा हुआ था, उसे किसी कुत्ते या बिल्ली या चोर-चकोर की चिन्ता न थी। लेकिन अब द्वार पर कोई रक्षक न था, इसलिए वह सजग रहती थी—पति का गुण-गान किया करती। जीवन का निर्वाह कैसे होगा, नौकर-चाकरों में किन-किन को जवाब देना होगा, घर का कौन-कौन सा खर्च कम करना होगा, इन प्रश्नों के विषय में दोनों में कोई बात न होती, मानो यह चिन्ता मृत आत्मा के प्रति अश्रद्धा होगी। भोजन करना, साफ़ वस्त्र पहनना और मन को कुछ पढ़कर बहलाना भी उसे अनुचित जान पड़ता था। श्राद्ध के दिन उसने अपने सारे वस्त्र और आभूषण महापात्र को दान कर दिये। इन्हें लेकर अब वह क्या करेगी? इनका व्यवहार करके क्या वह अपने जीवन को कलंकित करेगी? इसके विरुद्ध पति की छोटी-सी-छोटी वस्तु को भी स्मृति-चिह्न समझकर वह देखती-भालती रहती थी। उसका स्वभाव इतना कोमल हो गया था कि कितनी ही बड़ी हानि हो जाय, उसे क्रोध न आता था। टीमल के हाथ से चाय का सेट छूटकर गिर पड़ा; पर रतन के माथे पर बल तक न आया। पहले एक दावात टूट जाने पर इसी टीमल को उसने बुरी तरह डाँट बतायी थी, निकाले देती थी; पर आज उससे कई गुने नुकसान पर उसने ज़बान तक न खोली। कठोर भाव उसके हृदय में आते हुए मानों डरते थे, कि कहीं उसे आघात न पहुँचे या शायद पति शोक और पति-गुणगान के सिवा और किसी विचार को मन में लाना वह पाप समझती थी।

वकील साहब के भतीजे का नाम था मणिभूषण। बड़ा ही मिलनसार, हँसमुख, कार्य-कुशल। इसी एक महीने में उसने सैकड़ों मित्र बना लिये। शहर में जिन-जिन वकीलों और रईसों से वकील साहब का परिचय था, उन सबसे उसने ऐसा मेल-जोल बढ़ाया, ऐसी बेतकल्लुफ़ी पैदा की, कि रतन को ख़बर तक नहीं और उसने बैंक का लेन-देन अपने नाम से शुरू कर दिया। इलाहाबाद बैंक में वकील साहब के बीस हज़ार रुपये जमा थे। उस पर

तो उसने कब्जा कर ही लिया, मकानों के किराये भी वसूल करने लगा, गांवों की तहसील भी खुद ही शुरू कर दी, मानो रतन से कोई मतलब ही नहीं।

एक दिन टीमल ने आकर रतन से कहा—बहूजी, जानेवाला तो चला गया, अब घर-द्वार की भी कुछ खबर लीजिए। मैंने सुना है, भैयाजी ने बैंक का सब रुपया अपने नाम करा लिया।

रतन ने उसकी ओर ऐसे कठोर कुपित नेत्रों से देखा कि उसे फिर कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। उसी दिन शाम को मणिभूषण ने टीमल को निकाल दिया—चोरी का इलज़ाम लगाकर, जिसमें रतन कुछ कह भी न सके।

अब केवल महाराज रह गये। उन्हें मणिभूषण ने भंग पिला-पिलाकर ऐसा मिलाया, कि वह उन्हीं का दम भरने लगे। महरी से कहते, बाबूजी का बड़ा रईसाना मिज़ाज है; कोई सौदा लाओ, कभी नहीं पूछते, कितने का लाये। बड़ों के घर में बड़े ही होते हैं। बहूजी बाल की खाल निकाला करती थीं, यह बेचारे कुछ नहीं बोलते। महरी का मुँह पहले ही सी दिया गया था। वह एक-न-एक बहाने से बाहर की बैठक में ही मँडलाया करती। रतन को ज़रा भी ख़बर न थी, किस तरह उसके लिये व्यूह रचा जा रहा है।

एक दिन मणिभूषण ने रतन से कहा—काकीजी, अब तो मुझे यहाँ रहना व्यर्थ मालूम होता है। मैं सोचता हूँ, अब आपको लेकर घर चला जाऊँ। वहां आपकी बहू आपकी सेवा करेगी, बाल-बच्चों में आप का जी बहल जायगा और खर्च भी कम हो जायगा। आप कहें तो यह बँगला बेच दिया जाय। अच्छे दाम मिल जायेंगे।

रतन इस तरह चौंकी, मानो उसकी मूर्च्छा भंग हो गयी हो, मानो किसी ने उसे झंझोड़कर जगा दिया हो। सकपकाई हुई आँखों से उसकी ओर देखकर बोली—क्या मुझसे कुछ कह रहे हो?

मणि०—जी हाँ, कह रहा था कि अब हम लोगों का यहां रहना व्यर्थ है। आपको लेकर चला जाऊँ, तो कैसा हो?

रतन ने उदासीनता से कहा— हाँ, अच्छा तो होगा।

मणि०—काकाजी ने कोई वसीयतनामा लिखा हो, तो लाइए देखूँ। उनकी इच्छाओं के आगे सिर झुकाना हमारा धर्म है।

रतन ने उसी भाँति आकाश पर बैठे हुए, जैसे संसार की बातों से अब उसे कोई सरोकार ही न रहा हो, जवाब दिया—वसीयत तो नहीं लिखी। और क्या जरूरत थी?

मणिभूषण ने फिर पूछा—शायद कहीं लिखकर रख गये हों?

रतन—मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कभी ज़िक्र नहीं किया।

मणिभूषण ने मन में प्रसन्न होकर कहा—मेरी इच्छा है कि उनकी कोई यादगार बनवा दी जाय।

रतन ने उत्सुकता से कहा—हाँ, हाँ, मैं भी चाहती हूँ

मणि०—गाँव की आमदनी कोई तीन हज़ार साल की है, यह आपको मालूम है। इतना ही उनका वार्षिक दान होता था। मैंने उनके हिसाब की किताब देखी है। दो-सौ ढाई-सौ से किसी महीने में कम नहीं है। मेरी सलाह है कि वह ज्यों-का-त्यों बना रहे।

रतन ने प्रसन्न होकर कहा—हाँ, और क्या।

मणि०—तो गाँव की आमदनी तो धर्मार्थ पर अर्पण कर दी जाय। मकानों का किराया कोई सौ रुपये महीना है। इससे उनके नाम पर एक छोटी-सी संस्कृत पाठशाला खोल दी जाय।

रतन—बहुत अच्छा होगा।

मणि०—और यह बँगला बेंच दिया जाय। इस रुपये को बैंक में रख दिया जाय।

रतन—बहुत अच्छा होगा। मुझे रुपये-पैसे की अब क्या जरूरत है।

मणि०—आपकी सेवा के लिए तो हम सब हाज़िर हैं। मोटर भी अलग कर दी जाय? अभी से यह फ़िक्र की जायगी, तो जाकर कहीं दो-तीन महीने में फ़ुरसत मिलेगी।

रतन ने लापरवाही से कहा—अभी जल्दी क्या है। कुछ रुपये बैंक में तो हैं?

मणि०—बैंक में कुछ रुपये थे, मगर महीने भर से खर्च भी तो हो रहे हैं। हज़ार-पाँच सौ पड़े होंगे। यहाँ तो रुपये जैसे हवा में उड़ जाते हैं।

मुझसे तो इस शहर में एक महीना भी न रहा जायगा। मोटर को तो जल्द ही निकाल देना चाहिए।

रतन ने इसके जवाब में भी यही कह दिया—अच्छा तो होगा। वह उस मानसिक दुर्बलता की दशा में थी, जब मनुष्य को छोटे-छोटे काम भी असूझ मालूम होने लगते हैं। मणिभूषण की कार्य-कुशलता ने एक प्रकार से उसे पराभूत कर दिया था। इस समय जो उसके साथ थोड़ी सी भी सहानुभूति दिखा देता, उसी को वह अपना शुभचिन्तक समझने लगती। शोक और मनस्ताप ने उसके मन को इतना कोमल और नर्म बना दिया था कि उस पर किसी की भी छाप पड़ सकती थी। उसकी सारी मलिनता और खिन्नता मानों भस्म हो गयी थी, वह सभी को अपना समझती थी। उसे किसी पर सन्देह न था, किसी से शंका न थी। कदाचित् उसके सामने कोई चोर भी उसकी सम्पत्ति का अपहरण करता, तो वह शोर न मचाती।

३२

षोड़शी के बाद से जालपा ने रतन के घर आना-जाना कम कर दिया था। केवल एक बार घंटे-दो-घंटे के लिए चली जाया करती थी। इधर कई दिनों से मुंशी दयानाथ को ज्वर आने लगा था। उन्हें ज्वर में छोड़कर कैसे जाती। मुंशीजी को ज़रा ज्वर आता तो वह बक-झक करने लगते थे। कभी गाते, कभी रोते, कभी यमदूतों को अपने सामने नाचते देखते। उनका जी चाहता कि सारा घर मेरे पास बैठा रहे; सम्बन्धियों को भी बुला लिया जाय जिसमें वह सबसे अन्तिम भेंट कर लें, क्योंकि इस बीमारी से बचने की उन्हें आशा न थी। यमराज स्वयं सामने विमान लिये खड़े थे। रामेश्वरी और सब कुछ कर सकती थी, उनकी बक-झक न सुन सकती थी। ज्योंही वह रोने लगते, वह कमरे से निकल जाती। उसे भूत-बाधा का भ्रम होता था।

मुंशीजी के कमरे में कई समाचार-पत्रों के फ़ाइल थे। यही उन्हें एक व्यसन था। जालपा का जी वहाँ बैठे-बैठे घबराने लगता, तो इन फाइलों को उलट-पलटकर देखने लगती। एक दिन उसने एक पुराने पत्र में शतरंज का एक नक़्शा देखा, जिसे हल कर देने के लिए किसी सज्जन ने पुरस्कार भी रखा था। उसे खयाल आया कि जिस ताक पर रमानाथ की बिसात और मोहरे रखे हुए हैं, उस पर एक किताब में कई नक़्शे भी दिये हुए हैं। वह तुरंत

दौड़ी हुई गयी और वह कापी उठा लायी। यह नक़शा उस कापी में मौजूद था, और नक़शा ही न था, उसका हल भी दिया हुआ था। जालपा के मन में सहसा यह विचार चमक पड़ा, इस नक़शे को किसी पत्र में छपा दूँ तो कैसा हो। शायद उनकी निगाह पड़ जाय। यह नकशा इतना सरल तो नहीं है कि आसानी से हल हो जाय। इस नगर में जब कोई उनका सानी नहीं है, तो ऐसे लोगों की संख्या बहुत नहीं हो सकती, जो यह नक़शा हल कर सकें। कुछ भी हो, जब उन्होंने यह नकशा हल कर दिया हैं, तो इसे देखते ही फिर हल कर लेंगे। जो लोग पहली बार देखेंगे, उन्हें दो-एक दिन सोचने में लग जायेंगे। मैं लिख दूँगी, कि जो सबसे पहले हल कर लें, उसी को पुरस्कार दिया जाय। जुआ तो है ही। उन्हें रुपये न भी मिलें, तो भी इतना सम्भव है ही कि हल करने वालों में उनका नाम भी हो। कुछ पता तो लग जायगा। कुछ भी न हो, तो रुपये ही तो जायेंगे। दस रुपये का पुरस्कार रख दूँ। पुरस्कार कम होगा, तो कोई बड़ा खिलाड़ी इधर ध्यान न देगा। यह बात भी रमा के हित की होगी।

इसी उधेड़बुन में वह आज रतन से न मिल सकी। रतन दिन भर तो उसकी राह देखती रही। जब वह शाम को भी न गयी, तो उससे न रहा गया। आज वह पतिशोक के बाद पहली बार घर से निकली। कहीं रौनक़ न थी, कहीं जीवन न था, मानो सारा नगर शोक मना रहा है। उसे तेज मोटर चलाने की धुन थी, पर आज वह तांगे से भी कम जा रही थी। एक वृद्धा को सड़क के किनारे बैठे देखकर उसने मोटर रोक दी और उसे चार आने दे दिये। कुछ आगे और बढ़ी, तो दो कांस्टेबुल एक क़ैदी को लिये जा रहे थे। उसने मोटर रोककर एक कांस्टेबुल को बुलाया और उसे एक रुपया देकर कहा—इस कैदी को मिठाई खिला देना। कांस्टेबुल ने सलाम करके रुपया ले लिया। दिल में खुश हुआ, आज किसी भाग्यवान् का मुँह देखकर उठा था।

जालपा ने उसे देखते ही कहा—क्षमा करना बहन, आज मैं न आ सकी, दादाजी को कई दिन से ज्वर आ रहा है।

रतन ने तुरंत मुंशीजी के कमरे की ओर क़दम उठाया और पूछा—यहीं हैं न ? तुमने मुझसे न कहा।

मुंशीजी का ज्वर इस समय कुछ उतरा हुआ था। रतन को देखते ही बोले—बड़ा दुःख हुआ देवीजी, मगर यह तो संसार है। आज एक की बारी है, कल दूसरे की बारी है। यही चल-चलाव लगा हुआ है। अब मैं भी चला। नहीं बच सकता। बड़ी प्यास है; जैसे छाती में कोई भट्ठी जल रही हो। फुँका जाता हूँ। कोई अपना नहीं होता बहूजी! संसार के नाते सब स्वार्थ के नाते हैं। आदमी अकेला हाथ पसारे एक दिन चला जाता है। हाय, हाय! लड़का था, वह भी हाथ से निकल गया। न जाने कहाँ गया। आज होता, तो एक चुल्लू पानी देनेवाला तो होता। यह दो लौंडे हैं, इन्हें कोई फ़िक्र नहीं, मैं मर जाऊँ या जी जाऊँ। इन्हें तीन दफे खाने को चाहिए, तीन दफे पानी पीने को। बस, और किसी काम के नहीं। यहाँ बैठते दोनों का दम घुटता है। क्या करूँ! अबकी न बचूँगा।

रतन ने तस्कीन दी—यह मलेरिया है, दो-चार दिन में आप अच्छे हो जायँगे, घबराने की बात नहीं।

मुन्शीजी ने दीन नेत्रों से देखकर कहा—बैठ जाइए बहूजी, आप कहती हैं, आपका आशीर्वाद है तो शायद बच जाऊँ, लेकिन मुझे तो आशा नहीं है। मैं भी ताल ठोंके यमराज से लड़ने को तैयार बैठा हूँ। अब उनके घर मेहमानी खाऊँगा। अब कहां जाते हैं बचकर बचा! ऐसा-ऐसा रगेदूँ, कि वह भी याद करें। लोग कहते हैं, वहां भी आत्माएँ इसी तरह रहती हैं। इसी तरह वहाँ भी कचहरियां हैं, हाकिम हैं, राजा हैं, रंक हैं, व्याख्यान होते हैं, समाचार-पत्र छपते हैं। फिर क्या चिन्ता है, वहां भी अहलमद हो जाऊँगा। मजे से अखबार पढ़ा करूँगा।

रतन को ऐसी हँसी छूटी कि वहाँ खड़ी न रह सकी। मुंशीजी विनोद के भाव से यह बातें नहीं कर रहे थे। उनके चेहरे पर गम्भीर विचार की रेखा थी। आज डेढ़-दो महीने के बाद रतन हँसी, और इस असामयिक हँसी को छिपाने के लिए कमरे से निकल आयी। उसके साथ जालपा भी बाहर आ गयी।

रतन ने अपराधी नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा—दादाजी ने मन में क्या समझा होगा। सोचते होंगे, मैं तो जान से मर रहा हूँ और इसे हँसी सूझती है। अब वहां न जाऊँगी, नहीं ऐसी ही कोई बात फिर कहेंगे,

तो मैं बिना हँसे न रह सकूँगी। देखो, तो आज कितनी बे-मौक़े हँसी आयी है।

वह अपने मन को इस उच्छृङ्खलता के लिए धिक्कारने लगी। जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—मुझे भी अक्सर इनकी बातों पर हँसी आ जाती है, बहन! इस वक्त तो इनका ज्वर कुछ हलका है। जब जोर का ज्वर होता है, तब तो यह और भी ऊल-जलूल बकने लगते हैं। उस वक्त हँसी रोकनी मुश्किल हो जाती है! आज सबेरे कहने लगे—मेरा पेट भक हो गया, मेरा पेट भक हो गया! इसकी रट लगा दी। इसका आशय क्या था, न मैं समझ सकी, न अम्मा समझ सकीं; पर वह बराबर यही रटे जाते थे—पेट भक हो गया! आओ कमरे में चलें।

रतन—मेरे साथ न चलोगी?

जालपा—आज तो न चल सकूँगी, बहन।

'कल आओगी?'

'कह नहीं सकती। दादाजी का जी कुछ हलका रहा, तो आऊँगी।'

'नहीं भाई जरूर आना! तुमसे एक सलाह करनी है।'

'क्या सलाह है?'

'मुन्नी कहते हैं, यहाँ अब रहकर क्या करना है, घर चलो। बँगले को बेंच देने को कहते हैं।'

जालपा ने एकाएक ठिठककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—यह तो तुमने बुरी खबर सुनायी, बहन! मुझे इस दशा में तुम छोड़कर चली जाओगी? मैं न जाने दूँगी। मुन्नी से कह दो, बँगला बेंच दें; मगर जब तक उनका कुछ पता न चल जायगा, मैं तुम्हें न छोड़ूँगी। तुम कुल एक हफ़्ते बाहर रहीं। मुझे एक-एक पल पहाड़ हो गया। मैं न जानती थी कि मुझे तुमसे इतना प्रेम हो गया है। अब तो शायद मैं मर ही जाऊँ। नहीं बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अभी जाने का नाम न लेना।

रतन की आंखें भर आयीं, बोली—मुझसे भी वहां न रहा जायगा, सच कहती हूँ। मैं तो कह दूँगी, मुझे नहीं जाना है। जालपा उसका हाथ पकड़े हुए ऊपर अपने कमरे में ले गयी और उसके गले में हाथ डालकर बोली—क़सम खाओ कि मुझे छोड़कर न जाओगी।

रतन ने उसे अँकवार में लेकर कहा—लो, क़सम खाती हूँ, न जाऊँगी; चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। मेरे लिए वहाँ क्या रक्खा हैं। बँगला भी क्यों बेंचू। दो-ढाई सौ मकानों का किराया है! हम दोनों के गुजर के लिए काफ़ी है। मैं आज ही मुन्नी से कह दूँगी—मैं न जाऊँगी।

सहसा फर्श पर शतरंज के मुहरे और नक़शे देखकर उसने पूछा—यह शतरंज किसके साथ खेल रही थीं?

जालपा ने शतरंज के नक़शे पर अपने भाग्य का पाँसा फेंकने की जो बात सोची थी, वह सब उससे कह सुनाई। मन में डर रही थी कि यह कहीं इस प्रस्ताव को व्यर्थ न समझे, पागलपन न ख़याल करे; लेकिन रतन सुनते ही बाग-बाग़ हो गयी। बोली—दस रुपये तो बहुत कम पुरस्कार है। पचास रुपये कर दो, मैं देती हूँ।

जालपा ने शंका की—लेकिन इतने पुरस्कार के लोभ से कहीं अच्छे अच्छे शतरंजबाजों ने मैदान में क़दम रखा तो?

रतन ने दृढ़ता से कहा—कोई हरज नहीं। बाबूजी की निगाह पड़ गयी, तो वह इसे ज़रूर हल कर लेंगे और मुझे आशा है कि सबसे पहले उन्हीं का नाम आयेगा। कुछ न होगा, तो पता तो लग ही जायगा। अख़बार के दफ़्तर में तो उनका पता आ ही जायगा। तुमने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला है। मेरा मन कहता है, इसका अच्छा फल होगा। मैं आप की प्रेरणा की क़ायल हो गयी हूँ। जब मैं इन्हें लेकर कलकत्ते चली गयी थी, उस वक्त मेरा मन कह रहा था, वहाँ जाना अच्छा न होगा।

जालपा—तो तुम्हें आशा है?

'पूरी। मैं कल सबेरे रुपये लेकर आऊँगी।'

'तो मैं आज ख़त लिख रखूँगी। किसके पास भेजूँ? वहाँ का कोई प्रसिद्ध पत्र होना चाहिये।'

'वहाँ तो 'प्रजा-मित्र' की बड़ी चर्चा थी। पुस्तकालयों में अक्सर लोग उसी को पढ़ते नज़र आते थे।'

'तो 'प्रजा-मित्र' ही को लिखूँगी, लेकिन रुपये हड़प कर जाय और नकशा न छापे तो क्या हो?'

'हो क्या, पचास रुपये ही तो ले जायगा। दमड़ों की हँड़िया खोकर कुत्ते

की जात तो पहचान ली जायगी। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता। जो लोग देश-हित के लिये जेल जाते हैं, तरह-तरह की धौंस सहते हैं, वे इतने नीच नहीं हो सकते। मेरे साथ आध घण्टे के लिये चलो, तो तुम्हें इसी वक्त रुपये दे दूँ।'

जालपा ने नीमराजी होकर कहा—इस वक्त कहां चलूँ। कल ही आऊँगी।

उसी वक्त मुंशीजी पुकार उठे—बहू! बहू!

जालपा तो लपकी हुई उनके कमरे की ओर चली। रतन बाहर जा रही थी कि रामेश्वरी पंखा लिये अपने को झलती हुई दिखाई पड़ गयी। रतन ने पूछा—तुम्हें गरमी लग रही है अम्मांजी! मैं तो ठण्ड के मारे कांप रही हूँ। अरे! तुम्हारे पावों में यह क्या उजला-उजला लगा हुआ है? क्या आटा पीस रही थीं?

रामेश्वरी ने लज्जित होकर कहा—हां, वैद्यजी ने इन्हें हाथ के आटे की रोटी खाने को कहा है। बाजार में हाथ का आटा कहाँ मयस्सर? मुहल्ले में कोई पिसनहारिन नहीं मिलती। मजूरिनें तक चक्की से आटा पिसवा लेती हैं। मैं तो एक आना सेर देने को राजी हूँ; पर कोई मिली नहीं।

रतन ने अचम्भे से कहा—तुमसे चक्की चल जाती है?

रामेश्वरी ने झेंप से मुसकराकर कहा—कौन बहुत था। पाव भर तो दो दिन के लिए हो जाता है। खाते नहीं एक कौर भी। बहू पीसने जा रही थी; लेकिन फिर भी मुझे उनके पास बैठना पड़ता। मुझे रात भर चक्की पीसना गौं है, उनके पास घड़ी भर बैठना गौं नहीं।

रतन जाकर जाँत के पास एक मिनट खड़ी रही, मुसकराकर माची पर बैठ गयी और बोली—तुमसे तो अब जाँत न चलता होगा, माँजी। लाओ, थोड़ा-सा गेहूँ मुझे दो, देखूँ तो।

रामेश्वरी ने कानों पर हाथ रखकर कहा—अरे नहीं बहू, तुम क्या पीसोगी। चलो यहाँ से।

रतन ने प्रमाण दिया—मैंने बहुत दिनों तक पीसा है माँजी। जब मैं अपने घर थी तो रोज पीसती थी। मेरी अम्मा, लाओ थोड़ा-सा गेहूँ।

'हाथ दुखने लगेगा। छाले पड़ जायँगे।'

'कुछ नहीं होगा मांजी, आप गेहूँ तो लाइए।'

रामेश्वरी ने उसका हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करके कहा—गेहूँ घर में नहीं है। अब इस वक्त बाजार से कौन लाये।

'अच्छा चलिए, मैं आपके भण्डारे में देखूँ। गेहूँ होगा कैसे नहीं।'

रसोई की बगल वाली कोठरी में सब खाने-पीने का सामान रहता था। रतन अन्दर चली गयी और हांड़ियों में टटोल-टटोलकर देखने लगी। एक हांड़ी में गेहूँ निकल आये। बड़ी खुश हुई, बोली—देखो माँजी, निकले कि नहीं, तुम मुझसे बहाना कर रही थीं।

उसने एक टोकरी में थोड़ा गेहूँ निकाल लिया और खुश-खुश चक्की पर जाकर पीसने लगी। रामेश्वरी ने जाकर जालपा से कहा—बहू, वह जांत पर बैठी गेहूँ पीस रही है। उठाती हूँ, उठती ही नहीं। कोई देख ले तो क्या कहे?

जालपा ने मुंशीजी के कमरे से निकलकर सास की घबराहट का आनन्द उठाने के लिए कहा—यह तुमने क्या गजब किया अम्माजी। सचमुच, कोई देख ले तो नाक कट जाय! चलिए, जरा देखूँ।

रामेश्वरी ने विवशता से कहा—क्या करूँ, मैं तो समझा के हार गयी, मानती ही नहीं।

जालपा ने जाकर देखा, तो रतन गेहूँ पीसने में मग्न थी। विनोद के स्वाभाविक आनन्द से उसका चेहरा खिला हुआ था। इतनी ही देर में उसके माथे पर पसीने की बूँदें आ गयी थीं। उसके बलिष्ठ हाथों जांत लट्टू के समान नाच रहा था।

जालपा ने हँसकर कहा—ओ री, आटा महीन हो, नहीं पैसे न मिलेंगे!

रतन को सुनाई न दिया। बहरों की भाँति अनिश्चित भाव से मुस्कराई। जालपा ने और जोर से कहा—आटा, खूब महीन पीसना, नहीं पैसे न पायेगी! रतन ने भी हँसकर कहा—जितना महीन कहिए उतना महीन पीस दूँ, बहू जी। पिसाई अच्छी मिलनी चाहिये।

जालपा—धेले सेर।

रतन—धेली सेर नहीं?

जालपा—मुँह धो आओ! धेले सेर मिलेंगे।

रतन—मैं यह सब पीसकर उठूँगी। तुम यहाँ क्यों खड़ी हो?

जालपा—आ जाऊँ मैं भी खिचा दूँ?

रतन—जी चाहता है, कोई जाँत का गीत गाऊँ!

जालपा—अकेली गाओगी? (रामेश्वरी से) अम्मा, आप जरा दादाजी के पास बैठ जायँ, मैं अभी आती हूँ।

जालपा भी जाँत पर जा बैठी, और दोनों जाँत का यह गीत गाने लगीं—

मोहि जोगिन बनाय के कहाँ गये, जोगिया!

दोनों के स्वर मधुर थे। जाँत की घुमर-घुमर उनके स्वर के साथ साज का काम कर रही थी। जब दोनों एक कड़ी गाकर चुप हो जातीं, तो जाँत का स्वर मानो कंठ-ध्वनि से रंजित होकर और भी मनोहर हो जाता था। दोनों के हृदय इस समय जीवन के स्वाभाविक आनन्द से पूर्ण थे—न शोक का भार था, न वियोग का दुःख। जैसे दो चिड़ियाँ प्रभात की अपूर्व शोभा से मग्न होकर चहक रही हों।

३३

रमा की चाय की दूकान खुल तो गई; पर केवल रात को खुलती थी, दिन भर बंद रहती थी। रात को भी अधिकतर देवीदीन ही की दूकान पर बैठता। पर बिक्री अच्छी हो जाती थी। पहले ही दिन तीन रुपये के पैसे आये, दूसरे दिन से चार-पाँच रुपये का औसत पड़ने लगा। चाय इतनी स्वादिष्ट होती थी कि जो एक बार यहाँ चाय पी लेता, फिर दूसरी दूकान पर न जाता। रमा ने मनोरंजन की भी कुछ सामग्री जमा कर दी। कुछ रुपये जमा हो गये, तो उसने सुन्दर मेज ली। चिराग़ जलने के बाद साग-भाजी की बिक्री ज्यादा न होती थी। वह उन टोकरों को उठाकर अन्दर रख देता और बरामदे में वह मेज लगा देता। उस पर ताश के सेट रख देता। दो दैनिक-पत्र भी मँगाने लगा। दूकान चल निकली। उन्हीं तीन-चार घण्टों में छः-सात रुपये आ जाते थे और सब खर्च निकालकर तीन-चार रुपये बच रहते थे।

इन चार महीनों की तपस्या ने रमा की भोग-लालसा को और भी प्रचण्ड कर दिया। जब तक हाथ में रुपये न थे, वह मजबूर था। रुपये आते ही सैर-सपाटे की धुन सवार हो गयी। सिनेमा की याद भी आयी।

रोज़ के व्यवहार की मालूली चीज़ें जिन्हें अब तक वह टालता आता था, अब अबाध रूप से आने लगीं। देवीदीन के लिए वह एक सुन्दर रेशमी चादर लाया। जग्गो के सिर में पीड़ा होती रहती थी। एक दिन सुगन्धित तेल की दो शीशियाँ लाकर उसे दे दीं। दोनों निहाल हो गये। अब बुढ़िया कभी अपने सिर पर बोझ लाती तो उसे डाँटता, काकी, अब तो मैं चार पैसे कमाने लगा, अब तू क्यों जान देती है? अगर फिर कभी तेरे सिर पर टोकरी देखी, तो कहे देता हूँ, दूकान उठाकर फेंक दूँगा। फिर मुझे जो सज़ा चाहे दे देना। बुढ़िया बेटे की डाँट सुनकर गद्गद् हो जाती। मण्डी से बोझ लाती तो पहले चुपके से देखती, रमा दूकान पर तो नहीं है! अगर वह बैठा होता, तो किसी कुली को एक-दो पैसा देकर उसके सिर पर रख देती। वह न होता, तो लपकी हुई आती और जल्द से बोझ उतारकर शान्ति से बैठ जाती, जिसमें रमा भाँप न सके।

एक दिन 'मनोरमा थियेटर' में राधेश्याम का कोई नया ड्रामा होने वाला था। इस ड्रामे की बड़ी धूम थी। एक दिन पहले से ही लोग अपनी जगह रक्षित करा रहे थे। रमा को भी अपनी जगह रक्षित करा लेने की धुन सवार हुई। सोचा, कहीं रात को टिकट न मिला, तो टापते रह जायँगे। तमाशे की बड़ी तारीफ है। उस वक्त एक के दो पैसे देने पर भी जगह न मिलेगी। इसी उत्सुकता ने पुलीस के भय को पीछे डाल दिया। आफ़त नहीं आयी है कि घर से निकलते ही पुलीस पकड़ लेगी। दिन को न सही, रात को तो निकलता ही हूँ। पुलीस चाहती तो क्या रात को न पकड़ लेती, फिर मेरा वह हुलिया भी नहीं रहा। पगड़ी चेहरा बदल लेने के लिए काफी है। यों मन को समझाकर वह दस बजे घर से निकला। देवीदीन कहीं गया हुआ था। बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो बेटा? रमा ने कहा—कहीं नहीं काकी, अभी आता हूँ।

रमा सड़क पर आया, तो उसका साहस हिम की भाँति पिघलने लगा। उसे पग-पग पर शंका होती थी, कोई कांसटेबिल न आ रहा हो। उसे विश्वास था कि पुलीस का एक-एक चौकीदार भी उसका हुलिया पहचानता है और उसके चेहरे पर निगाह पड़ते ही पहचान लेगा। इसलिए वह नीचे सिर झुकाये चल रहा था। सहसा उसे खयाल आया, गुप्त पुलीसवाले सादे

कपड़े पहने इधर-उधर घूमा करते हैं। कौन जाने जो आदमी मेरी बग़ल में आ रहा है, कोई जासूस ही हो। मेरी ओर कितने ध्यान से देख रहा है। यह सिर झुकाकर चलने से ही तो नहीं उसे संदेह हो रहा है। यहाँ और सभी सामने ताक रहे हैं। कोई यों सिर झुकाकर नहीं चल रहा है। मोटरों के इस रेल-पेल में सिर झुकाकर चलना मौत को नेवता देना है। पार्क में कोई इस तरह चहलक़दमी करे तो कर सकता है। यहाँ तो सामने देखना चाहिए। लेकिन बग़लवाला आदमी अभी तक मेरी ही तरफ ताक रहा है। शायद कोई खुफ़िया ही। उसका साथ छोड़ने के लिए वह एक तमोली की दूकान पर पान खाने लगा। वह आदमी आगे निकल गया। रमा ने आराम की लम्बी सांस ली।

अब उसने सिर उठा लिया और मजबूत दिल करके चलने लगा। इस वक्त ट्राम का भी कहीं पता न था, नहीं उसी पर बैठ लेता। थोड़ी दूर चला होगा कि तीन कांसटेबल आते दिखाई दिये। रमा ने सड़क छोड़ दी और पटरी पर चलने लगा। ख़्वाहमख़्वाह साँप के बिल में उँगली डालना कौन-सी बहादुरी है। दुर्भाग्य की बात, तीनों कांसटेबलों ने भी सड़क छोड़-कर वही पटरी ले ली। मोटरों के आने-जाने से बार बार इधर-उधर दौड़ना पड़ता था। रमा का कलेजा धक्-धक् करने लगा। दूसरी पटरी पर जाना तो सन्देह को और भी बढ़ा देगा। कोई ऐसी गली भी नहीं, जिसमें घुस जाऊँ। अब तो सब बहुत समीप आ गये। क्या बात है, सब मेरी ही तरफ देख रहे हैं। मैंने बड़ी हिमाक़त की कि यह पग्गड़ बाँध लिया, और बाँधी भी कितनी बेतुकी! एक टीले-सा ऊपर उठ गया है। यह पगड़ी आज मुझे पकड़ायेगी। बांधी थी कि इससे सूरत बदल जायगी। यह उलटे और तमाशा बन गयी। हाँ, तीनों मेरी ही ओर ताक रहे हैं। आपस में बातें भी कर रहे हैं। रमा को ऐसा जान पड़ा, पैरों में शक्ति नहीं है। शायद सब मन में मेरा हुलिया मिला रहे हैं। अब नहीं बच सकता। घरवालों को मेरे पकड़े जाने की खबर मिलेगी तो कितना लज्जित होंगे। जालपा तो रो-रोकर प्राण दे देगी। पाँच साल से कम सजा न होगी। आज इस जीवन का अन्त हो रहा है।

इस कल्पना ने उसके ऊपर ऐसा आतंक जमाया कि उसके औसान जाते रहे। जब सिपाहियों का दल समीप आ गया, तो उसका चेहरा भय से कुछ ऐसा विकृत हो गया, और आँखें कुछ ऐसी सशंक हो गयीं, और अपने को

उनकी आँखों सेचाने के लिए वह कुछ इस तरह दूसरे आदमियों की आड़ खोजने लगा कि मासूली आदमी को भी उस पर सन्देह होना स्वाभाविक था। फिर पुलिसवालों की मँजी हुई आँखें क्यों चूकतीं ? एक ने अपने साथी से कहा—यो मनई चोर न होय, तो तुमरी टांगन ते निकर जाई। कस चोरन की नाई ताकत है। दूसरा बोला—कुछ सन्देह हमऊ का हुइ रहा है। फुरै कह्यो पाँड़े, असली चोर है।

तीसरा आदमी मुसलमान था, उसने रमानाथ को ललकारा—ओ जी, ओ पगड़ी, जरा इधर आना, तुम्हारा क्या नाम है ?

रमानाथ ने सीनाजोर के भाव से कहा—हमारा नाम पूछकर क्या करोगे ? क्या मैं चोर हूँ ?

'चोर नहीं, तुम साह हो, नाम क्यों नहीं बताते ?'

रमा ने एक क्षण आगा-पीछा किया और फिर हड़बड़ाकर कहा—हीरालाल।

'घर कहाँ है ?'

'घर !'

'हाँ, घर पूछते हैं !'

'शाहजहाँपुर।'

'कौन मुहल्ला ?'

रमा शाहजहाँपुर न गया था, न कोई कल्पित नाम ही उसे याद आया कि बता दे। दुस्साहस के साथ बोला—तुम मेरा हुलिया लिख रहे हो।

कांसटेबल ने भबकी दी—तुम्हारा हुलिया पहले से ही लिखा हुआ है। नाम झूठ बताया, सकूनत झूठ बतायो, मुहल्ला पूछा तो बगलें झाँकने लगे। महीनों से तुम्हारी तलाश हो रही है, आज जाकर मिले हो। चलो थाने पर।

यह कहते हुए उसने रमानाथ का हाथ पकड़ लिया। रमा ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा करके कहा—वारंट लाओ, तब हम चलेंगे। क्या मुझे कोई देहाती समझ लिया है ?

कांसटेबल ने एक सिपाही से कहा—पकड़ लो जी इनका हाथ, वहीं थाने पर वारंट दिखाया जायगा।

शहरों में ऐसी घटनाएँ मदारियों के तमाशे से भी ज्यादा मनोरंजक

होती हैं। सैकड़ों आदमी जमा हो गये। देवीदीन इसी समय अफीम लेकर लौटा आ रहा था, जमाव देखकर वह भी आ गया। देखा कि तीन कांस-टेबल रमानाथ को घसीटे लिये जा रहे हैं। आगे बढ़कर बोला—हैं हैं, जमादार, यह क्या करते हो? यह पंडित तो हमारे मिहमान हैं, इन्हें कहाँ पकड़े लिये जाते हो?

तीनों कांसटेबल देवीदीन से परिचित थे, रुक गये। एक ने कहा—तुम्हारे मिहमान हैं यह? कब से?

देवीदीन ने मन में हिसाब लगा कर कहा—चार महीने से कुछ ज्यादा हुए होंगे। मुझे प्रयाग में मिल गये। रहनेवाले भी वहीं के हैं। मेरे साथ ही तो आये थे।

मुसलमान सिपाही ने मन में प्रसन्न होकर कहा—इनका नाम क्या है?

देवीदीन ने सिटपिटाकर कहा—नाम इन्होंने बताया न होगा?

सिपाहियों का सन्देह दृढ़ हो गया। पाँडे ने आँखें निकालकर कहा—जान परत है, तुमहू मिले हौ, नाँव काहे नहीं बतावत हौ इनका?

देवीदीन ने आधारहीन साहस के भाव से कहा—मुझसे रोब न जमाना पाँडे, समझे! यहाँ धमकियों में नहीं आने के!

मुसलमान सिपाही ने मानों मध्यस्थ बनकर कहा—बूढ़े बाबा, तुम तो ख्वाहमख्वाह बिगड़ रहे हो। इनका नाम क्यों नहीं बतला देते?

देवीदीन ने कातर नेत्रों से रमा की ओर देखकर कहा—हम लोग तो रमानाथ कहते हैं। असली नाम यही है या कुछ और, यह हम नहीं जानते।

पाँड़े ने आँखें निकालकर हथेली को सामने करके कहा—बोलो पण्डित जी, क्या नाम है तुम्हारा? रमानाथ या हीरालाल? या दोनों—एक घर का एक ससुराल का?

तीसरे सिपाही ने दर्शकों को सम्बोधित करके कहा—नाँव है रमानाथ, बतावत हैं हीरालाल। सबूत हुइ गवा। दर्शकों में कानाफूसी होने लगी—शुबहे की बात तो है।

'साफ़ है, नाम और पता दोनों गलत बता दिया।'

एक मारवाड़ी सज्जन बोले—उचक्को सो है।

एक मौलवी साहब ने कहा—कोई इश्तिहारी मुलजिम है।

जनता को अपने साथ देखकर सिपाहियों को और भी जोर हो गया। रमा को भी अब उनके साथ चुपचाप चले जाने ही में अपनी कुशल दिखायी दी। इस तरह सिर झुका लिया, मानो उसे इसकी बिलकुल परवा नहीं है कि लाठी पड़ती है या तलवार। इतना अपमानित वह कभी न हुआ था। जेल की कठोरतम यातना भी इतनी ग्लानि न उत्पन्न करती।

थोड़ी देर में पुलिस स्टेशन दिखायी दिया। दर्शकों की भीड़ बहुत कम हो गयी थी। रमा ने एक बार उनकी ओर लज्जित आशा के भाव से ताका। देवीदीन का पता न था। रमा के मुँह से एक लम्बी साँस निकल गयी। इस विपत्ति में क्या यह सहारा भी हाथ से निकल गया ?

३४

पुलिस स्टेशन के दफ़्तर में इस समय एक बड़ी मेज़ के सामने चार आदमी बैठे हुए थे। एक दारोगा थे, गोरे, शौकीन, जिनकी बड़ी-बड़ी आँखों में कोमलता की झलक थी। उनकी बगल में नायब दारोगा थे। यह सिख थे, बहुत ही हँसमुख, सजीवता के पुतले, गेहुँआ रंग, सुडौल, सुगठित शरीर, सिर पर केश थे, हाथ में कड़ा, पर सिगार से परहेज न करते थे। मेज़ की दूसरी तरफ इन्सपेक्टर और डिप्टी सुपरिंटेंडेंट बैठे हुए थे। इन्पेक्टर अधेड़, साँवला आदमी था, कौड़ी-की-सी आँखें, फूले हुए गाल और ठिगना क़द। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट लम्बा छरहरा जवान था, बहुत ही विचारशील और अल्पभाषी। इसकी लम्बी नाक और ऊँचा मस्तक कुलीनता के साक्षी थे।

डिप्टी ने सिगार का कश लेकर कहा—बाहरी गवाही से काम नहीं चलने सकेगा। इसमें से किसी को 'अप्रूवर' बनाना होगा। और कोई 'आल्टरनेटिव' नहीं है।

इन्सपेक्टर ने दारोगा की ओर देखकर कहा—हम लोगों ने कोई बात उठा तो नहीं रखी, हलफ से कहता हूँ। सभी तरह के लालच देकर हार गये। सबों ने ऐसी गुट कर रखी है कि कोई टूटता ही नहीं। हमने बाहर के गवाहों को भी आजमाया; पर सब कानों पर हाथ रखते हैं।

डिप्टी—उस मारवाड़ी को फिर आजमाने होगा। उसके बाप को बुलाकर खूब धमकाइए। शायद उसका कुछ दबाव पड़े।

इन्स्पेक्टर—हलफ से कहता हूँ, आज सुबह से हम लोग यही कर रहे हैं। बेचारा बाप लड़के के पैरों पर गिरा; पर लड़का किसी तरह राजी नहीं होता।

कुछ देर तक चारों आदमी विचारों में मग्न बैठे रहे। अन्त में डिप्टी ने निराशा के भाव से कहा—मुक़दमा नहीं चलने सकता। मुफ्त का बदनाम हुआ।

इन्स्पेक्टर—एक हफ्ते की मुहलत और लीजिये, शायद कोई टूट जाय।

यह निश्चय करके दोनों आदमी वहाँ से रवाना हुए। छोटे दारोगा भी उनके साथ ही चले गए। दारोगाजी ने हुक्का मँगवाया, कि सहसा एक मुसलमान सिपाही ने आकर कहा—दारोगाजी लाइए, कुछ इनाम दिलवाइए। एक मुलज़िम को शुबहे पर गिरफ्तार किया है। इलाहाबाद का रहने वाला है, नाम है रमानाथ। पहले नाम और सकूनत दोनों गलत बतलाई थी। देवीदीन खटीक जो नुक्कड़ पर रहता है, उसी के घर ठहरा हुआ है। जरा डाँट बताइयेगा, तो सब कुछ उगल देगा।

दारोगा—देवीदीन वही है न, जिसके दोनों लड़के....

सिपाही—जी हाँ, वही है।

इतने में रमानाथ भी दारोगा के सामने हाजिर किया गया। दरोगा ने उसे सिर से पाँव तक देखा मानो मन में उसका हुलिया मिला रहे हों। तब कठोर दृष्टि से देखकर बोले—अच्छा यह इलाहाबाद का रमानाथ है। खूब मिले भाई। छः महीने से परेशान कर रहे हो। कैसा साफ हुलिया है कि अन्धा भी पहचान ले! यहाँ कब से आये हो?

कांसटेबल ने रमा को परामर्श दिया—सब हाल सच-सच कह दो तो तुम्हारे साथ कोई सख्ती न की जायगी।

रमा ने प्रसन्नचित्त बनने की चेष्टा करके कहा—अब तो आपके हाथ में हूँ, रियायत कीजिए या सख्ती कीजिए। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी में नौकर था। हिमाकत कहिए या बदनसीबी, चुंगी के चार सौ रुपये मुझसे खर्च हो गये। मैं वक्त पर रुपये जमा न कर सका। शर्म के मारे घर के आदमियों से कुछ न कहा। नहीं तो इतने रुपये का इन्तजाम हो जाना कोई मुश्किल न था। जब कुछ वश न चला तो वहाँ से भागकर यहाँ चला आया। इसमें एक हर्फ भी गलत नहीं है।

दारोगा ने गम्भीर भाव से कहा—मामला कुछ संगीन है, क्या कुछ शराब का चस्का पड़ गया था ?

'मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी शराब मुंह से लगायी हो।'

कांसटेबल ने विनोद करके कहा—मुहब्बत के बाजार में लुट गये होंगे हजूर !

रमा ने मुस्कराकर कहा—मुझसे फाकामस्तों का वहाँ कहाँ गुजर ?

दारोगा—तो क्या हुआ ? खेल डाला ? या बीबी के लिए जेबर बनवा डाला ?

रमा झेंपकर रह गया। अपराधी मुस्कराहट उसके मुख पर रो पड़ी !

दारोगा—अच्छी बात है, तुम्हें भी यहाँ खासे मोटे जेवर मिल जायेंगे।

एकाएक बूढ़ा देवीदीन आकर खड़ा हो गया।

दारोग़ा ने कठोर स्वर में कहा—क्या काम है यहाँ ?

देवी०—हुजूर को सलाम करने चला आया। इन बेचारे पर दया की नजर रहे हुजूर, बेचारे बड़े सीधे आदमी हैं।

दारोग़ा—बचा, सरकारी मुलजिम को घर में छिपाते हो, उस पर सिफारिश करने आये हो ?

देवी०—मैं क्या सिफारिश करूँगा हुजूर, दो कौड़ी का आदमी।

दारोगा—जानता है इन पर वारंट है, सरकारी रुपये ग़बन कर गये हैं।

देवी०—हुजूर, भूल-चूक आदमी से ही तो होती है। जवानी की उम्र है ही, खरच हो गये होंगे।

यह कहते हुए देवीदीन ने पाँच गिन्नियाँ कमर से निकालकर मेज पर रख दीं।

दरोगा ने तड़पकर कहा—यह क्या है ?

देवी०—कुछ नहीं है, हुजूर पान खाने को।

दारोगा—रिश्वत देना चाहता है, क्यों ? कहो तो बचा इसी इलजाम में भेज दूँ।

देवी०—भेज दीजिये सरकार। घरवाली लकड़ी-कफ़न की फिक्र से छूट जायगी। वहीं बैठा आपको दुआ दूँगा।

दारोगा—अबे इन्हें छोड़ाना है, तो पचास गिन्नियाँ लाकर सामने रखा। जानते हो, इनकी गिरफ्तारी पर पाँच सौ रुपये का इनाम है।

देवी—आप लोगों के लिए इतना इनाम क्या है। यह गरीब परदेसी आदमी हैं, जब तक जियेंगे आपको याद करेंगे।

दारोगा—बक-बक मत कर। यहाँ धरम कमाने नहीं आया हूँ।

देवी०—बहुत तंग हूँ हुजूर। दूकान-दौरी तो नाम की है।

कांसटेबल—बुढ़िया से माँग जाके।

देवी०—कमानेवाला तो मैं हूँ भैया, लड़कों का हाल जानते ही हो। तन पेट काटकर कुछ रुपये जमा कर रखे थे, सो अभी सात धाम किये चला आता हूँ। बहुत तंग हो गया हूँ।

दारोगा—तो अपनी गिन्नियाँ उठा ले। इसे बाहर निकाल दो जी।

देवी०—आपका हुकम, तो लीजिए जाता हूँ। धक्के क्यों दिलवाइगा?

दारोगा—(कांसटेबल) इन्हें हिरासत में रखो। मुंशी से कहो, इनका बयान लिख लें।

देवीदीन के होंठ आवेश से कांप रहे थे। उसके चेहरे पर इतनी व्यग्रता रमा ने कभी नहीं देखी थी, जैसे कोई चिड़िया अपने घोंसले में कौवे को घुसते देखकर विह्वल हो गयी हो। वह एक मिनट तक थाने के द्वार पर खड़ा रहा, फिर पीछे फिरा और एक सिपाही से कुछ कहा, तब लपका हुआ सड़क तक चला गया मगर एक ही पग में फिर लौटा और दारोगा से बोला—हुजूर दो घंटे की मुहलत न दीजिएगा?

रमा अभी वहीं खड़ा था। उसकी यह ममता देखकर रो पड़ा। बोला—दादा, अब तुम हैरान न हो, मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होने दो। मेरे पिता भी यहाँ होते तो इससे ज्यादा और क्या करते। मैं मरते दम तक तुम्हारा उपकार....

देवीदीन ने आँखें पोंछते हुए कहा—कैसी बात करते हो, भैया? जब रुपयों पर आई, तो देवीदीन पीछे हटने वाला आदमी नहीं है। इतने रुपये तो एक-एक दिन जुए में हार-जीत गया हूँ। अभी घर बेच दूँ, तो दस हजार की मालियत है। क्या सिर पर लादकर ले जाऊँगा! दारोगाजी, अभी भैया

को हिरासत में न भेजो। मैं रुपये की फिकर करके अभी थोड़ी देर में आता हूँ।

देवीदीन चला गया तो दारोगाजी ने सहृदयता से भरे हुए स्वर में कहा—है तो खुर्राट, मगर बड़ा नेक। तुमने कौन बूटी सुंघा दी?

रमा ने कहा—गरीबों पर सभी को रहम आता है।

दारोगा ने मुस्कराकर कहा—पुलिस को छोड़कर, इतना और कहिए! मुझे तो यकीन नहीं कि पचास गिन्नियाँ लाये।

रमा०—अगर लाये भी तो उससे इतना बड़ा तावान नहीं दिलाना चाहता। आप मुझे शौक से हिरासत में ले लें।

दारोगा—मुझे पाँच सौ के बदले साढ़े छः सौ मिल रहे हैं, क्या कहूँ! तुम्हारी गिरफ्तारी का इनाम मेरे किसी दूसरे भाई को मिल जाय तो क्या बुराई है।

रमा०—जब मुझे चक्की पीसनी है, तो जितनी जल्दी पीस लूँ उतना ही अच्छा। मैंने समझा था, मैं पुलिस की नज़रों से बचकर रह सकता हूँ। अब मालूम हुआ कि यह बेअकली और आठों पहर पकड़ लिये जाने का खौफ़ तो जेल से कम जानलेवा नहीं।

दारोगाजी को एकाएक जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी। मेज़ के दराज से एक मिसल निकाली, उसके पन्ने इधर उधर उलटे, तब नम्रता से बोले—अगर मैं कोई ऐसी तरकीब बतलाऊँ कि देवीदीन के रुपये भी बच जायँ और तुम्हारे ऊपर भी हर्फ न आये तो कैसा?

रमा ने अविश्वास के भाव से कहा—ऐसी कोई तरकीब है, मुझे तो आशा नहीं।

दारोगा—अजी, साई के सौ खेत हैं। इसका इन्तज़ाम मैं कर सकता हूँ। आपको महज एक मुक़दमे में शहादत देनी होगी।

रमा—झूठी शहादत होगी!

दारोगा—नहीं, बिल्कुल सच्ची। बस समझ लो कि आदमी बन जाओगे। म्युनिसिपैलिटी के पंजे से तो छूट ही जाओगे, शायद सरकार परवरिश भी करे। जो अगर चालान हो गया, तो पाँच साल से कम की सजा न होगी। मान लो, इस वक्त देवी तुम्हें बचा भी ले, तो बकरे की माँ कब तक खैर मना-

येगी। जिन्दगी खराब हो जायगी। तुम अपना नफा-नुकसान खुद समझ लो। मैं जबरदस्ती नहीं करता।

दारोगाजी ने डकैती का वृत्तान्त कह सुनाया। रमा ऐसे कई मुकदमे समाचार-पत्रों में पढ़ चुका था। संशय के भाव से बोला—तो मुझे मुखबिर बनना पड़ेगा और यह कहना पड़ेगा कि मैं भी इन डकैतियों में शरीक था? यह तो झूठी शहादत हुई।

दारोगा—मुआमला बिलकुल सच्चा है। आप बेगुनाहों को न फँसायेंगे। वही लोग जेल जायेंगे जिन्हें जाना चाहिए। फिर झूठ कहाँ रहा। डाकुओं के डर से वहाँ के लोग शहादत देने पर राजी नहीं होते। बस और कोई बात नहीं। यह मैं मानता हूँ कि आपको कुछ झूठ बोलना पड़ेगा; लेकिन आपकी जिन्दगी बनी जा रही है। इसके लिहाज से तो झूठ कोई चीज नहीं। खूब सोच लीजिये। शाम तक जवाब दीजिएगा।

रमा के मन में बात बैठ गई। अगर एक बार झूठ बोलकर वह अपने पिछले कर्मों का प्रायश्चित कर सके और अपना भविष्य भी सुधार ले, तो पूछना ही क्या। जेल से तो बच जायगा। इसमें बहुत आगा-पीछा करने की जरूरत ही न थी। हाँ, निश्चय हो जाना चाहिए कि उस पर फिर म्युनिसिपैलिटी अभियोग न चलायेगी और उस कोई अच्छी जगह मिल जायेगी। वह जानता था, पुलिस को ग़रज़ है और वह मेरी वाजिब शर्त अस्वीकार न करेगी। इस तरह बोला, मानो उसकी आत्मा धर्म और अधर्म के संकट में पड़ी हुई है। मुझे यही डर है कि कहीं मेरी गवाही से बेगुनाह लोग न फँस जायँ।

दारोगा—इसका मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ।

रमा०—लेकिन कल को म्युनिसिपैलिटी मेरी गर्दन नापे तो मैं किसे पुकारूँगा?

दारोगा—मजाल है, म्युनिसिपैलिटी चूँ भी कर सके। फ़ौजदारी के मुक़दमे में मुद्दई तो सरकार होगी। जब सरकार आपको मुआफ कर देगी, तो मुक़दमा कैसे चलायेगी। आपको तहरीरी मुआफ़ी-नामा दे दिया जायगा, साहब।

रमा०—और नौकरी?

दारोगा—वह सरकार आप इन्तजाम करेगी। ऐसे आदमियों को

सरकार खुद अपना दोस्त बनाये रखना चाहती है। अगर आपकी शहादत बढ़िया हुई और आप उस फ़रीक़ की जिरहों की जाल से निकल गये, तो फिर आप पारस हो जायँगे।

दारोगा जी ने उसी वक्त मोटर मँगवायी और रमा को साथ लेकर डिप्टी साहब से मिलने चल दिये। इतनी बड़ी कारगुजारी दिखाने में विलम्ब क्यों करते? डिप्टी से एकान्त में खूब ज़ोट उड़ायी। इस आदमी का यों पता लगाया। उसकी सूरत देखते ही भाँप गया कि मफ़रूर है। बस गिरफ्तार ही तो कर लिया। बात सोलहों आने सच निकली, निगाह कहीं चूक सकती है? हुजूर, मुजरिम की आँखें पहचानता हूँ। इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी के रुपये ग़बन कर के भागा है। इस मामले में शहादत देने को तैयार है। आदमी पढ़ा-लिखा, सूरत का शरीफ़ और ज़हीन है।

डिप्टी ने सन्दिग्ध भाव से कहा—हाँ, आदमी तो होशियार मालूम होता है।

'मगर मुआफ़ी-नामा लिये बग़ैर इसे हमारा एतबार न होगा। कहीं इसे यह शुबहा हुआ, कि हम लोग इसके साथ कोई चाल चल रहे हैं, तो साफ़ निकल जायगा।'

डिप्टी—यह तो होगा ही। गवर्नमेंट से इसके बारे में बात-चीत करना होगा। आप टेलीफोन मिलाकर इलाहाबाद पुलिस से पूछिये कि इस आदमी पर कैसा मुक़दमा है। यह सब तो गवर्नमेंट को बतलाना होगा। दारोगाजी ने टेलीफोन डाइरेक्टरी देखी, नम्बर मिलाया और बात-चीत शुरू हुई।

डिप्टी—क्या बोला?

दारोगा—कहता है, यहाँ इस नाम के किसी आदमी पर मुक़दमा नहीं है।

डिप्टी—यह कैसा बात हैं भाई, कुछ समझ में नहीं आता। इसने नाम तो नहीं बदल दिया?

दारोगा—कहता है, म्युनिसिपैलिटी में किसी ने रुपये ग़बन नहीं किये। कोई मामला नहीं है।

डिप्टी—यह तो बड़ा ताज्जुब की बात है। आदमी बोलता है, हम रुपया लेकर भागा। म्युनिसिपैलिटी बोलता है, कोई रुपया ग़बन नहीं किया। यह आदमी पागल तो नहीं है?

दरोगा—मेरी समझ में कोई बात नहीं आती। अगर कह दें कि तुम्हारे ऊपर कोई इल्ज़ाम नहीं है, तो फिर उसकी गन्ध भी न मिलेगी।

'अच्छा, म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर से पूछिए।'

दारोगा ने फिर नम्बर मिलाया। सवाल-जवाब होने लगा।

दारोगा—आपके यहाँ रमानाथ नाम का कोई क्लर्क था?

जवाव—जीं हाँ, था।

दारोगा—वह कुछ रुपया ग़बन करके भागा है?

जवाब—नहीं। वह घर से भागा है, पर ग़बन नहीं किया। क्या वह आपके यहाँ है?

दरोगा—जी हाँ, हमने उसे गिरफ़्तार किया है। वह ख़ुद कहता है कि मैंने रुपये ग़बन किये। बात क्या है?

जवाब—पुलिस तो लालबुझक्कड़ है। जरा दिमाग लड़ाइये।

दारोग़ा—यहाँ तो अक्ल काम नहीं करती।

जवाब—यहीं क्या, कहीं भी नहीं करती। सुनिये, रमानाथ ने मीजान लगाने में गलती की, डरकर भागा। बाद को मालूम हुआ, कि तहबील में कोई कमी न थी? आयी समझ में बात?

डिप्टी—अब क्या करने होगा, खाँ साहब! चिड़िया हाथ से निकल गया।

दारोगा—निकल कैसे जायगी हुजूर? रमानाथ से यह बात कही ही क्यों जाय। बस, उसे किसी आदमी से मिलने न दिया जाय जो बाहर की खबरें पहुँचा सके। घरवालों को उसका पता अब लग जायेगा ही। कोई न कोई जरूर उसकी तलाश में आयेगा। किसी को न आने दें। तहरीर में कोई बात न लायी जाय। जबानी इतमीनान दिया जाय। कह दिया जाय, कमिश्नर साहब को माफीनामे के लिए रिपोर्ट की है। इन्स्पेक्टर साहब से भी राय ले ली जाय।

इधर तो वह लोग सुपरिंटेंडेंट से परामर्श कर रहे थे, उधर एक घण्टे में देवीदीन लौटकर थाने आया तो कांसटेबल ने कहा—दारोगा जी तो साहब के पास गये।

देवीदीन ने घबड़ाकर कहा—तो बाबूजी को हिरासत में डाल दिया?

कांसटेबल—नहीं, उन्हें भी साथ ले गये।

देवीदीन ने सिर पीटकर कहा—पुलिसवालों की बात का कोई भरोसा नहीं। कहा गया कि एक घंटे में रुपये लेकर आता हूँ, मगर इतना भी सबर न हुआ। सरकार से पाँच ही सौ तो मिलेंगे। मैं छ: सौ देने को तैयार हूँ। हाँ, सरकार में कारगुजारी हो जायगी और क्या। वहीं से उन्हें परागराज भेज देंगे। मुझसे भेंट भी न होगी। बुढ़िया रो-रोकर मर जायगी। यह कहता हुआ देवीदीन वहीं जमीन पर बैठ गया।

कांसटेबल—तो यहाँ कब तक बैठे रहोगे ?

देवीदीन ने मानो कोड़े की चोट से आहत होकर कहा—अब दारोगाजी से दो-दो बातें करके ही जाऊँगा। चाहे जेहल ही जाना पड़े पर फटकारूँगा जरूर, बुरी तरह फटकारूँगा। आखिर उनके भी तो बाल-बच्चे होंगे। क्या भगवान को जरा भी नहीं डरते ? तुमने बाबूजी को जाती बार देखा था ? बहुत रंजीदा थे ?

कांसटेबल—रंजीदा तो नहीं थे, ख़ासी तरह से हँस रहे थे। दोनों जने मोटर में बैठकर गये हैं।

देवीदीन ने अविश्वास के भाव कहा—हँस क्या रहे होंगे बेचारे ! मुँह से चाहे हँस लें, दिल तो रोता ही होगा।

देवीदीन को यहाँ बैठे एक घण्टा भी न हुआ था कि सहसा जग्गो आ खड़ी हुई। देवीदीन को द्वार पर बैठे देखकर बोली—तुम यहाँ क्या करने लगे ? भैया कहाँ हैं ?

देवीदीन ने मर्माहत होकर कहा—भैया को ले गये सुपरिंटेंडेंट के पास। न जाने भेंट होती है कि ऊपर-ही-ऊपर परागराज भेज दिये जाते हैं।

जग्गो—दारोगाजी भी बड़े वह हैं। कहाँ तो कहा कि इतना लेंगे, कहाँ लेकर चल दिये।

देवी०—इसीलिए तो बैठा हूँ कि आवें तो दो-दो बातें कर लूँ।

जग्गो—हाँ, फटकारना जरूर। जो अपनी बात का नहीं, वह अपने बाप का क्या होगा ? मैं तो खरी कहूँगी। मेरा क्या कर लेंगे ?

देवी०—दूकान पर कौन है ?

जग्गो—बन्द कर आयी हूँ। अभी बेचारे ने कुछ खाया भी नहीं। सबेरे

से वैसे ही हैं। चूल्हे में जाय वह तमाशा! उसी के लिए टिकट लेने जाते थे। न घर से निकलते न यह बला सिर पड़ती।

देवी०—जो उधर ही से पराग भेज दिया तो?

जग्गो—तो चिट्ठी तो आवेगी ही। चलकर वहीं देख आवेंगे।

देवी०—(आँखों में आँसू भरकर) सजा हो जायगी तो?

जग्गो—रुपया जमा कर देंगे तब काहे को सजा होगी। सरकार अपने रुपये ही तो लेगी?

देवी०—नहीं पगली, ऐसा नहीं होता। चोर माल लौटा दे तो वह छोड़ थोड़े ही दिया जायगा!

जग्गो ने परिस्थिति की कठोरता का अनुभव करके कहा—दारोगाजी....

वह अभी बात भी पूरी न करने पायी थी कि दारोगाजी की मोटर सामने आ पहुँची। इन्स्पेक्टर साहब भी थे। रमा इन दोनों को देखते ही मोटर से उतरकर आया और प्रसन्नमुख से बोला—तुम यहाँ देर से बैठे हो क्या दादा? आओ कमरे में चलो। अम्मा, तुम कब आयीं?

दारोगाजी ने विनोद करके कहा—कहो चौधरी लाये रुपये?

देवी०—जब कह गया कि मैं थोड़ी देर में आता हूँ, तो आपको मेरी राह देख लेनी चाहिए थी। चलिए अपने रुपए लीजिए।

दारोगा—खोदकर निकाले होंगे?

देवी० – आपके अकबाल से हजार-पाँच सौ अभी ऊपर हो निकल सकते हैं। ज़मीन खोदने की जरूरत नहीं पड़ी। चलो भैया, बुढ़िया कब से खड़ी है, मैं रुपये चुकाकर आता हूँ। यह तो इसपिट्टर साहब थे न? पहले इसी थाने में थे।

दारोगा—तो भई, अपने रुपये ले जाकर उसी हाँड़ी में रख दो। अफ-सरों की सलाह हुई कि इन्हें छोड़ना न चाहिए। मेरे बस की बात नहीं है।

इन्स्पेक्टर साहब तो पहले ही दफ्तर में चले गये थे। ये तीनों आदमी बातें करते उसके बगलवाले कमरे में गये।

देवीदीन ने दरोगा की बात सुनी, तो उसकी भौहें तिरछी हो गयीं। बोला—दारोगाजी मरदों की एक बात होती है, मैं तो यही जानता हूँ। मैं

रुपये आपके हुक्म से लाया हूँ। आपको अपना क़ौल पूरा करना पड़ेगा। कहके मुकर जाना नीचों का काम है।

इतने कठोर शब्द सुनकर दारोग़ाजी को भन्ना जाना चाहिए था; पर उन्होंने ज़रा भी बुरा न माना। हँसते हुए बोले—भई, अब चाहे नीच कहो चाहे दग़ाबाज़; पर हम इन्हें छोड़ नहीं सकते। ऐसे शिकार रोज़ नहीं मिलते। कौल के पीछे अपनी तरक्क़ी नहीं छोड़ सकता।

दारोगा के हँसने पर देवीदीन और भी तेज हुआ—तो आपने कहा किस मुँह से था?

दारोगा—कहा तो इसी मुँह से था, लेकिन मुँह हमेशा एक-सा तो नहीं रहता। इसी मुँह से जिसे गाली देता हूँ, उसकी इसी मुँह से तारीफ भी करता हूँ।

देवी०—(तिनककर) यह मूछें मुड़वा डालिए।

दारोगा—मुझे बड़ी खुशी से मंजूर है। नीयत तो मेरी पहले ही थी, पर शर्म के मारे न मुड़वाता था। अब तुमने दिल मजबूत कर दिया।

देवी०—हँसिए मत दारोगाजी, आप हँसते हैं और मेरा खून जला जाता है। मुझे चाहे जेहल ही क्यों न हो जाय लेकिन मैं कप्तासाहब से जरूर कह दूँगा। हूँ तो टके का आदमी, पर आपके अकबाल से बड़े बड़े अफ़सरों तक पहुँच है!

दारोगा—अरे यार, तो क्या सचमुच कप्तान साहब से मेरी शिकायत कर दोगे?

देवीदीन ने समझा कि धमकी कारगर हुई। अकड़कर बोला—आप जब किसी की नहीं सुनते, बात कहकर मुकर जाते हैं, तो दूसरे भी अपनी-सी करेंगे ही। मेमसाहब तो रोज़ ही दूकान पर आती हैं।

दारोगा—अगर तुमने साहब या मेम साहब से मेरी कुछ भी शिकायत की, तो क़सम खाकर कहता हूँ, घर खुदवाकर फेंक दूँगा।

देवी०—जिस दिन मेरा घर खुदेगा, उस दिन यह पगड़ी और चपरास भी न रहेगी हुजूर।

दारोगा—अच्छा तो मारो हाथ पर हाथ! हमारी तुम्हारी दो-दो चोटें हो जायँ, यही सही!

देवी—पछताओगे सरकार, कहे देता हूँ, पछताओगे।

रमा अब ज़ब्त न कर सका। अब तक वह देवीदीन के बिगड़ने का तमाशा देखने के लिए भीगी बिल्ली-सा बना खड़ा था। कहकहा मारकर बोला—दादा, दारोगाजी तुम्हें चिढ़ा रहे हैं! हम लोगों में ऐसी सलाह हो गयी है कि मैं बिना कुछ दिये-लिये ही छूट जाऊँगा, ऊपर से नौकरी भी मिल जायगी। साहब ने पक्का वायदा किया है। मुझे अब यहीं रहना होगा।

देवीदीन ने रास्ता भटके हुए आदमी की भाँति कहा—कैसी बात है भैया, क्या कहते हो? क्या पुलिसवालों के चकमे में आ गये? इसमें कोई-न-कोई चाल ज़रूर छिपी होगी।

रमा ने इतमीनान के साथ कहा—और कोई बात नहीं, एक मुकदमे में शहादत देनी पड़ेगी।

देवीदीन ने संशय से सिर हिलाकर कहा—झूठा मुकदमा होगा।

रमा०—नहीं दादा, बिल्कुल सच्चा मामला है। मैंने पहले ही पूछ लिया है।

देवीदीन की शंका न शान्त हुई। बोला—मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता भैया, जरा सोच-समझकर काम करना। अगर मेरे रुपयों को डरते हो तो यही समझ लो कि देवीदीन ने अगर रुपयों की परवाह की होती, तो आज लखपती होता। इन्हीं हाथों से सौ-सौ रुपये रोज कमाये और सब-के-सब, उड़ा दिये हैं। किस मुकदमे में शहादत देनी है? कुछ मालूम हुआ?

दारोगाजी ने रमा को जवाब देने का अवसर न देकर कहा—वही डकैतियोंवाला मुआमला है जिसमें कई ग़रीब आदमियों की जान गयी थी। इन डाकुओं ने सूबे-भर में हंगामा मचा रखा था। उनके डर के मारे कोई आदमी गवाही देने पर राजी नहीं होता।

देवीदीन ने उपेक्षा के भाव से कहा—अच्छा, तो यह कहो मुख़बिर बन गये? यह बात है! इसमें तो जो पुलिस सिखायेगी वही तुम्हें कहना पड़ेगा, भैया। मैं छोटी समझ का आदमी हूँ, इन बातों का मरम क्या जानूँ; पर मुखबिर बनने को कहा जाता, तो मैं न बनता, चाहे कोई लाख रुपये देता। बाहर के आदमी को क्या मालूम कौन अपराधी है, कौन बेक़सूर है। दो-चार अपराधियों के साथ दो-चार बेक़सूर भी जरूर होंगे।

दारोगा—हर्गिज़ नहीं। जितने आदमी पकड़े गये हैं, सब पक्के डाकू हैं।

देवी०—यह तो आप कहते हैं न, हमें क्या मालूम।

दारोगा—हम लोग बेगुनाहों को फँसायेंगे ही क्यों? यह तो सोचो।

देवी०—यह सब भुगते बैठा हूँ, दारोगाजी। इससे तो यही अच्छा है कि आप इनका चालान कर दें। साल-दो-साल का जेहल ही तो होगा। एक अधरम के डण्ड से बचने के लिए गुनाहों का खून तो सिर पर न चढ़ेगा।

रमा ने भीरुता से कहा—मैंने खूब सोच लिया है दादा, सब कागज़ देख लिये हैं, इसमें कोई बेगुनाह नहीं है।

देवीदीन ने उदास होकर कहा—होगा भाई। जान भी तो प्यारी होती

यह कहकर वह पीछे घूम पड़ा। अपने मनोभावों को इससे स्पष्ट रूप में वह प्रकट न कर सकता था।

एकाएक उसे एक बात याद आ गयी। मुड़कर बोला—तुम्हें कुछ रुपये देता जाऊँ?

रमा ने खिसियाकर कहा—क्या ज़रूरत है?

दारोगा—आज से इन्हें यहीं रहना पड़ेगा।

देवीदीन ने कर्कश स्वर में कहा—हुजूर, इतना जानता हूँ। इनकी दावत होगी, बँगला रहने को मिलेगा, नौकर मिलेंगे, मोटर मिलेगी। यह सब जानता हूँ। कोई बाहर का आदमी इनसे न मिलने पायेगा, न यह अकेले कहीं आ-जा सकेंगे। यह सब देख चुका हूँ।

यह कहता हुआ देवीदीन तेजी से क़दम उठाता हुआ चल दिया, मानो यहाँ उसका दम घुट रहा हो। दारोगा ने उसे पुकारा; पर उसने फिर कर न देखा। उसके मुख पर पराभूत वेदना छायी हुई थी। जग्गो ने पूछा—भैया नहीं आ रहे हैं?

देवीदीन ने सड़क की ओर ताकते हुए कहा—भैया अब नहीं आवेंगे। जब अपने ही अपने न हुए तो बेगाने तो बेगाने हैं ही।

वह चला गया। बुढ़िया भी पीछे-पीछे भुनभुनाती चली।

३५

रुदन में कितना उल्लास, कितनी शान्ति, कितना बल है। जो कभी

एकांत में बैठकर, किसी की स्मृति, किसी के वियोग में सिसक-सिसक और बिलख-बिलख कर नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है, जिस पर सैकड़ों हँसियां न्योछावर हैं ! उस मीठी वेदना का आनन्द उन्हीं से पूछो, जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हँसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है, मानो हम थक गये हों, पराभूत हो गये हों। रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन जीवन, एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है। जालपा के पास 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र पहुँचा, तो उसे पढ़कर वह रो पड़ी। पत्र एक हाथ में लिये, दूसरे हाथ से चौखट पकड़े, वह खूब रोयी। क्या सोचकर रोयी, यह कौन कह सकता है ? कदाचित् अपने उपाय की इस आशातीत सफलता ने उसकी आत्मा को विह्वल कर दिया, आनन्द की उस गहराई पर पहुँचा दिया, जहाँ पानी है या उस ऊँचाई पर जहाँ उष्णता हिम बन जाती है। आज छः महीने के बाद यह सुख-संवाद मिला। इतने दिनों वह छलमयी आशा और कठोर दुराशा का खिलौना बनी रही। आह ! कितनी बार उसके मन में तरंग उठी कि इस जीवन का क्यों न अंत कर दूँ ! कहीं मैंने सचमुच प्राण त्याग दिये होते, तो उनके दर्शन भी न पाती ! पर उनका हिया कितना कठोर है। छः महीने से वहाँ बैठे हैं, एक पत्र भी नहीं लिखा, खबर तक नहीं ली। आखिर यह न समझ लिया होगा, कि बहुत होगा रो-रोकर मर जायगी। उन्होंने मेरी परवा ही कब की ! दस-बीस रुपये तो आदमी यार-दोस्तों पर भी खर्च कर देता है। वह प्रेम नहीं है। प्रेम हृदय की वस्तु है, रुपये की नहीं। जब तक रमा का कुछ पता न था, जालपा सारा इलजाम अपने सिर पर रखती थी; पर आज उनका पता पाते ही उसका मन अकस्मात् कठोर हो गया। तरह-तरह के शिकवे पैदा होने लगे। वहाँ क्या समझकर बैठे हैं ? इसीलिए तो कि वह स्वाधीन हैं, आजाद हैं, किसी का दिया नहीं खाते। इसी तरह मैं कहीं बिना कहे-सुने चली जाती, तो वह मेरे साथ किस तरह पेश आते ? शायद तलवार लेकर गर्दन पर सवार हो जाते या ज़िन्दगी भर मुँह न देखते। वहीं-खड़े-खड़े जालपा ने मन-ही-मन शिकायतों का दफ्तर खोल दिया।

सहसा रमेश बाबू ने द्वार पर पुकारा—गोपी, गोपी, जरा इधर आना।

मुंशीजी ने अपने कमरे में पड़े-पड़े कराहकर कहा—कौन है भाई,

कमरे में आ जाओ। अरे! आप हैं रमेश बाबू! बाबूजी, मैं तो मरकर जिया हूँ। बस, यही समझिये कि नयी जिन्दगी हुई। कोई आशा न थी। कोई आगे न कोई पीछे; दोनों लौंडे आवारा हैं, मरूँ या जीऊँ, उनसे मतलब नहीं, उनकी माँ को मेरी सूरत देखते डर लगता है। बस, बेचारी बहू ने मेरी जान बचायी। वह न होती, तो अब तक चल बसा होता!

रमेश बाबू ने कृत्रिम समवेदना दिखाते हुए कहा—आप इतने बीमार हो गये और मुझे खबर तक न हुई! मेरे यहाँ रहते आपको इतना कष्ट हुआ! बहू ने मुझे एक पुरजा न लिख दिया। छुट्टी लेनी पड़ी होगी?

मुंशीजी—छुट्टी के लिए दरख्वास्त तो भेज दी थी; मगर साहब, मैंने डाक्टरी सार्टीफिकेट नहीं भेजी। सोलह रुपये किसके घर से लाता। एक दिन सिविल सर्जन के पास गया; मगर उन्होंने चिट्ठी लिखने से इन्कार किया। आप तो जानते ही हैं, वह बिना फीस लिये बात नहीं करते। मैं चला आया और दरख्वास्त भेज दी। मालूम नहीं, मंजूर हुई या नहीं। यह तो डाक्टरों का हाल है। देख रहे हैं, कि आदमी मर रहा है; पर बिना भेंट लिये क़दम न उठायेंगे!

रमेश बाबू ने चिन्तित होकर कहा—यह तो आपने बड़ी बुरी खबर सुनायी। अगर आपकी छुट्टी नामंजूर हुई तो क्या होगा?

मुंशीजी ने माथा ठोंककर कहा—होगा क्या, घर बैठ रहूँगा। साहब पूछेंगे तो साफ़ कह दूँगा, मैं सर्जन के पास गया था, उसने चिट्ठी नहीं दी। आखिर इन्हें क्यों सरकार ने नौकर रखा है। महज कुरसी की शोभा बढ़ाने के लिए? मुझे डिसमिस हो जाना मंजूर है; पर सार्टीफिकेट न दूँगा। लौंडे ग़ायब हैं। आपके लिए पान तक लानेवाला कोई नहीं। क्या करूँ

रमेश ने मुसकराकर कहा—मेरे लिए आप तरद्दुद न करें। मैं आज पान खाने नहीं, भर-पेट मिठाई खाने आया हूँ। (जालपा को पुकारकर) बहूजी, तुम्हारे लिए खुशखबरी लाया हूँ। मिठाई मँगवा लो।

जालपा ने पान की तश्तरी उनके सामने रखकर कहा—पहले वह खबर सुनाइए। शायद आप जिस खबर को नयी समझ रहे हों, वह पुरानी हो गयी हो!

रमेश—जी, कहीं हो न ! रमानाथ का पता चल गया । कलकत्ते में हैं ।

जालपा—मुझे पहले ही मालूम हो चुका है ।

मुंशीजी झपटकर उठ बैठे । उनका ज्वर मानो भागकर उत्सुकता की आड़ में जा छिपा । रमेश का हाथ पकड़कर बोले—मालूम हो गया कलकत्ते में हैं ? कोई ख़त आया था ?

रमेश—खत नहीं था, एक पुलिस इंक्वायरी थी । मैंने कह दिया, उन पर किसी तरह का इल्जाम नहीं है । तुम्हें कैसे मालूम हुआ बहूजी ?

जालपा ने अपनी स्कीम बयान की । 'प्रजा-मित्र' कार्यालय का पत्र भी दिखाया । पत्र के साथ रुपयों की एक रसीद थी जिस पर रमा का हस्ताक्षर था ।

रमेश—दस्तखत तो रमा बाबू का है, बिल्कुल साफ । धोखा हो ही नहीं सकता । मान गया बहूजी तुम्हें । वाह, क्या हिकमत निकाली है ! हम सबके कान काट लिये । किसी को न सूझी । अब सोचते हैं, तो मालूम होता है, कितनी आसान बात थी । किसी को जाना चाहिये, जो बचा को पकड़कर घसीट लाये ।

यही बातचीत हो रही थी कि रतन आ पहुँची—जालपा उसे देखते ही वहां से निकली और उसके गले से लिपटकर बोली—बहन, कलकत्ते से पत्र आ गया है । वहीं हैं ।

रतन—मेरे सिर की क़सम ?

जालपा—हां, सच कहती हूँ । ख़त देखो न !

रतन—तो तुम आज ही चली जाओ ।

जालपा—यही तो मैं भी सोच रही हूँ । तुम चलोगी ?

रतन—चलने को तो मैं तैयार हूँ; लेकिन अकेला घर किस पर छोड़ूं । बहन, मुझे मणिभूषण पर कुछ शुबहा होने लगा है । उसकी नियत अच्छी नहीं मालूम होती । बैंक में बीस हजार रुपये से कम न थे । सब न जाने कहाँ उड़ा दिये । कहता है, क्रिया-कर्म में खर्च हो गये । हिसाब मांगती हूँ, तो आंखें दिखाता है । दफ्तर की कुंजी अपने पास रखे हुए है । मांगती हूँ, तो टाल जाता है । मेरे साथ कोई कानूनी चाल चल रहा है । डरती हूँ, मैं

उधर जाऊँ इधर यह सब-कुछ ले-देकर चलता बने। बँगले के गाहक आ रहे हैं। मैं भी सोचती हूँ, गाँव में जाकर शांति से पड़ी रहूँ। बँगला बिक जायगा तो नकद रुपये हाथ आ जायँगे। मैं न रहूँगी, तो शायद ये रुपये मुझे देखने को भी न मिलें। गोपी को साथ लेकर आज ही चली जाओ। रुपये का इन्तजाम मैं कर दूँगी।

जालपा—गोपीनाथ तो शायद न जा सकें। दादा की दवा-दारू के लिए भी तो कोई चाहिये।

रतन—वह मैं कर दूँगी। मैं रोज़ सबेरे आ जाऊँगी और दवा देकर चली जाऊँगी। शाम को भी एक बार देख जाया करूँगी।

जालपा ने मुसकराकर कहा—और दिन भर उनके पास बैठा कौन रहेगा?

रतन—मैं थोड़ी देर बैठी भी रहा करूँगी; मगर तुम आज ही जाओ। बेचारे वहाँ न-जाने किस दशा में होंगे। तो यही तय रही न?

रतन मुंशीजी के कमरे में गयी, तो रमेश बाबू उठकर खड़े हो गये और बोले—आइए देवीजी, रमा बाबू का पता चल गया।

रतन—इसमें आधा श्रेय मेरा है।

रमेश—आपकी सलाह से तो हुआ ही होगा। अब उन्हें यहाँ लाने की फ़िक्र करनी है।

रतन—जालपा चली जायँ और पकड़ लायें। गोपी को साथ लेती जायें। आपको इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है, दादाजी?

मुंशीजी को आपत्ति तो थी, उनका बस चलता तो इस अवसर पर दस-पांच आदमियों को और जमा कर लेते; फिर घर के आदमियों के चले जाने पर क्यों आपत्ति न होती। मगर समस्या ऐसी आ पड़ी थी, कि कुछ बोल न सके।

गोपी कलकत्ते की सैर का ऐसा अच्छा अवसर पाकर क्यों न खुश होता। विश्वम्भर दिल में ऐंठकर रह गया। विधाता ने उसे छोटा न बनाया होता, तो आज उसकी यह हक़तलफ़ी न होती। गोपी ऐसे कहां के बड़े होशियार हैं, जहाँ जाते हैं कोई-न-कोई चीज खो आते हैं। हाँ, मुझसे बड़े हैं। इस दैवी विधान ने उसे मजबूर कर दिया।

रात को सात बजे जालपा चलने को तैयार हुई। सास-ससुर के चरणों पर सिर झुकाकर आशीर्वाद लिया, विश्वम्भर रो रहा था, उसे गले लगाकर प्यार किया और मोटर पर बैठी। रतन स्टेशन तक पहुँचाने आयी थी।

मोटर चली तो जालपा ने कहा—बहन, कलकत्ता तो बहुत बड़ा शहर होगा। वहां कैसे पता चलेगा?

रतन—पहले 'प्रजा-मित्र' के कार्यालय में जाना। वहां पता चल जायगा। गोपी बाबू तो हैं ही।

जालपा—ठहरूँगी कहां?

रतन—धर्मशाले हैं। नहीं तो होटल में ठहर जाना। देखो, रुपये की जरूरत पड़े, तो मुझे तार देना; कोई-न-कोई इन्तजाम करके भेजूँगी। बाबूजी आ जायँ, तो मेरा बड़ा उपकार हो। मणिभूषण मुझे तबाह कर देगा।

जालपा—होटलवाले बदमाश तो न होंगे?

रतन—कोई जरा भी शरारत करे, तो ठोकर मारना। बस, कुछ पूछना मत। ठोकर जमाकर तब बात करना। (कमर से एक छुरी निकालकर) इसे अपने पास रख लो। कमर में छिपाये रखना। मैं जब कभी बाहर निकलती हूँ, तो इसे अपने पास रख लेती हूँ, इससे दिल बड़ा मजबूत रहता है। जो मर्द किसी स्त्री को छेड़ता है, उसे समझ लो पल्ले सिरे का कायर, नीच और लम्पट है। तुम्हारी छुरी की चमक और तुम्हारे तेवर देखकर ही उसकी रूह फ़ना हो जायेगी। सीधा दुम दबाकर भागेगा; लेकिन अगर ऐसा मौका आ ही पड़े जब तुम्हें छुरी से काम लेने के लिए मजबूर हो जाना पड़े, तो जरा भी मत झिझकना। छुरी लेकर पिल पड़ना। इसकी बिलकुल फ़िक्र मत करना, कि क्या होगा, क्या न होगा। जो कुछ होना होगा, हो जायगा।

जालपा ने छुरी ले ली; पर कुछ बोली नहीं। उसका दिल भारी हो रहा था। इतनी बातें सोचने और पूछने की थीं, कि उनके विचार से ही उसका दिल बैठा जाता था।

स्टेशन आ गया। कुलियों ने असबाब उतारा। गोपी टिकट लाया। जालपा पत्थर की मूर्ति की भांति प्लेटफार्म पर खड़ी रही, मानो चेतना-

शून्य हो गयी हो। किसी बड़ी परीक्षा के पहले हम मौन हो जाते हैं, हमारी सारी शक्तियां उस संग्राम की तैयारी में लग जाती हैं।

रतन ने गोपी से कहा—होशियार रहना।

गोपी इधर कई महीनों से कसरत करता था। चलता तो मोढ़े और छाती को देखा करता। देखनेवालों को तो वह ज्यों-का-त्यों मालूम होता है, पर अपनी नजर में वह कुछ और हो गया था। शायद उसे आश्चर्य होता था, कि उसे आते देखकर क्यों लोग रास्ते से नहीं हट जाते, क्यों उसके डील-डौल से भयभीत नहीं हो जाते। अकड़कर बोला—किसी ने जरा भी चीं-चपड़ की तो हड्डी तोड़ दूँगा।

रतन मुसकराई और बोली—यह तो मुझे मालूम है। सो मत जाना।

गोपी—पलक तक तो झपकेगी नहीं। मजाल है, नींद आ जाय!

गाड़ी आ गयी। गोपी ने एक डिब्बे में घुसकर कब्जा जमाया! जालपा की आंखों में आँसू भरे हुए थे। बोली—बहन, आशीर्वाद दो कि उन्हें लेकर कुशल से लौट आऊँ।

इस समय उसका दुर्बल मन कोई आश्रय, कोई सहारा, कोई बल ढूंढ़ रहा था और आशीर्वाद और प्रार्थना के सिवा यह बल उसे और कौन प्रदान करता। यही बल और शान्ति का वह अक्षय भण्डार है जो किसी को निराश नहीं करता, जो सबकी बांह पकड़ता है, सबका बड़ा पार लगाता है।

इंजिन ने सीटी दी। दोनों सहेलियां गले मिलीं। जालपा गाड़ी में बैठी।

रतन ने कहा—जाते-ही-जाते खत भेजना।

जालपा ने सिर हिलाया।

'अगर मेरी जरूरत मालूम हो, तो तुरन्त लिखना। मैं सब-कुछ छोड़-कर चली आऊँगी।'

जालपा ने सिर हिला दिया।

'रास्ते में रोना मत।'

जालपा हँस पड़ी। गाड़ी चल दी।

३६

देवीदीन ने चाय की दूकान उसी दिन से बन्द कर दी थी; और दिन-भर उस अदालत की खाक छानता फिरता था जिसमें डकैती का मुक़दमा पेश

था और रमानाथ की शहादत ही रही थी। तीन दिन रमा की शहादत बराबर होती रही और तीनों दिन देवीदीन ने न कुछ खाया और न सोया। आज भी उसने घर आते-ही-आते कुरता उतार दिया और एक पंखिया लेकर झलने लगा। फागुन लग गया था और कुछ-कुछ गर्मी शुरू हो गई थी; पर इतनी गर्मी न थी कि पसीना बहे या पंखे की जरूरत हो। अफ़सर लोग तो जाड़ों के कपड़े पहने हुए थे; लेकिन देवीदीन पसीने में तर था। उसका चेहरा, जिस पर निष्कपट बुढ़ापा हँसता रहता था, खिसियाया हुआ था, मानो बेगार से लौटा हो!

जग्गो ने लोटे में पानी लाकर रख दिया और बोली—चिलम रख दूँ? देवीदीन की आज तीन दिन से यह खातिर हो रही थी। इसके पहले बुढ़िया कभी चिलम रखने को न पूछती थी। देवीदीन इसका मतलब समझता था। बुढ़िया को सदय नेत्रों से देखकर बोला—नहीं, रहने दो, चिलम न पीऊँगा।

'तो मुंह-हाथ तो धो लो, गर्द पड़ी हुई है।'

'धो लूंगा, जल्दी क्या है!'

बुढ़िया आज का हाल जानने को उत्सुक थी; पर डर रही थी, कहीं देवीदीन झुंझला न पड़े। वह उसकी थकान मिटा देना चाहती थी, जिससे देवीदीन प्रसन्न होकर आप-ही-आप सारा वृत्तान्त कह चले।

'तो कुछ जलपान कर लो। दोपहर को भी तो कुछ नहीं खाया था। मिठाई लाऊँ? लाओ, पंखी मुझे दे दो।'

देवीदीन ने पंखिया दे दी। बुढिया झलने लगी। दो-तीन मिनट आँखें बन्द करके बैठे रहने के बाद देवीदीन ने कहा—आज भैया की गवाही खतम हो गयी।

बुढ़िया का हाथ रुक गया। बोली—तो कल से घर आ जायँगे?

देवी०—अभी नहीं छुट्टी मिली जाती। यही बयान दिवानी में देना पड़ेगा। और अब वह यहाँ आने ही क्यों लगे। कोई अच्छी जगह मिल जायगी, घोड़े पर चढ़े-चढ़े घूमेंगे! मगर है बड़ा पक्का मतलबी। पन्द्रह बेगुनाहों को फँसा दिया। पाँच-छः को तो फाँसी हो जायगी, औरों को दस-दस बारह-बारह साल की सजा मिली रखी है। इसी के बयान से मुकदमा साबित हो गया। कोई कितनी ही जिरह करे, क्या मतलब, जो जरा भी

हिचकिचाये ! अब एक भी न बचेगा ! किसने कर्म किया किसने नहीं किया, इसका हाल दैव जाने; पर मारे सब जायेंगे । घर से भी सरकारी रुपया खाकर भागा था । हमें धोखा हुआ ।

जग्गो ने मीठे तिरस्कार से देखकर कहा—अपनी नेकी-बदी अपने साथ है । मतलबी तो संसार है, फिर कौन किसके लिए मरता है ।

देवीदीन ने तीव्र स्वर में कहा—अपने मतलब के लिए जो दूसरों का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं है ।

सहसा दो प्राणी आकर खड़े हो गये । एक गोरा, खूबसूरत लड़का था, जिसकी उम्र पन्द्रह-सोलह से ज्यादा न थी । दूसरा अधेड़ था और सूरत से चपरासी मालूम होता था ।

देवीदीन ने पूछा—किसे खोजते हो ?

चपरासी ने कहा—तुम्हारा ही नाम देवीदीन है न ? मैं 'प्रजा-मित्र' के दफ्तर से आया हूँ । यह बाबू, उन्हीं रमानाथ के भाई हैं, जिन्हें शतरंज का इनाम मिला था । यह उन्हीं की खोज में दफ्तर गये थे । सम्पादकजी ने तुम्हारे पास भेज दिया । तो मैं जाऊँ न ?

यह कहता हुआ वह चला गया । देवीदीन ने गोपी को सिर से पाँव तक देखा । आकृति रमा से मिलती थी । बोला—आओ बेटा, बैठो । कब आये घर से ?

गोपी ने एक खटिक की दूकान पर बैठना शान के खिलाफ समझा । खड़ा-खड़ा बोला—आज ही तो आया हूँ । भाभी साथ हैं । धर्मशाले में ठहरा हुआ हूँ ।

देवीदीन ने खड़े होकर कहा—जाकर बहू को यहीं लाओ न ! ऊपर तो रमा बाबू का कमरा है ही, आराम से रहो । धर्मशाले में क्यों रहोगे ? नहीं, चलो, मैं भी चलता हूँ । यहाँ सब तरह का आराम है ।

उसने जग्गो को यह खबर सुनायी और ऊपर झाड़ू लगाने को कहकर गोपी के साथ धर्मशाले चल दिया । बुढ़िया ने तुरन्त ऊपर झाड़ू लगायी, हलवाई की दूकान से मिठाई और दही लायी । सुराही में पानी भरकर रख दिया । फिर अपना हाथ-मुँह धोया, एक रंगीन साड़ी निकाली, गहने पहने और बन-ठनकर बहू की राह देने लगी ।

इतने में फिटन भी आ पहुँची। बुढ़िया ने जाकर जालपा को उतरा। जालपा पहले तो साग-भाजी की दूकान देखकर कुछ झिझकी, पर बुढ़िया का स्नेह-स्वागत देखकर उसकी झिझक दूर हो गयी। उसके साथ ऊपर गयी, तो हर एक चीज इस तरह अपनी जगह पर पायी मानो अपना ही घर हो।

जग्गो ने लोटे में पानी रखकर कहा—इसी घर में भैया रहते थे, बेटी! आज पन्द्रह रोज से घर सूना पड़ा हुआ है। मुँह-हाथ धोकर दही-चीनी खा लो न, बेटी! भैया का हाल तो अभी तुम्हें न मालूम हुआ होगा?

जालपा ने सिर हिलाकर कहा—कुछ ठीक-ठीक नहीं मालूम हुआ। वह जो पत्र छपता है, कहाँ मालूम हुआ था कि पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है।

देवीदीन भी ऊपर आ गया था। बोला—गिरफ्तार तो किया था; पर अब तो वह एक मुक़दमे में सरकारी गवाह हो गये हैं। परागराज में अब उन पर कोई मुकदमा न चलेगा और साइत नौकरी-चाकरी भी मिल जाय।

जालपा ने गर्व से कहा—क्या इसी डर से वह सरकारी गवाह हो गये हैं? वहाँ तो उन पर कोई मामला ही नहीं है। मुकदमा क्यों चलेगा?

देवीदीन ने डरते डरते कहा—कुछ रुपये-पैसे का मुआमला था न?

जालपा ने मानो आहत होकर कहा—वह कोई बात न थी। ज्योंही हम लोगों को मालूम हुआ कि कुछ सरकारी रकम इनसे खर्च हो गयी है, उसी वक्त पहुँचा दी। यह व्यर्थ घबराकर चले आये, और फिर ऐसी चुप्पी साधी कि अपनी खबर तक न दी।

देवीदीन का चेहरा जगमगा उठा, मानो किसी व्यथा से आराम मिल गया हो, बोला—तो यह हम लोगों को क्या मालूम! बार-बार समझाया कि घर खत-पत्तर भेज दो, लोग घबराते होंगे; पर मारे शरम के लिखते ही न थे। धोखे में पड़े रहे कि परागराज में मुकदमा चला गया होगा। जानते तो सरकारी गवाह क्यों बनते?

'सरकारी गवाह' का आशय जालपा से छिपा न था। समाज में उसकी जो निन्दा और अपकीर्ति होती है, यह भी उससे छिपी न थी। सरकारी गवाह क्यों बनाये जाते हैं, किस तरह उन्हें प्रलोभन दिया जाता है, किस भाँति वह पुलिस के पुतले बनकर अपने ही मित्रों का गला घोंटते हैं, यह उसे मालूम

था। अगर कोई आदमी अपने बुरे आचरण पर लज्जित होकर सत्य का उद्घाटन करे, छल और कपट का आवरण हटा दे, तो वह सज्जन है, उसके साहस की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है; मगर शर्त यही है कि वह अपनी गोष्ठी के साथ किये का फल भोगने को तैयार रहे, हँसता-खेलता फांसी पर चढ़ जाय। वही सच्चा वीर है। लेकिन अपने प्राणों की रक्षा के लिए स्वार्थ के नीच विचार से दण्ड की कठोरता से भयभीत होकर अपने साथियों से दग़ा करे, आस्तीन का सांप बन जाय, तो वह कायर है, पतित है, बेहया है। विश्वासघात डाकुओं और समाज के शत्रुओं में भी उतना हीं हेय है जितना किसी अन्य क्षेत्र में। ऐसे प्राणी को समाज कभी क्षमा नहीं करता, कभी नहीं। जालपा इसे खूब समझती थी। यहां तो समस्या और भी जटिल हो गयी थी। रमा ने दण्ड के भय से अपने किये हुए पापों का पर्दा नहीं खोला था। उसमें कम-से-कम सच्चाई तो होती, निन्द्य होने पर भी आंशिक सच्चाई का एक गुण तो होता। यहां तो उन पापों का पर्दा खोला गया था, जिनकी हवा तक उसे न लगी थी। जालपा को सहसा इसका विश्वास न आया। अवश्य कोई-न-कोई बात और हुई होगी जिसने रमा को सरकारी गवाह बनने पर मजबूर कर दिया होगा। सकुचाती हुई बोली—क्या यहां भी कोई....कोई बात हो गयी थी?

देवीदीन उसकी मनोव्यथा का अनुभव करता हुआ बोला—कोई बात नहीं। यहां वह मेरे साथ ही परागराज से आये। जब से आये, यहां से कहीं गये नहीं। बाहर निकलते ही न थे। बस, एक दिन निकले और उसी दिन पुलिस ने पकड़ लिया। एक सिपाही को आते देखकर डरे कि मुझी को पकड़ने आ रहा है, भाग खड़े हुए। उस सिपाही को खटका हुआ। उसने शुबहा से गिरफ़्तार कर लिया। मैं भी उनके पीछे थाने में पहुँचा। दारोगा पहले रिसवत मांगते थे; मगर जब मैं घर से रुपये लेकर गया, तो वहां और ही गुल खिल चुका था। अफ़सरों में न जाने क्या बातचीत हुई। उन्हें सरकारी गवाह बना लिया। मुझसे तो भैया ने यही कहा कि इस मुआमले में बिल्कुल झूठ न बोलना पड़ेगा। पुलिस का मुकदमा सच्चा है। सच्ची बात कह देने में क्या हरज है। मैं चुप हो रहा। क्या करता।

जग्गो—न जाने सबों ने कौन-सी बूटी सुंघा दी। भैया तो ऐसे न थे।

दिन भर अम्मा-अम्मा करते रहते थे। दूकान पर सभी तरह के लोग आते थे, मर्द भी औरत भी। क्या मजाल, कि किसी की ओर आंख उठाकर देखा हो।

देवी०—कोई बुराई न थी। मैंने तो ऐसा लड़का ही नहीं देखा। उसी धोखे में आ गये।

जालपा ने एक मिनट सोचने के बाद कहा—क्या उनका बयान हो गया ?

'हां, तीन दिन बराबर होता रहा। आज ख़तम हो गया।'

जालपा ने उद्विग्न होकर कहा—तो अब कुछ नहीं हो सकता ? मैं उनसे मिल सकती हूँ ?

देवीदीन जालपा के इस प्रश्न पर मुसकरा पड़ा। बोला—हां और क्या ! जिसमें जाकर भण्डाफोड़ कर दो। सारा खेल बिगाड़ दो ! पुलिस ऐसी गधी नहीं है। आजकल कोई भी उनसे मिलने नहीं पाता। कड़ा पहरा रहता है।

इस प्रश्न पर इस समय और कोई बातचीत न हो सकती थी। इस गुत्थी को सुलझाना आसान न था। जालपा ने गोपी को बुलाया। वह छज्जे पर खड़ा सड़क का तमाशा देख रहा था। ऐसा शरमा रहा था, मानों ससुराल आया हो, धीरे-धीरे आकर खड़ा हो गया।

जालपा ने कहा—मुँह-हाथ धोकर कुछ खा तो लो। दही तो तुम्हें बहुत अच्छा लगता है।

गोपी लजाकर फिर बाहर चला गया।

देवीदीन ने मुसकराकर कहा—हमारे सामने न खायँगे। हम दोनों चले जाते हैं। तुम्हें जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कह देना, बहूजी। तुम्हारा ही घर है। भैया को तो हम अपना ही समझते थे। और हमारे कौन बैठा हुआ है !

जग्गो ने गर्व से कहा—वह तो मेरे हाथ का बनाया खा लेते थे जरूर। छू तो नहीं गया था !

जालपा ने मुसकराकर कहा—अब तुम्हें भोजन न बनाना पड़ेगा माजी, मैं बना दिया करूँगी।

जग्गो ने आपत्ति की—हमारी बिरादरी में दूसरों के हाथ का खाना मना है बहू। अब चार दिन के लिए बिरादरी में नक्कू क्यों बनूं।

जालपा—हमारी बिरादरी में भी तो दूसरों का खाना मना है ।

जग्गो—तुम्हें यहाँ कौन देखने आता है। फिर पढ़े-लिखे आदमी इन बातों का विचार भी तो नहीं करते। हमारी बिरादरी तो मूरख लोगों की है।

जालपा—यह तो अच्छा नहीं लगता कि तुम बनाओ और मैं खाऊँ। जिसे बहू बनाया, उसके हाथ का खाना पड़ेगा। नहीं खाना था; तो बहू क्यों बनाया ?

देवीदीन ने जग्गो की ओर प्रशंसा-सूचक नेत्रों से देखकर कहा—बहू ने बात तो पते की कह दी। इसका जवाब सोचकर देना। अभी इन लोगों को ज़रा आराम करने दो।

दोनों नीचे चले गये तो गोपी ने आकर कहा—भैया इसी खटिक के यहां रहते थे क्या ? खटिक ही तो मालूम होते हैं।

जालपा ने फटकारकर कहा—खटिक हों या चमार हों, लेकिन हमसे और तुमसे सौ-गुने अच्छे हैं। एक परदेशी को छः महीने तक अपने घर में ठहराया, खिलाया-पिलाया। हममें है इतनी हिम्मत ? यहां तो कोई मेहमान आ जाता है, तो वह भारी हो जाता है। अगर यह नीच हैं, तो हम इनसे कहीं नीच हैं।

गोपी मुँह हाथ धो चुका था। मिठाई खाता हुआ बोला—किसी को ठहरा लेने से कोई ऊँचा नहीं हो जाता। चमार कितना ही दान-पुण्य करे पर रहेगा तो चमार ही !

जालपा—मैं उस चमार को उस पण्डित से अच्छा समझूँगी जो हमेशा दूसरों का धन खाया करता हैं।

जलपान करके गोपी नीचे चला गया। शहर घूमने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जालपा की इच्छा कुछ खाने को न हुई। उसके सामने एक जटिल समस्या खड़ी थी—रमा को कैसे इस दलदल से निकाले। उस निन्दा और उपहास की कल्पना ही से उसका अभिमान आहत हो उठता था। हमेशा के लिए वह सबकी आँखों से गिर जायँगे, किसी को मुँह न दिखा सकेंगे।

फिर, बेगुनाहों का खून किसकी गर्दन पर होगा। अभियुक्तों में न जाने कौन अपराधी हैं, कौन निरपराधी हैं। कितने द्वेष के शिकार हैं, कितने लोभ

के; सभी सज़ा पा जायँगे। शायद दो- चार को फाँसी भी हो जाय। किस पर यह हत्या पड़ेगी?

उसने फिर सोचा; मानो किसी पर हत्या न पड़ेगी। कौन जानता है, हत्या पड़ती है या नहीं। लेकिन अपने स्वार्थ के लिए—ओह! कितनी बड़ी नीचता है! यह कैसे इस बात पर राज़ी हुए? अगर म्युनिसिपैलिटी के मुकदमा चलाने का भय भी था, तो दो-चार साल की कैद के सिवा और क्या होता। उससे बचने के लिए इतनी घोर नीचता पर उतर आये!

अब अगर मालूम भी हो जाय, कि म्युनिसिपैलिटी कुछ नहीं कर सकती, तो अब हो ही क्या सकता है। इनकी शहादत तो हो ही गयी।

सहसा एक बात किसी भारी कील की तरह उसके हृदय में चुभ गयी!

क्यों न यह अपना बयान बदल दें? उन्हें मालूम हो जाय कि म्युनिसिपैलिटी उनका कुछ नहीं कर सकती, तो शायद खुद ही अपना बयान बदल दें। यह बात उन्हें कैसे बतायी जाय? किस तरह सम्भव है?

वह अधीर होकर नीचे उतर आयी और देवीदीन को इशारे से बुलाकर बोली—क्यों दादा, उनके पास कोई खत भी नहीं पहुँच सकता? पहरेवालों को दस-पाँच रुपये देने से तो शायद खत पहुँच जाय।

देवीदीन ने गर्दन हिलाकर कहा—मुश्किल है। पहरे पर बड़े जँचे हुए आदमी रखे गये हैं। मैं दो बार गया था। सबों ने फाटक के सामने खड़ा भी न होने दिया।

'उस बँगले के आस-पास क्या है?'

'एक ओर तो दूसरा बँगला है, एक ओर एक कलमी आम का बाग है, और सामने सड़क है।'

'वह शाम को घूमने-घामने तो निकलते ही होंगे?'

'हाँ, बाहर कुरसी डालकर बैठते हैं। पुलिस के दो-एक अफ़सर भी साथ रहते हैं।'

'अगर कोई उस बाग में छिपकर बैठे, तो कैसा हो। जब उन्हें अकेले देखे, खत फेंक दे। वह जरूर उठा लेंगे।'

देवीदीन ने चकित होकर कहा—हाँ, हो तो सकता है; लेकिन अकेले मिलें तब तो।

जरा और अँधेरा हुआ, तो जालपा ने देवीदीन को साथ लिया और रमानाथ का बँगला देखने चली। एक पत्र लिखकर जेब में रख लिया था। बार-बार देवीदीन से पूछती, अब कितनी दूर है ? अच्छा ! अभी इतनी ही दूर और ! वहाँ हाते में रोशनी तो होगी ही। उसके दिल में लहरें-सी उठने लगीं। रमा अकेले टहलते हुए मिल जायँ, तो क्या पूछना। रूमाल में बाँधकर खत उनके सामने फेंक दूँ। उनकी सूरत बदल गयी होगी।

सहसा उसे एक शंका हो गयी—कहीं वह पत्र पढ़कर भी अपना बयान न बदलें, तब क्या होगा ? कौन जाने अब मेरी याद भी उन्हें है या नहीं। कहीं मुझे देखकर वह मुँह फेर लें तो ? इस शंका से वह सहम उठी। देवीदीन से बोली—क्यों दादा, वह कभी घर की चर्चा करते थे ?

देवीदीन ने सिर हिलाकर कहा—कभी नहीं। मुझसे तो कभी नहीं की। उदास बहुत रहते थे।

इन शब्दों ने जालपा की शंका को और भी सजीव कर दिया। शहर की घनी बस्ती से ये लोग दूर निकल आये थे। चारों ओर सन्नाटा था। दिन भर वेग से चलने के बाद इस समय पवन भी विश्राम कर रहा था। सड़क के किनारे के वृक्ष और मैदान चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में हतोत्साह, निर्जीव से मालूम होते थे। जालपा को ऐसा आभास होने लगा कि उसके प्रयास का कोई फल नहीं है, उसकी यात्रा का कोई लक्ष्य नहीं है। इस अनन्त मार्ग में उसकी दशा उस अनाथ की-सी है, जो मुट्ठी भर अन्न के लिए द्वार-द्वार फिरता है। वह जानता है, अगले द्वार पर उसे अन्न न मिलेगा, गालियाँ ही मिलेंगी, फिर भी वह हाथ फैलाता है, बढ़ती मनाता है। उसे आशा का अवलम्ब नहीं, निराशा ही का अवलम्ब है।

एकाएक सड़क के दाहिनी तरफ बिजली का प्रकाश दिखाई दिया।

देवीदीन ने एक बँगले की ओर उँगली उठाकर कहा—यही उनका बँगला है।

जालपा ने डरते-डरते उधर देखा, मगर बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। कोई आदमी न था। फाटक पर ताला पड़ा हुआ था।

जालपा बोली—यहाँ तो कोई नहीं है।

देवीदीन ने फाटक के अन्दर झांककर कहा—हां, शायद यह बँगला छोड़ दिया।

'कहीं घूमने गये होंगे।'

'घूमने जाते; तो द्वार पर पहरा होता। यह बँगला छोड़ दिया।'

'तो लौट चलें।'

'नहीं, जरा पता लगाना चाहिए, गये कहां।'

बँगले की दाहिनी तरफ़ आमों के बाग में प्रकाश दिखायी दिया। शायद खटिक बागों की रखवाली कर रहा था। देवीदीन ने बाग में आकर पुकारा—कौन है यहाँ? किसने यह बाग लिया है?

एक आदमी आमों की झुरमुट से निकल आया। देवीदीन ने उसे पहचानकर कहा—अरे, तुम हो जंगली। तुमने यह बाग़ लिया है।

जंगली ठिगना-सा गठीला आदमी था, बोला—हां दादा, ले लिया; पर कुछ है नहीं। दण्ड ही भरना पड़ेगा। तुम यहां कैसे आ गये?

'कुछ नहीं, यों ही चला आया था। इस बँगलेवाले आदमी क्या हुए?'

जंगली ने इधर-उधर देखकर कनबतियों में कहा—इसमें वही मुखबिर टिका हुआ था। आज सब चले गये। सुनते हैं, पन्द्रह-बीस दिन में आयेंगे, जब फिर हाईकोर्ट में मुक़दमा पेश होगा। पढ़े-लिखे आदमी भी ऐसे दग़ा-बाज होते हैं दादा! सरासर झूठी गवाही दी। न जाने इसके बाल-बच्चे हैं या नहीं; भगवान को भी नहीं डरा!

जालपा वहीं खड़ी थी। देवीदीन ने जंगली को और जहर उगलने का अवसर न दिया। बोला—तो पन्द्रह-बीस दिन में आयेंगे, खूब मालूम है?

जंगली—हां, पहरेवाले कह रहे थे।

'कुछ मालूम हुआ कहां गये हैं।?'

'वहीं मौका देखने गये हैं जहाँ? वारदात हुई थी।'

देवीदीन चिलम पीने लगा और जालपा सड़क पर आकर टहलने लगी। रमा की यह निन्दा सुनकर उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता था। उसे रमा पर क्रोध न आया, ग्लानि न आयी; उसे हाथों का सहारा देकर इस दलदल से निकालने के लिए उसका मन विकल हो उठा। रमा चाहे

उसे दुत्कार ही क्यों न दे, उसे ठुकरा ही क्यों न दे, वह उसे अपयश के अँधेरे खड्ड में न गिरने देगी।

जब दोनों यहां से चले तो जालपा ने पूछा—इस आदमी से कह दिया न कि जब वह आ जायँ तो खबर दे दे?

'हां, कह दिया है।'

३७

एक महीना गुज़र गया। गोपीनाथ पहले तो कई दिन कलकत्ते की सैर करता रहा, मगर चार-पाँच दिन में ही यहाँ से उसका जी ऐसा उचाट हुआ कि घर की रट लगानी शुरू की। आखिर जालपा ने उसे लौटा देना ही अच्छा समझा। यहाँ तो वह छिप-छिपकर रोया करता था।

जालपा कई बार रमा के बँगले तक हो आयी। वह जानती थी कि अभी रमा नहीं आये हैं फिर भी वहाँ का एक चक्कर लगा आने में उसको एक विचित्र सन्तोष होता।

जालपा कुछ पढ़ते-पढ़ते या लेटे-लेटे थक जाती, तो एक क्षण के लिए खिड़की के सामने आ खड़ी होती थी। एक दिन शाम को वह खिड़की के सामने आयी, तो सड़क पर मोटरों की एक क़तार नज़र आयी। कुतूहल हुआ, इतनी मोटरें कहाँ जा रही हैं। ग़ौर से देखने लगी, छः मोटरें थीं। उसमें पुलिस के अफ़सर बैठे हुए थे। एक में सब सिपाही थे। आखिरी मोटर पर जब उसकी निगाह पड़ी तो मानो उसके सारे शरीर में बिजली की लहर दौड़ गयी। वह ऐसी तन्मय हुई, कि खिड़की से ज़ीने तक दौड़ आयी, मानो मोटर को रोक लेना चाहती हो, पर इसी एक पल में उसे मालूम हो गया कि मेरे नीचे उतरते-उतरते मोटर निकल जायेगी। वह फिर खिड़की के सामने आयी। रमा अब बिलकुल सामने आ गया था। उसकी आँखें खिड़की की ओर लगी हुई थीं। जालपा ने इशारे से कुछ कहना चाहा, पर संकोच ने रोक दिया। ऐसा मालूम हुआ, कि रमा की मोटर कुछ धीमी हो गयी है। देवीदीन की आवाज़ भी सुनायी दी। मगर मोटर रुकी नहीं। एक ही क्षण में वह आगे बढ़ गयी, पर रमा अब भी रह रहकर खिड़की की ओर ताकता जाता था।

जालपा ने ज़ीने पर आकर कहा—दादा!

देवीदीन ने सामने आकर कहा—भैया आ गये ! वह क्या मोटर जा रही है ।

यह कहता हुआ वह ऊपर आ गया । जालपा ने उत्सुकता को संकोच से दबाते हुए कहा—तुमसे कुछ कहा ?

देवी०—और क्या कहते, खाली राम-राम की । मैंने कुशल पूछी । हाथ से दिलासा देते चले गये । तुमने देखा कि नहीं ?

जालपा ने सिर झुकाकर कहा—देखा क्यों नहीं । खिड़की पर ज़रा खड़ी थी ।

'उन्होंने भी तुम्हें देखा होगा ?'

'खिड़की की ओर ताकते तो थे ।'

'बहुत चकराये होंगे, कि यह कौन है !'

'कुछ मालूम हुआ मुकदमा कब पेश होगा ?'

'कल ही तो ।'

'कल ही ! इतनी जल्द ? तब तो जो कुछ करना हैं, आज ही करना होगा । किसी तरह मेरा खत उन्हें मिल जाता, तो काम बन जाता ।'

देवीदीन ने इस तरह ताका मानो कह रहा है, तुम इस काम को जितना आसान समझती हो उतना आसान नहीं ।

जालपा ने उसके मन का भाव ताड़कर कहा—क्या तुम्हें सन्देह है कि वह अपना बयान बदलने पर राजी न होंगे ?

देवीदीन को अब इसे स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय न सूझा । बोला—हाँ बहूजी, मुझे इसका बहुत अन्देशा है और सच पूछो तो है भी जोखिम । अगर वह बयान बदल भी दें, तो पुलिस के पंजे से नहीं छूट सकते । वह कोई दूसरा इल्ज़ाम लगाकर उन्हें पकड़ लेगी और फिर नया मुक़दमा चलायेगी ।

जालपा ने ऐसी नज़रों से देखा, मानो वह इस बात से ज़रा भी नहीं डरती । फिर बोली—दादा, मैं उन्हें पुलिस के पंजे से बचाने का बीड़ा नहीं लेती । मैं केवल यह चाहती हूँ कि अपयश से उन्हें बचा लूँ । उनके हाथों इतने घरों की बरबादी होते नहीं देख सकती । अगर वह सचमुच डकैतियों में शरीक़ होते, तब भी मैं यही चाहती कि वह अन्त तक अपने साथियों के

साथ रहें. और जो सिर पर पड़े, उसे खुशी से झेलें। मैं यह कभी पन्सद न करती, कि वह दूसरों को दग़ा देकर मुखबिर बन जायँ। लेकिन यह मामला तो बिल्कुल झूठा है। मैं यह किसी तरह नहीं बर्दाश्त कर सकती कि वह अपने स्वार्थ के लिए झूठी गवाही दें। अगर उन्होंने खुद अपना बयान न बदला, तो मैं अदालत में जाकर सारा कच्चा चिट्ठा खोल दूँगी, चाहे नतीजा कुछ भी हो। वह हमेशा के लिए मुझे त्याग दें, मेरी सूरत न देखें, यह मुझे मंजूर है, पर यह नहीं हो सकता कि वह इतना बड़ा कलंक माथे पर लगायें। मैंने अपने पत्र में सब लिख दिया है।

देवीदीन ने उसे आदर की दृष्टि से देखकर कहा—तुम सब कर लोगी बहू, अब मुझे विश्वास हो गया। जब तुमने कलेजा इतना मज़बूत कर लिया है, तो तुम सब कुछ कर सकती हो।

'तो यहाँ से नौ बजे चलें।'

'हाँ, मैं तैयार हूँ।'

३८

वह रामनाथ जो पुलिस के भय से बाहर न निकलता था. जो देवीदीन के घर में चोरों की तरह पड़ा ज़िन्दगी के दिन पूरे कर रहा था, आज दो महीने से राजसी भोग-विलास में डूबा हुआ है। रहने को सुन्दर सजा हुआ बँगला है, सेवा-टहल के लिए चौकीदारों का एक दल, सवारी के लिए मोटर, भोजन पकाने के लिए एक कश्मीरी बावर्ची। बड़े-बड़े अफसर उसका मुँह ताका करते हैं। उसके मुँह से बात निकली नहीं, कि पूरी हुई। इतने ही दिनों में उसके मिज़ाज में इतनी नफ़ासत आ गयी है, मानो वह खानदानी रईस हो। विलास ने उसकी विवेक-बुद्धि को सम्मोहन-सा कर दिया है। उसे कभी इसका ख़याल भी नहीं आता, कि मैं क्या कर रहा हूँ और मेरे हाथों कितने बेगुनाहों का खून हो रहा है। उसे एकान्त-विचार का अवसर ही नहीं दिया जाता। रात को सैर होती है। मनोरंजन के नित्य नये सामान होते हैं। जिस दिन अभियुक्तों को मैजिस्ट्रेट ने सेशन सुपुर्द किया, सबसे ज्यादा खुशी उसी को हुई। उसे अपना सौभाग्य सुर्य उदय हुआ मालूम होता था।

पुलिस को मालूम था, कि सेशन जज के इजलास में यह बहार न होगी। संयोग से जज हिन्दुस्तानी थे और निष्पक्षता के लिए बदनाम। पुलिस हो या

चोर, उनकी निगाह में दोनों बराबर थे। वह किसी के साथ रू-रिम्रायत न करते। इसलिए पुलिस ने रमा को एक बार उन स्थानों की सैर कराना जरूरी समझा जहाँ वारदात हुई थी। एक जमींदार की सजी-सजाई कोठी में डेरा पड़ा। दिन-भर लोग शिकार खेलते, रात को ग्रामोफ़ोन सुनते, ताश खेलते और बजरों पर नदियों की सैर करते। ऐसा जान पड़ता था, कि कोई राजकुमार शिकार खेलने निकला है।

इस भोग-विलास में रमा को अगर कोई अभिलाषा थी, तो यह कि जालपा भी यहाँ होती। अब तक वह पराश्रित था, दरिद्र था, उसकी विलासेन्द्रियाँ मानो मूर्छित हो रही थीं। इन शीतल झोकों ने उन्हें फिर सचेत कर दिया। वह कल्पना में मग्न था, कि यह मुक़दमा खत्म होते ही उसे अच्छी जगह मिल जायेगी। तब वह जाकर जालपा को मना लायेगा और आनन्द से जीवन-सुख भोगेगा। हाँ, वह नये प्रकार का जीवन होगा, उसकी मर्यादा कुछ और होगी, सिद्धान्त कुछ और होंगे; उसमें कठोर संयम होगा और पक्का नियंत्रण। अब उसके जीवन का कुछ उद्देश्य होगा, कुछ आदर्श होगा। केवल खाना, सोना, और रुपये के लिए हाय-हाय करना ही जीवन का व्यवहार न होगा। इसी मुक़दमे के साथ इस मार्ग-हीन जीवन का अन्त हो जायगा। दुर्बल इच्छा ने उसे यह दिन दिखाया था और अब एक नये और सुसंस्कृत जीवन का स्वप्न दिखा रही थी। शराबियों की तरह ऐसे मनुष्य भी रोज़ ही संकल्प करते हैं; लेकिन उन संकल्पों का अन्त क्या होता है? नये-नये प्रलोभन सामने आते रहते हैं और संकल्प की अवधि भी बढ़ती चली जाती है। नये प्रभात का उदय कभी नहीं होता।

एक महीने देहात की सैर करने के बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बँगले पर जा रहा था। रास्ता देवीदीन के घर के सामने से था। कुछ दूर ही से उसे कमरा दिखायी दिया। अनायास ही उसकी निगाह ऊपर उठ गयी। खिड़की के सामने कोई खड़ा था। इस वक्त देवीदीन वहाँ क्या कर रहा है? उसने जरा ध्यान से देखा। यह तो कोई औरत है! मगर औरत कहाँ से आयी? क्या देवीदीन ने वह कमरा किराये पर तो नहीं उठा दिया? ऐसा तो उसने कभी नहीं किया।

मोटर जरा और समीप आयी, तो उस औरत का चेहरा साफ नज़र आने

लगा। रमा चौंक पड़ा। यह जालपा है! बेशक जालपा है! मगर, नहीं-नहीं जालपा यहाँ कैसे आयेगी? मेरा पता-ठिकाना उसे कहाँ मालूम! बुड्ढे ने उसे खत तो नहीं लिख दिया? जालपा ही है? नायब दारोगा मोटर चला रहा था। रमा ने बड़ी मिन्नत के साथ कहा—सरदार साहब, एक मिनट के लिए रुक जाइए। मैं जरा देवीदीन से एक बात कर लूं। नायब ने मोटर जरा धीमी कर दी; लेकिन फिर कुछ सोचकर उसे आगे बढ़ा दिया।

रमा ने तेज होकर कहा—आप तो मुझे क़ैदी बनाये हुए हैं!

नायब ने खिसियोकर कहा—आप तो जानते हैं, डिप्टी साहब कितने जल्द जामे से बाहर हो जाते हैं।

बँगले पर पहुँचकर रमा सोचने लगा, जालपा से कैसे मिलूँ। वहाँ जालपा ही थी, इसमें अब उसे कोई शुबहा न था! आँखों को कैसे धोखा देता। हृदय में एक ज्वाला-सी उठी हुई थी, क्या करूँ? कैसे जाऊँ? उसे कपड़े उतारने की सुधि भी न रही। पन्द्रह मिनट तक वह कमरे के द्वार पर खड़ा रहा। कोई हिकमत न सूझी। लाचार पलँग पर लेट रहा।

जरा ही देर में वह फिर उठा और सामने सहन में निकल आया। सड़क पर उसी वक्त बिजली की रोशनी हो गयी। फाटक पर चौकीदार खड़ा था। रमा को उस पर इस समय इतना क्रोध आया कि गोली मार दे। अगर मुझे कोई अच्छी जगह मिल गयी, तो एक-एक से समझूँगा। तुम्हें तो डिसमिस कराके छोड़ूँगा। कैसे शैतान की तरह सिर पर सवार है। मुंह तो देखो ज़रा! मालूम होता है, बकरी की दुम है! वाह रे आपकी पगड़ी। गोया बोझ ढोनेवाला कुली है! अभी कुत्ता भूँक पड़े, तो आप दुम दबा कर भागेंगे; मगर यहाँ ऐसे डटे खड़े हैं, मानों किसी किले के द्वार की रक्षा कर रहे हैं!

एक चौकीदार ने आकर कहा—इसपिट्टर साहब ने बुलाया है। कुछ नये तवे मँगवाये हैं।

रमा ने झल्लाकर कहा—मुझे इस वक्त फ़ुरसत नहीं है।

फिर सोचने लगा। जालपा यहाँ कैसे आयी? अकेले ही आयी है, या कोई साथ है? ज़ालिम ने बुड्ढे से एक मिनट भी बात न करने दिया। जालपा पूछेगी तो जरूर, कि क्यों भागे थे? साफ़-साफ़ कह दूँगा, उस समय और कर ही क्या सकता था, पर इन थोड़े दिनों के कष्ट ने जीवन का प्रश्न तो

हल कर दिया। अब आनन्द से ज़िन्दगी कटेगी। कोशिश करके उसी तरफ अपना तबादला करवा लूँगा। यह सोचते-सोचते रमा को ख़याल आया, कि जालपा भी यहाँ मेरे साथ रहे, तो क्या हरज है। बाहरवालों से मिलने की रोक-टोक है। जालपा के लिए क्या रुकावट हो सकती है? लेकिन इस वक्त इस प्रश्न का छेड़ना उचित नहीं। कल इसे तय करूँगा। देवीदीन भी विचित्र जीव है। पहले तो कई बार आया; पर आज उसने भी सन्नाटा खींच लिया। कम-से-कम इतना तो हो ही सकता था, कि आकर पहरेवाले कांसटेबल से जालपा के आने की खबर मुझे देता। फिर मैं देखता कि कौन जालपा को नहीं आने देता। पहले इस तरह की क़ैद ज़रूरी थी; पर अब तो मेरी परीक्षा पूरी हो चुकी। शायद सब लोग खुशी से राज़ी हो जायँगे।

रसोइया थाली लाया। मांस एक तरह का था। रमा थाली देखते ही झल्ला गया। इन दिनों रुचिकर भोजन देखकर ही उसे भूख लगती थी। जब तक चार-पाँच प्रकार का माँस न हो, चटनी-अचार न हो, उसकी तृप्ति न होती थी।

बिगड़कर बोला—क्या खाऊँ? तुम्हारा सिर? थाली उठा ले जाओ।

रसोइये ने डरते-डरते कहा—हुजूर, इतनी जल्द और चीजें कैसे बनाता। अभी कुल दो घण्टे आये हुए हैं।

'दो घण्टे तुम्हारे लिए थोड़े होते हैं?'

'अब हुजूर से क्या कहूँ।'

'मत बको! डैम!'

'हुजूर........'

'मत बको! डैम!'

रसोइये ने फिर कुछ न कहा। बोतल लाया, बर्फ तोड़कर ग्लास में डाली और पीछे हटकर खड़ा हो गया।

रमा को इतना क्रोध आ रहा था, कि रसोइये को नोच खाये। उसका मिज़ाज इन दिनों बहुत तेज़ हो गया था।

शराब का दौर शुरू हुआ, तो रमा का गुस्सा और भी तेज़ हुआ। लाल लाल आँखों से उसे देखकर बोला—चाहूँ तो अभी तुम्हारा कान पकड़कर निकाल दूँ। अभी, इसी दम। तुमने समझा क्या है!

उसका क्रोध बढ़ता देखकर रसोइया चुपके-से सरक गया। रमा ने ग्लास लिया और दो-चार लुकमें खाकर बाहर सहन में टहलने लगा। यही धुन सवार थी, कैसे यहाँ से निकल जाऊँ!

एकाएक उसे ऐसा जान पड़ा, कि तार के बाहर वृक्षों की आड़ में कोई है। हाँ, कोई खड़ा उसकी तरफ़ ताक रहा है! शायद इशारे से अपनी तरफ़ बुला रहा है। रमानाथ का दिल धड़कने लगा। कहीं षड्यंत्रकारियों ने उसके प्राण लेने की तो नहीं ठानी है। यह शंका उसे सदैव बनी रहती थी। इस ख़्याल से वह रात को बँगले के बाहर बहुत कम निकलता था। आत्म-रक्षा के भाव ने उसे अन्दर चले जाने की प्रेरणा की। उसी वक़्त एक मोटर सड़क पर से निकली! उसके प्रकाश में रमा ने देखा, वह अँधेरी छाया स्त्री है। उसकी साड़ी साफ़ नज़र आ रही थी। फिर उसे मालूम हुआ कि वह स्त्री उसकी ओर आ रही है। उसे फिर शंका हुई, कोई मर्द वह वेश बदलकर मेरे साथ छल तो नहीं कर रहा है? वह ज्यों-ज्यों पीछे हटता गया, वह छाया उसकी ओर बढ़ती गयी, यहाँ तक कि तार के पास आकर उसने कोई चीज़ रमा की तरफ फेंकी! रमा चीख मारकार पीछे हट गया, मगर वह केवल एक लिफ़ाफ़ा था। उसे तस्कीन हुई। उसने फिर जो सामने देखा तो वह छाया अंधकार में विलीन हो गयी थी। रमा ने लपककर वह लिफ़ाफ़ा उठा लिया। भय भी था और कुतूहल भी। भय कम था, कुतूहल अधिक। लिफाफे को जेब में छिपाये वह कमरे में आया, दोनों ओर के द्वार बन्द कर लिये और लिफाफे को हाथ में लेकर देखने लगा। सिरनामा देखते ही उसके हृदय में फुरेरियाँ-सी उड़ने लगीं। लिखावट जालपा की थी। उसने फ़ौरन लिफ़ाफ़ा खोला। जालपा की ही लिखावट थी। उसने एक ही साँस में पत्र पढ़ डाला और तब एक लम्बी साँस ली। उसी साँस के साथ चिन्ता का वह भीषण भार जिसने आज छः महीने से उसकी आत्मा को दबा कर रखा था, वह सारी मनोव्यथा जो उसका जीवन-रक्त चूस रही थी, वह सारी दुर्बलता, लज्जा, ग्लानि मानो उड़ गयी। छूमन्तर हो गयी। इतनी स्फूर्ति, इतना गर्व, इतना आत्म-विश्वास उसे कभी न हुआ था। पहली सनक यह सवार हुई, अभी चलकर दारोगा से कह दूँ, मुझे इस मुक़दमे से कोई सरोकार नहीं है, लेकिन फिर ख्याल आया बयान तो अब हो ही चुका, जितना अपयश मिलना था,

मिल ही चुका, अब उसके फल से क्यों हाथ धोऊँ? मगर इन सबों ने मुझे कैसा चकमा दिया है! और अभी तक मुग़ालते में डाले हुए हैं। सब-के-सब मेरी दोस्ती का दम भरते हैं, मगर अभी तक असली बात मुझसे छिपाये हुए हैं। अभी इन्हें मुझ पर विश्वास नहीं। अभी इसी बात पर अपना बयान बदल दूँ, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो। यही न होगा, मुझे कोई जगह न मिलेगी, बला से; इन लोगों के मनसूबे तो खाक में मिल जायँगे। इस दग़ाबाजी की सजा तो मिल जायगी। और यह कुछ न सही, इतनी बड़ी बदनामी से तो बच जाऊँगा। यह सब शरारत जरूर करेंगे; लेकिन झूठा इलजाम लगाने के सिवा और कर ही क्या सकते हैं। जब मेरा यहाँ रहना साबित ही नहीं, तो मुझ पर दोष ही क्या लग सकता है। सबों के मुंह में कालिख लग जायगी। मुंह तो दिखाया न जायगा, मुक़दमा क्या चला देंगे।

मगर नहीं। इन्होंने मुझसे चाल चली है, तो मैं भी इनसे वही चाल चलूँगा। कह दूँगा, अगर मुझे आज कोई अच्छी जगह मिल जायेगी, तो मैं शहादत दूँगा, वरना साफ कह दूँगा, इस मामले से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। नहीं तो पीछे से किसी छोटे-मोटे थाने में नायब दारोगा बनाकर भेज दें और वहाँ सड़ा करूँ। लूँगा इंसपेक्टरी और कल दस बजे मेरे पास नियुक्ति का परवाना आ जाना चाहिए। वह चला कि इसी वक्त दारोगा से कह दूँ, लेकिन फिर रुक गया। एक बार जालपा से मिलने के लिए उसके प्राण तड़प रहे थे। उसके प्रति इतना अनुराग, इतनी श्रद्धा उसे न हुई थी, मानो वह कोई दैवी शक्ति हो जिसे देवताओं ने उसकी रक्षा के लिए भेजा हो।

दस बज गये थे। रमानाथ ने बिजली गुल कर दी और बरामदे में आकर जोर से किवाड़ बन्द कर दिये, जिसमें पहरेवाले सिपाही को मालूम हो अन्दर से किवाड़ बन्द करके सो रहे हैं। वह अँधेरे बरामदे में एक मिनट खड़ा रहा। तब आहिस्ता से उतरा और काँटेदार फेंसिंग के पास आकर सोचने लगा, उस पार कैसे जाऊँ? शायद अभी जालपा बगीचे में हो। देवीदीन जरूर उसके साथ होगा। केवल यही तार उसकी राह रोके हुए था। उसे फाँद जाना असम्भव था। उसने तारों के बीच से होकर निकल जाने का निश्चय किया। अपने सब कपड़े समेट लिए और काँटे को बचाते हुए सिर और कंधे को तार के बीच में डाला; पर न जाने कैसे कपड़े फँस गये।

उसने हाथ से कपड़ों को छुड़ाना चाहा तो आस्तीन काँटों में फँस गयी। धोती भी उलझी हुई थी। बेचारा बड़े संकट में पड़ा। न इस पार जा सकता था; न उस पार। जरा भी असावधानी हुई और काँटे उसकी देह में चुभ जायेंगे।

मगर इस वक्त उसे कपड़ों की परवा न थी। उसने गर्दन और आगे बढ़ाई और कपड़ों में लम्बा चीरा लगाता हुआ उस पार निकल गया। सारे कपड़े तार-तार हो गये, पीठ में कुछ खरोंचें लगी; इस समय कोई बन्दूक का निशाना बाँधकर भी उसके सामने खड़ा हो जाता तो भी वह पीछे न हटता। फटे हुए कुरते को उसने वहीं फेंक दिया। गले की चादर फट जाने पर भी काम दे सकती थी, उसे उसने ओढ़ लिया, धोती समेट ली और बगीचे में घूमने लगा। सन्नाटा था। शायद रखवाला खटिक खाना खाने गया हुआ था। उसने दो-तीन बार धीरे-धीरे जालपा का नाम लेकर पुकारा भी। किसी की आहट न मिली; पर एक निराशा होने पर भी मोह ने उसका गला न छोड़ा। उसने एक पेड़ के नीचे जाकर देखा। समझ गया, जालपा चली गयी। वह उन्हीं पैरों देवीदीन के घर की ओर चला। उसे ज़रा भी शोक न था। बला से किसी को मालूम हो जाय कि मैं बँगले से निकल आया हूँ। पुलिस मेरा कर ही क्या सकती हैं। मैं क़ैदी नहीं हूँ, गुलामी नहीं लिखायी है।

आधी रात हो गयी थी। देवीदीन भी आध घण्टे पहले लौटा था और खाना खाने जा रहा था, कि एक नंगे-धड़ंगे आदमी को देखकर चौंक पड़ा। रमा ने सिर पर चादर बाँध ली थी और देवीदीन को डराना चाहता था।

देवीदीन ने सशंक होकर कहा—कौन है ?

मगर फिर सहसा पहचान गया और झपटकर उसका हाथ पकड़ता हुआ बोला—तुमने तो भैया, खूब भेस बनाया है। कपड़े क्या हुए ?

रमा०—तार से निकल रहा था, सब उसके काँटे में उलझकर फट गये।

देवी०—राम-राम ! देह में तो काँटे नहीं चुभे ?

रमा०—कुछ नहीं, दो-एक खरोंचें लग गयीं। मैं बहुत बचाकर निकला।

देवी०—बहू की चिट्ठी मिल गयी न ?

रमा०—हाँ, उसी वक्त मिल गयी। क्या तुम्हारे साथ थीं ?

देवी०—वह मेरे साथ नहीं थी, मैं उनके साथ था। जब से तुम्हें मोटर पर आते देखा, तभी से जाने-जाने लगाये हुए थीं।

रमा०—तुमने कोई ख़त लिखा था?

देवी०—हमने कोई ख़त-पत्तर नहीं लिखा भैया। जब वह आयीं तो मुझे आप ही अचम्भा हुआ, कि बिना जाने-बूझे कैसे आ गयीं। पीछे से उन्होंने बताया। वह सतरंजवाला नक़शा उन्होंने पराग से भेजा था और इनाम भी वहीं से आया था।

रमा की आँखें फैल गयीं। जालपा की चतुराई ने उसे विस्मय में डाल दिया। इसके साथ ही पराजय के भाव ने उसे कुछ खिन्न कर दिया, वहाँ भी इस बुरी तरह उसकी हार हुई।

बुढ़िया ऊपर गयी हुई थी। देवीदीन ने जीने के पास जाकर कहा—अरे क्या करती है? बहु से कह दे, एक आदमी उनसे मिलने आया हैं।

यह कहकर देवीदीन ने फिर रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—चलो, अब सरकार में तुम्हारी पेसी होगी। बहुत भागे थे। बिना वारंट के पकड़ गये। इतनी आसानी से पुलिस भी न पकड़ सकती।

रमा का मनोल्लास द्रवित हो गया था। लज्जा से गड़ा जाता था। जालपा के प्रश्नों का उसके पास क्या जवाब था। जिससे वह भागा था, उसने अन्त में उसका पीछा करके परास्त ही कर दिया। वह जालपा के सामने सीधी आँखें भी तो न कर सकता था। उसने हाथ छुड़ा लिया और जीने के पास ठिठक गया। देवीदीन ने पूछा—क्यों रुक गये?

रमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—चलो, मैं आता हूँ।

बुढ़िया ने ऊपर ही से कहा—पूछो कौन आदमी है, कहाँ से आया है?

देवीदीन ने विनोद किया—कहता है, मैं जो कुछ कहूँगा बहू से ही कहूँगा।

'कोई चिट्ठी लाया है?'

'नहीं!'

सन्नाटा हो गया। देवीदीन ने एक क्षण के बाद पूछा—कह दूँ लौट जाय?

जालपा जीने पर आकर बोली—कौन आदमी है, पूछती तो हूँ!

'कहता है, बड़ी दूर से आया हूँ।'

'हैं कहाँ?'

'यह क्या खड़ा है ?'

'अच्छा, बुला लो।'

रमा चादर ओढ़े कुछ झिझकता-झेंपता, कुछ डरता, ज़ीने पर चढ़ा। जालपा ने उसे देखते ही पहचान लिया। तुरन्त दो क़दम पीछे हट गयी।

देवीदीन वहाँ न होता तो वह दो कदम और आगे बढ़ी होती।

उसकी आँखों में कभी इतना नशा न था, अंगों में कभी इतनी चपलता न थी, कपोल कभी इतने न दमके थे, हृदय में कभी इतना मृदु-कम्पन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

३९

वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है, जो बातों में कट जाती है। रमा और जालपा दोनों ही को अपनी छः महीने की कथा कहानी थी। रमा ने अपना गौरव बढ़ाने के लिए अपने कष्टों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया। जालपा ने अपनी कथा में कष्टों की चर्चा तक न आने दी। वह डरती थी इन्हें दुःख होगा; लेकिन रमा को रुलाने में विशेष आनन्द आ रहा था। वह क्यों भागा, किस लिए भागा, कैसे भागा—वह सारी गाथा उसने करुण शब्दों में कही और जालपा ने सिसक-सिसक कर सुनी। वह अपनी बातों से प्रभावित करना चाहता था। अब तक कभी बातों में उसे परास्त होना पड़ा था। जो बात उसे असह्य मालूम हुई, उसे जालपा ने चुटकियों में पूरा कर दिखाया। शतरंजवाली बात को वह खुब नमक-मिर्च लगाकर बयान कर सकता था; लेकिन वहाँ भी जालपा ही ने नीचा दिखाया। फिर उसकी कीर्ति-लालसा को इसके सिवा और क्या उपाय था कि अपने कष्टों को राई का पर्वत बनाकर दिखाये ?

जालपा ने सिसककर कहा—तुमने यह सारी आफ़तें झेलीं, पर हमें एक पत्र तक न लिखा। क्यों लिखते, हमसे नाता ही क्या था ! मुँह देखे की प्रीति थी ! आँख ओट पहाड़ ओट !

रमा ने हसरत से कहा—यह बात नहीं थी जालपा, दिल पर जो कुछ गुजरती थी, दिल ही जानता है; लेकिन लिखने का मुँह भी तो हो। जब मुँह

छिपाकर घर से भागा, तो अपनी विपत्ति-कथा क्या लिखने बैठता। मैंने तो सोच लिया था, जब तक खूब रुपये न कमा लूँगा, एक शब्द भी न लिखूँगा।

जालपा ने आँसू-भरी आँखों में व्यंग भरकर कहा—ठीक ही था, रुपये आदमी से ज्यादा प्यारे होते हैं! हम तो रुपये के यार हैं; तुम चाहे चोरी करो, डाका मारो, जाली नोट बनाओ, झूठी गवाही दो या भीख माँगो, किसी उपाय से रुपये लाओ। तुमने हमारे स्वभाव को कितना ठीक समझा है, कि वाह! गोसाई जी भी तो कह गये हैं—स्वारथ लाइ करहिं सब प्रीती!

रमा ने झेंपते हुए कहा—नहीं प्रिये, यह बात न थी। मैं यही सोचता था कि इन फटे हालों जाऊँगा कैसे! सच कहता हूँ, मुझे सबसे ज्यादा डर तुम्हीं से लगता था। सोचता था, तुम मुझे कितना कपटी, झूठा, कायर समझ रही होगी। शायद मेरे मन में यह भाव था कि रुपये की थैली देखकर तुम्हारा हृदय कुछ तो नर्म होगा।

जालपा ने व्यथित कंठ से कहा—मैं शायद उस थैली को हाथ से छूती भी नहीं। आज मालूम हो गया, तुम मुझे कितनी नीच, कितनी स्वार्थिनी, कितनी लोभी समझते हो। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं सरासर मेरा दोष है। अगर मैं भली होती, तो आज यह दिन ही क्यों आता? जो पुरुष तीस-चालीस रुपये महीने का नौकर हो, उसकी स्त्री अगर दो-चार रुपये रोज़ ख़र्च करे, हज़ार-दो-हज़ार के गहने पहनने की नीयत रखे, तो वह अपनी और उसकी तबाही का सामान कर रही है। अगर तुमने मुझे इतना धन-लोलुप समझा, तो कोई अन्याय नहीं किया। मगर एक बार जिस आग में जल चुकी, उसमें फिर न कूदूँगी। इन महीनों में मैंने उन पापों का कुछ प्रायश्चित किया है, और शेष जीवन के अन्त समय तक करूँगी। यह मैं नहीं कहती कि भोग-विलास से मेरा जी भर गया, या गहने-कपड़े से मैं ऊब गयी या सैर-तमाशे से मुझे घृणा हो गयी। यह सब अभिलाषाएँ ज्यों-की-त्यों हैं। पुरुषार्थ से, अपने परिश्रम से, अपने सदुद्योग से उन्हें पूरा कर सको, तो क्या कहना; लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ, तो मैं ठुकरा दूँगी। जिस वक्त मुझे मालूम हुआ कि तुम पुलिस के गवाह बन गये हो, मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं उसी वक्त दादा को साथ लेकर तुम्हारे बँगले तक गयी; मगर उसी दिन तुम बाहर

चले गये थे और आज लौटे हो। मैं इतने आदमियों का खून अपनी गर्दन पर नहीं लेना चाहती। तुम अदालत में साफ़-साफ़ कह दो, कि मैंने पुलिस के चकमे में आकर गवाही दी थी, मेरा मुआमले से कोई सम्बन्ध नहीं है।

रमा ने चिन्तित होकर कहा—जब से तुम्हारा ख़त मिला तभी से मैं इस प्रश्न पर विचार कर रहा हूँ; लेकिन समझ में नहीं आता क्या करूँ। एक बात कहकर मुकर जाने का साहस मुझमें नहीं है।

'बयान तो बदलना ही पड़ेगा।'

'आख़िर कैसे ?'

'मुश्किल क्या है? जब तुम्हें मालूम हो गया कि म्युनिसिपैलिटी तुम्हारे ऊपर कोई मुक़दमा नहीं चला सकती तो फिर किस बात का डर ?'

'डर न हो, झेंप भी तो कोई चीज़ है। जिस मुँह से एक बात कही, उसी मुँह से मुकर जाऊँ, यह तो मुझसे न होगा। फिर, मुझे कोई अच्छी जगह मिल जायगी। आराम से जिन्दगी बसर होगी। मुझमें गली-गली ठोकर खाने का बूता नहीं है।'

जालपा ने कोई जवाब न दिया। वह सोच रही थी, आदमी में स्वार्थ की मात्रा कितनी अधिक होती है।

रमा ने फिर धृष्टता से कहा—और कुछ मेरी ही गवाही पर तो सारा फ़ैसला नहीं हुआ जाता ? मैं बदल भी जाऊँ तो पुलिस कोई दूसरा आदमी खड़ा कर देगी। अपराधियों की जान तो किसी तरह नहीं बच सकती। हाँ, मैं मुफ़्त में मारा जाऊँगा।

जालपा ने त्योरी चढ़ाकर कहा—कैसी बेशर्मी की बातें करते हो जी ? क्या तुम इतने गये-बीते हो कि अपनी रोटियों के लिए दूसरों का गला काटो ? मैं इसे नहीं सह सकती। मुझे मजदूरी करना, भूखों मर जाना मंजूर है। बड़ी-से-बड़ी विपत्ति जो संसार में है, वह सिर पर ले सकती हूँ; लेकिन किसी का अनभल करके स्वर्ग का राज भी नहीं ले सकती।

रमा इस आदर्शवाद से चिढ़कर बोला—तो क्या तुम चाहती हो कि मैं यहाँ कुलीगोरी करूँ ?

जालपा—नहीं, मैं यह नहीं चाहती; लेकिन कुलीगोरी भी करनी पड़े, तो वह खून से तर रोटियाँ खाने से कहीं बढ़कर है।

रमा ने शान्त भाव से कहा—जालपा, तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो मैं उतना नीच नहीं हूँ। बुरी बात सभी को बुरी लगती है इसका दुख मुझे भी है कि मेरे हाथों इतने आदमियों का खून हो रहा है। लेकिन परिस्थिति ने मुझे भी लाचार कर दिया है। मुझमें अब ठोकरें खाने की शक्ति नहीं है। न मैं पुलिस से रार ले सकता हूँ। दुनिया में सभी थोड़े ही आदर्श पर चलते हैं। मुझे क्यों ऊँचाई पर चढ़ाना चाहती हो, जहाँ पहुँचने की शक्ति मुझमें नहीं है ?

जालपा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—जिस आदमी में हत्या करने की शक्ति हो, उसमें हत्या न करने की शक्ति का न होना अचम्भे की बात है। जिसमें दौड़ने की शक्ति हो, उसमें खड़े रहने की शक्ति न हो, इसे कौन मानेगा ? जब हम कोई काम करने की इच्छा करते हैं, तो शक्ति आप-ही-आप आ जाती है ! तुम यह निश्चय कर लो कि तुम्हें बयान बदलना है, बस और सारी बातें आप-ही-आप आ जायँगी।

रमा सिर झुकाये हुए सुनता रहा।

जालपा ने और आवेश में आकर कहा—अगर तुम्हें यह पाप की खेती करनी है, तो मुझे आज ही यहाँ से बिदा कर दो। मैं मुंह में कालिख लगाकर यहाँ से चली जाऊँगी और फिर तुम्हें दिक़ करने न आऊँगी। तुम आनन्द से रहना। मैं अपना पेट मेहनत-मजूरी करके भर लूँगी। अभी प्रायश्चित पूरा नहीं हुआ है, इसलिए यह दुर्बलता हमारे पीछे पड़ी हुई है। मैं देख रही हूँ, यह हमारा सर्वनाश करके छोड़ेगी।

रमा के दिल पर कुछ चोट लगी। सिर खुजलाकर बोला—चाहता तो मैं भी हूँ कि किसी तरह इस मुसीबत से जान बचे।

'तो बचाते क्यों नहीं ? अगर तुम्हें कहते शर्म आती हो, तो मैं चलूँ। यही अच्छा होगा। मैं भी चली चलूँगी और तुम्हारे सुपरिटेंडेंट साहब से सारा वृत्तान्त साफ़-साफ़ कह दूँगी।'

रमा का सारा पशोपेश गायब हो गया। अपनी इतनी दुर्गति वह न कराना चाहता था कि उसकी स्त्री जाकर उसकी वकालत करे। बोला—तुम्हारे चलने की ज़रूरत नहीं है जालपा, मैं उन लोगों को समझा दूँगा।

जालपा ने ज़ोर देकर कहा—साफ़ बताओ, अपना बयान बदलोगे, या नहीं ?

रमा ने मानो कोने में दबकर कहा—कहता तो हूँ, बदल दूँगा !

'मेरे कहने से या अपने दिल से ?'

'तुम्हारे कहने से नहीं, अपने दिल से ! मुझे खुद ही ऐसी बातों से घृणा है। सिर्फ जरा हिचक थी। वह तुमने निकाल दी।'

फिर और बातें होने लगीं। कैसे पता चला कि रमा ने रुपये उड़ा दिये हैं ? रुपये अदा कैसे हो गये ? और लोगों को ग़बन की खबर हुई या घर ही में दबकर रह गयी ? रतन पर क्या गुजरी ? गोपी क्यों इतनी जल्दी चला गया ? दोनों कुछ पढ़ रहे हैं या उसी तरह आवारा फिरा करते हैं ? आखिर में अम्मा और दादा का ज़िक्र आया। फिर जीवन के मनसूबे बांधे जाने लगे। जालपा ने कहा—घर चलकर रतन से थोड़ी-सी जमीन ले लें और आनन्द से खेती-बारी करें। रमा ने कहा—उससे कहीं अच्छा है, कि यहां चाय की दूकान खोलें। इस पर दोनों में मुबाहसा हुआ। आखिर रमा को हार माननी पड़ी। यहां रहकर वह घर की देखभाल न कर सकता था, भाइयों को शिक्षा न दे सकता था, और न माता-पिता का सेवा-सत्कार कर सकता था। आखिर घरवालों के प्रति भी तो उसका कुछ कर्तव्य था। रमा निरुत्तर हो गया।

४०

रमा मुँह अँधेरे अपने बँगले पर पहुँचा। किसी को कानोंकान खबर न हुई।

नाश्ता करके रमा ने खत साफ किया, कपड़े पहने और दारोगा के पास जा पहुँचा। त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं। दारोगा ने पूछा—खैरियत तो है, नौकरों ने कोई शरारत तो नहीं की ?

रमा ने खड़े-खड़े कहा—नौकरों ने नहीं आपने शरारत की है। आपके मातहतों, अफ़सरों और सबने मिलकर मुझे उल्लू बनाया है।

दारोगा ने कुछ घबराकर कहा—आखिर बात क्या है, कहिए तो ?

रमा०—बात यही है, कि मैं इस मुआमले में अब कोई शहादत न दूँगा। उससे मेरा ताल्लुक़ नहीं। आप लोगों ने मेरे साथ चाल चली और वारण्ट

की धमकी देकर मुझे शहादत देने पर मजबूर किया। अब मुझे मालूम हो गया, कि मेरे ऊपर कोई इल्ज़ाम नहीं। आप लोगों का चकमा था। मैं अब पुलिस की तरफ़ से शहादत नहीं देना चाहता, मैं आज जज साहब से साफ़ कह दूँगा। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा!

दारोगा ने तेज होकर कहा—आपने खुद ग़बन तस्लीम किया था।

रमा०—मीज़ान की गलती थी, ग़बन न था। म्युनिसिपैलिटी ने मुझ पर कोई मुकदमा नहीं चलाया।

'यह आपको मालूम कैसे हुआ?'

'इससे आपको कोई बहस नहीं। मैं शहादत न दूँगा। साफ़-साफ़ कह दूँगा, पुलिस ने मुझे धोखा देकर शहादत दिलवायी है। जिन तारीखों का यह वाक़या है, उन तारीखों में मैं इलाहाबाद में था। म्युनिसिपल आफ़िस की हाज़िरी मौजूद है।'

दारोगा ने इस आपत्ति को हँसी में उड़ाने की चेष्टा करके कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने धोखा ही दिया; लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने को भी तो हाज़िर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठे हुए सैर करोगे। खुफ़िया पुलिस में कोई जगह मिल गयी, तो चैन-ही-चैन है। सरकार की नज़रों में इज्ज़त और रसूख़ कितना बढ़ गया। यों मारे-मारे फिरते। शायद किसी दफ़्तर में क्लर्की मिल जाती, वह भी बड़ी मुश्किल से। यहां तो बैठे-बिठाये तरक्की का दरवाज़ा खुल गया। अच्छी कार-गुज़ारी होगी, तो एक दिन राय बहादुर मुंशी रमानाथ डिप्टी सुपरिन्टेंण्ट हो जाओगे। तुम्हें हमारा एहसान मानना चाहिए! और आप उल्टे खफ़ा होते हैं।

रमा पर इस प्रलोभन का कुछ भी असर न हुआ, बोला—मुझे क्लर्क बनना मंजूर है; इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे।

इतने में डिप्टी साहब और इंस्पेक्टर भी आ पहुँचे। रमा को देखकर इंस्पेक्टर साहब ने समझाया—हमारे बाबू साहब तो पहले से तैयार बैठे हैं। बस, इसी कारगुज़ारी पर वारा-न्यारा है।

रमा ने इस भाव से कहा, मानों मैं भी अपना नफ़ा-नुकसान समझता

हूँ—जी हाँ, आज वारा-न्यारा कर दूँगा। इतने दिनों तक आप लोगों के इशारे पर चला। अब अपनी आँखों से देखकर चलूँगा।

इंस्पेक्टर ने दारोगा का मुंह देखा, दारोगा ने डिप्टी का मुँह देखा, डिप्टी ने इंस्पेक्टर का मुंह देखा। यह क्या कहता है? इंस्पेक्टर साहब विस्मित होकर बोले—क्या बात है? हलफ़ से कहता हूँ, आप कुछ नाराज मालूम होते हैं।

रमा०—मैंने फैसला किया है, कि आज अपना बयान बदल दूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता।

इंस्पेक्टर ने दया-भाव से उसकी तरफ़ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तक़दीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। हलफ़ से कहता हूँ, ऐसे मौके बहुत कम आदमियों को मिलते। आज क्या बात हुई, कि आप इतने खफ़ा हो गये? आपको कुछ मालूम है दारोगा साहब? आदमियों ने तो कोई शोखी नहीं की? अगर किसी ने आपके मिज़ाज़ के ख़िलाफ कोई काम किया हो, तो उसे गोली मार दीजिए, हलफ़ से कहता हूँ।

दारोगा—मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ।

रमा०—आप तकलीफ न करें। मुझे किसी से शिकायत नहीं है। मैं थोड़े से फ़ायदे के लिए अपने ईमान का खून नहीं कर सकता।

एक मिनट सन्नाटा रहा। किसी को कोई बात न सूझी। दारोगा कोई दूसरा चकमा सोच रहे थे, इंस्पेक्टर कोई दूसरा प्रलोभन। डिप्टी एक दूसरी ही फिक्र में था। रूखेपन से बोला—रमा बाबू यह अच्छा बात न होगा।

रमा ने भी गर्म होकर कहा—आपके लिए न होगी, मेरे लिए तो सबसे अच्छी यही बात है।

डिप्टी—नहीं! आपका वास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय; लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर भर न भूलेगा। आपको वही गवाही देना होगा जो आप दिया। अगर तुम कुछ गड़बड़ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया, तो हम तोमारे साथ दोसरा बर्ताव करेगा। एक रिपोर्ट में तुम यों (कलाइयों को ऊपर नीचे रखकर) चला जायगा।

यह कहते हुए उसने आंखें निकालकर रमा को देखा, मानो कच्चा ही

खा जायगा। रमा सहम उठा। इन आतंक से भरे शब्दों ने उसे विचलित कर दिया। यह सब कोई झूठा मुक़दमा चलाकर उसे फँसा दें, तो उसकी कौन रक्षा करेगा। उसे यह आशा न थी, कि डिप्टी साहब जो शील और विनय के पुतले बने हुए थे, एक बारगी यह रुद्र रूप धारण कर लेंगे; मगर वह इतनी आसानी से दबनेवाला न था। तेज होकर बोला—आप मुझसे जबरदस्ती शहादत दिलायेंगे ?

डिप्टी ने पैर पटकते हुए कहा—हां, जबरदस्ती दिलायेगा।

रमा०—यह अच्छी दिल्लगी है !

डिप्टी—तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है, कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था। बस चला जायगा सात साल के लिए। चक्की पीसते-पीसते हाथ में घट्टा पड़ जायगा। यह चिकना-चिकना गाल नहीं रहेगा।

रमा जेल से डरता था। जेल-जीवन की कल्पना ही से उसके रोएँ खड़े होते थे। जेल ही के भय से उसने यह गवाही देनी स्वीकार की थी। वही भय इस वक्त भी उसे कातर करने लगा। डिप्टी भाव-विज्ञान का ज्ञाता था। आसन का पता पा गया, बोला—वहां हलवा पूरी नहीं पायगा। धूल मिला हुआ आटा का रोटी, गोभी के सड़े हुए पत्तों का रसा, और अरहर की दाल का पानी खाने को पावेगा। काल कोठरी का चार महीना भी हो गया, तो तुम बच भी नहीं सकता, वहीं मर जायगा। बात-बात पर वार्डर गाली देगा, जूतों से पीटेगा, तुम समझता क्या है।

रमा का चेहरा फीका पड़ने लगा। मालूम होता था, प्रतिक्षण उसका खून सूखता चला जाता है। अपनी दुर्बलता पर उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह रो पड़ा। कांपती हुई आवाज से बोला—आप लोगों की यह इच्छा है, तो यही सही ! भेज दीजिए जेल ! मर ही जाऊँगा न ? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। जब आप यहां तक मुझे तबाह करने पर आमादा हैं, तो मैं भी मरने को तैयार हूँ। जो कुछ होना होगा, होगा।

उसका मन दुर्बलता की उस दशा को पहुँच गया था, जब ज़रा-सी सहानुभूति, ज़रा-सी सहृदयता सैकड़ों धमकियों से कहीं कारगर हो जाती है। इंस्पेक्टर साहब ने मौक़ा ताड़ लिया। उसका पक्ष लेकर डिप्टी से बोले—

हलफ़ से कहता हूँ, आप लोग आदमी को पहचानते तो हैं नहीं, लगते हैं रोब जमाने। इस तरह गवाही देना हर एक समझदार आदमी को बुरा मालूम होगा। क़ुदरती बात है। जिसे ज़रा भी इज्ज़त का ख़याल है, वह पुलिस के हाथों की कठपुतली बनना पसंद न करेगा। बाबू साहब की जगह मैं होता, तो मैं भी ऐसा करता, लेकिन इनका मतलब यह नहीं कि वह हमारे खिलाफ़ शहादत देंगे। आप लोग अपना काम कीजिए, बाबू साहब की तरफ से बेफ़िक्र रहिए, हलफ़ से कहता हूँ।

उसने रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला—आप मेरे साथ चलिए बाबूजी, आपको अच्छे रिकार्ड सुनाऊँ।

रमा ने रूठे हुए बालक की तरह हाथ छुड़ाकर कहा—मुझे दिक़ न कीजिए, इंस्पेक्टर साहब। अब तो मुझे जेलखाने में मरना है।

इंस्पेक्टर ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—आप क्यों ऐसी बातें मुँह से निकालते हैं साहब! जेलख़ाने में मरें आपके दुश्मन!

डिप्टी ने तसमा भी बाक़ी न छोड़ना चाहा। बड़े कठोर स्वर में बोला, मानो रमा से कभी का परिचय नहीं है—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार हैं; लेकिन जब वह हमारे ख़िलाफ़ गवाही देगा, हमारा ज़ड़ खोदेगा, तो हम भी अपनी कार्रवाई करेगा। ज़रूर से करेगा। कभी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैरिस्टर मोटर से उतरे।

४१

रतन पत्रों में जालपा को तो ढाढ़स देती रहती थी; पर अपने विषय में कुछ न लिखती थी। जो आप ही व्यथित हो रहा हो, उसे अपनी व्यथाओं की कथा क्या सुनाती! वही रतन जिसने रुपयों की कभी कोई हक़ीक़त न समझी, इस एक ही महीने में रोटियों की भी मुहताज हो गयी थी। उसका वैवाहिक जीवन बहुत सुखी न हो, पर उसे किसी बात का अभाव न था। मरियल घोड़े पर सवार होकर भी यात्रा पूरी हो सकती है अगर सड़क अच्छी हो, नौकर-चाकर, रुपये-पैसे और भोजन आदि की सामग्री साथ हो। घोड़ा भी तेज हो, तो पूछना ही क्या। रतन की दशा उसी सवार की-सी थी, उसी सवार की भाँति वह मन्दगति से अपनी जीवन-यात्रा कर रही थी। कभी-

कभी वह घोड़े पर झुँझलाती होगी, दूसरे सवारों को उड़े जाते देखकर उसकी भी इच्छा होती होगी कि मैं भी इसी तरह उड़ती; लेकिन वह दु:खी न थी, अपने नसीबों को रोती न थी। वह उस गाय की तरह थी, जो एक पतली सी पगहिया के बंधन में पड़कर, अपनी नाँद के भूसे-खली में मग्न रहती है। सामने हरे-हरे मैदान हैं, उसमें सुगन्धमय घासें लहरा रही हैं; पर वह पगहिया तुड़ाकर कभी उधर नहीं जाती। उसके लिए उस पगहिया और लोहे की जंजीर में कोई अन्तर नहीं। यौवन को प्रेम की इतनी क्षुधा नहीं होती, जितनी आत्मप्रदर्शन की। प्रेम की क्षुधा पीछे आती है। रतन को आत्मप्रदर्शन के सभी साधन मिले हुए थे। उसकी युवती-आत्मा अपने शृङ्गार और प्रदर्शन में मग्न थी। हँसी-विनोद, सैर-सपाटा, खाना-पीना यही उसका जीवन था, प्राय: जो सभी मनुष्यों का होता है। इससे गहरे जल में जाने की उसे न इच्छा थी न प्रयोजन। सम्पन्नता बहुत-कुछ मानसिक व्यथाओं को शांत करती है। उसके पास अपने दु:खों को भुलाने के कितने ही ढंग हैं—सिनेमा है, थिएटर है, देश-भ्रमण है, ताश हैं, पालतू जानवर हैं, सङ्गीत है। लेकिन विपन्नता को भुलाने का मनुष्य के पास कोई साधन नहीं, इसके सिवा कि वह रोये, अपने तक़दीर को कोसे या संसार से विरक्त होकर आत्म-हत्या कर ले। रतन की तक़दीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भङ्ग हो गया था और विपन्नता का कंकाल अब उसे खड़ा घूर रहा था।

और यह सब हुआ अपने ही हाथों। पंडितजी उन प्राणियों में थे, जिन्हें मौत की फ़िक्र नहीं होती। उन्हें किसी तरह यह भ्रम हो गया था, कि दुर्बल स्वास्थ्य के मनुष्य अगर पथ्य और विचार से रहें तो बहुत दिनों तक जी सकते हैं। वह पथ्य और विचार की सीमा के बाहर कभी न जाते। फिर मौत को उनसे क्या दुश्मनी थी, जो ख़्वाहमख़्वाह उनके पीछे पड़ती। अपनी वसीयत लिख डालने का ख्याल उन्हें उस वक्त आया, जब वह मरणासन्न हुए, लेकिन रतन वसीयत का नाम सुनते ही इतनी शोकातुर, इतनी भयभीत हुई, कि पण्डितजी ने उस वक्त टाल जाना ही उचित समझा। तब से फिर उन्हें इतना होश न आया, कि वसीयत लिखवाते।

पंडितजी के देहावसान के बाद रतन का मन इतना विरक्त हो गया कि

उसे किसी बात की भी सुध-बुध न रही। उसे इस भाँति सतर्क रहना चाहिए था, मानो दुश्मनों ने उसे घेर रखा हो; पर उसने सब मणिभूषण पर छोड़ दिया। और उसी मणिभूषण ने धीरे-धीरे उसकी सारी सम्पत्ति अपहरण कर ली, ऐसे-ऐसे षड्यन्त्र रचे कि सरला रतन को उसके कपट व्यवहार का आभास तक न हुआ! फन्दा जब खूब कस गया, तो इसने एक दिन आकर कहा—आज बँगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया है।

रतन ने जरा तेज़ होकर कहा—मैंने तो तुमसे कहा था, कि मैं अभी बँगला न बेचूँगी।

मणिभूषण ने विनय का आवरण उतार फेंका और त्योरी चढ़ाकर बोला—आपमें बातें भूल जाने की बुरी आदत है। इसी कमरे में मैंने आपसे जिक्र किया था और आपने हामी भरी थी। जब मैंने बेच दिया तो आप यह स्वांग खड़ा करती हैं। बँगला आज खाली करना होगा और आपको मेरे साथ चलना होगा।

'मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ।'

'मैं आपको यहाँ न रहने दूँगा।'

'मैं तुम्हारी लौंडी नहीं हूँ।'

'आपकी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। अपने कुल की मर्यादा-रक्षा के लिए मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा।'

रतन ने ओठ चबाकर कहा—मैं अपने मर्यादा की रक्षा आप कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की ज़रूरत नहीं। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहाँ की कोई चीज नहीं बेच सकते।

मणिभूषण ने वज्र-सा मारा—आपका इस घर पर और चाचाजी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी सम्पत्ति है। आप मुझसे केवल गुज़ारे का सवाल कर सकती हैं।

रतन ने विस्मित होकर कहा—तुम कुछ भंग तो नहीं खा गये हो?

मणिभूषण ने कठोर स्वर में कहा—मैं इतनी भंग नहीं खाता कि बे-सिर-पैर की बातें करने लगूँ। आप तो पढ़ी-लिखी हैं, एक बड़े वकील की धर्मपत्नी थीं। क़ानून की बहुत-सी बातें जानती होंगी। सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। चाचाजी

और मेरे पिताजी में कभी अलगौझा नहीं हुआ। चाचाजी यहाँ थे, हम लोग इन्दौर में थे; पर इससे यह नहीं सिद्ध होता, कि हममें अलगौझा था। अगर चाचा अपनी सम्पत्ति आपको देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते, और यद्यपि वह वसीयत कानून के अनुसार कोई चीज़ न होती, पर हम उसका सम्मान करते। उनका कोई वसीयत न करना साबित कर रहा है कि वह क़ानून के साधारण व्यवहार में कोई बाधा न डालना चाहते थे। आज आप को बँगला खाली करना होगा। मोटर और अन्य वस्तुएँ भी नीलाम कर दी जायेंगी। आपकी इच्छा हो, मेरे साथ चलें या यहाँ रहें। यहाँ रहने के लिए आपको दस-ग्यारह रुपये का मकान काफ़ी होगा। गुज़ारे के लिए पचास रुपये महीने का प्रबन्ध मैंने कर दिया है। लेना-देना चुका लेने के बाद इससे ज्यादा की गुंजाइश ही नहीं।

रतन ने कोई जवाब न दिया। कुछ देर वह हतबुद्धि-सी बैठी रही, फिर मोटर मँगवायी और सारे दिन वकीलों के पास दौड़ती फिरी। पंडित जी के कितने ही वकील मित्र थे। सभी ने उसका वृत्तान्त सुनकर खेद प्रकट किया और वकील साहब के वसीयत न लिख जाने पर हैरत करते रहे। अब उसके लिए एक ही उपाय था। वह यह सिद्ध करने की चेष्टा करे, कि वकील साहब और उनके भाई में अलहदगी हो गयी थी। अगर यह सिद्ध हो गया, और यह सिद्ध हो जाना बिल्कुल आसान था, तो रतन उस सम्पत्ति की स्वामिनी हो जायगी। अगर वह यह सिद्ध न कर सकी, तो उसके लिए कोई चारा न था।

अभागिनी रतन लौट आयी! उसने निश्चय किया, जो कुछ मेरा नहीं है, उसे लेने के लिए मैं झूठ का आश्रय न लूँगी। किसी तरह नहीं। मगर ऐसा क़ानून बनाया किसने? क्या स्त्री इतनी नीच, इतनी तुच्छ, इतनी नगण्य है? क्यों?

दिन भर रतन चिन्ता में डूबी, मौन बैठी रही। इतने दिनों वह अपने को इस घर की स्वामिनी समझती रही। कितनी बड़ी भूल थी। पति के जीवन में जो लोग उसका मुँह ताकते थे, वे आज उसके भाग्य के विधाता हो गये। यह घोर अपमान रतन-जैसी मानिनी स्त्री के लिए असह्य था। माना, कमाई पंडितजी की थी, पर यह गाँव तो उसी ने खरीदा था, इनमें कई मकान तो उसके सामने ही बने। उसने यह एक क्षण के लिए भी न

खयाल किया था, कि एक दिन यह जायदाद मेरी जीविका का आधार होगी। इतनी भविष्यचिन्ता वह कर ही न सकती थी। उसे इस जायदाद के खरीदने में, उसके सँवारने और सजाने में वही आनन्द आता था, जो माता अपनी सन्तान को फलते-फूलते देखकर पाती है। उसमें स्वार्थ का भाव न था, केवल अपनेपन का गर्व था, वही ममता थी। पर पति की आँखें बन्द होते ही उसके पाले और गोद के खेलाये बालक भी उसकी गोद से छीन लिये गये। उसका उन पर कोई अधिकार ही नहीं। अगर वह जानती कि एक दिन यह कठिन समस्या आयेगी, तो वह चाहे रुपये लुटा देती या दान कर देती, पर सम्पत्ति की कील अपनी छाती पर न गाड़ती। पंडितजी की ऐसी कौन बहुत बड़ी आमदनी थी! क्या गर्मियों में वह शिमले न जा सकती थी? दो-चार नौकर न रखे जा सकते थे? अगर वह गहने ही बनवाती, तो एक-एक मकान के मूल्य का एक-एक गहना बनवा सकती थी; पर उसने इन बातों को कभी उचित सीमा से आगे न बढ़ने दिया। केवल यही स्वप्न देखने के लिए? यही स्वप्न? इसके सिवा और था ही क्या? जो कल उसका था, उसकी ओर आज आँखें उठाकर वह अब देख भी नहीं सकती? कितना महँगा था। वह स्वप्न! हाँ, वह, अब अनाथिनी थी। कल तक दूसरों को भीख देती थी। आज उसे खुद भीख माँगनी पड़ेगी। और कोई आश्रय नहीं! पहले भी वह अनाथिनी थी, केवल भ्रम-वश अपने को स्वामिनी समझ रही थी। अब उस भ्रम का सहारा भी नहीं रहा।

सहसा उसके विचारों ने पलटा खाया। मैं क्यों अपने को अनाथिनी समझ रही हूँ? क्यों दूसरे के द्वार भीख माँगूँ। संसार में लाखों ही स्त्रियाँ मेहनत-मजूरी करके जीवन-निर्वाह करती हैं। क्या मैं कोई काम नहीं कर सकती? क्या मैं कपड़ा नहीं सी सकती, किसी चीज़ की छोटी-मोटी दूकान नहीं रख सकती? लड़के भी पढ़ा सकती हूँ। यही न होगा, लोग हँसेंगे, मगर मुझे उस हँसी की क्या परवा। वह मेरी हँसी नहीं है, अपने समाज की हँसी है।

शाम को द्वार पर कई ठेलेवाले आ गये। मणिभूषण ने आकर कहा—चाचीजी आप जो-जो चीज़ें कहें लदवाकर भेजवा दूँ। मैंने एक मकान ठीक कर लिया है।

रतन ने कहा—मुझे किसी चीज की ज़रूरत नहीं। न तुम मेरे लिए मकान लो। जिस चीज पर मेरा कोई अधिकार नहीं, मैं हाथ से भी नहीं छू सकती। मैं अपने घर से कुछ लेकर नहीं आयी थी। उसी तरह लौट जाऊँगी।

मणिभूषण ने लज्जित होकर कहा—आपका सब कुछ है। यह आप कैसे कहती हैं, कि आपका कोई अधिकार नहीं। आप वह मकान देख लें। पन्द्रह रुपया किराया है। मैं तो समझता हूँ, आपको कोई कष्ट न होगा। जो-जो चीजें आप कहें यहाँ से पहुँचा दूँ।

रतन ने व्यंगमय आँखों से देखकर कहा—तुमने पन्द्रह रुपये का मकान मेरे लिए व्यर्थ लिया। इतना बड़ा मकान लेकर मैं क्या करूँगी। मेरे लिए एक कोठरी काफ़ी है, जो दो रुपये में मिल जायगी। सोने के लिये ज़मीन है ही। दया का बोझ सिर पर जितना कम हो उतना ही अच्छा।

मणिभूषण ने बड़े विनम्र भाव से कहा—आखिर आप चाहती क्या हैं? कहिए तो!

रतन उत्तेजित होकर बोली—मैं कुछ नहीं चाहती। मैं इस घर का एक तिनका भी अपने साथ न ले जाऊँगी। जिस चीज पर मेरा कोई अधिकार नहीं, वह मेरे लिए वैसे ही है जैसे किसी गैर आदमी की चीज। मैं दया की भिखारिणी न बनूँगी। तुम इन चीज़ों के अधिकारी हो, ले जाओ। मैं ज़रा भी बुरा नहीं मानती। दया की चीज न ज़बरदस्ती ली जा सकती है, न ज़बरदस्ती दी जा सकती है। संसार में हज़ारों विधवाएँ हैं, जो मेहनत-मजूरी करके अपना निर्वाह कर रही हैं। मै भी वैसी ही हूँ। मैं भी उसी तरह मजूरी करूँगी और अगर न कर सकूँगी, तो किसी गड्ढे में डूब मरूँगी। जो अपना पेट भी न पाल सके उसे जीते रहने का, दूसरों का बोझ बनने का कोई हक़ नही है।

यह कहती हुई रतन घर से निकली और द्वार की ओर चली।

मणिभूषण ने उसका रास्ता रोक कर कहा—अगर आपकी इच्छा न हो तो मैं बँगला अभी न बेचूँ।

रतन ने जलती हुई आँखों से उसकी ओर देखा। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था, आँसुओं के उमड़ते हुए वेग को रोककर बोली—मैंने कह दिया, इस घर की चीज़ से मेरा नाता नहीं है। मैं किराये की लौंडी थी। लौंडी का

घर से क्या सम्बन्ध है ? न जाने किस पापी ने यह क़ानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है तो एक दिन उसीके सामने उस पापी से पूछूँगी, क्या तेरे घर में माँ-बहनें न थीं ? तुझे उनका अपमान करते लज्जा न आयी ? अगर मेरी ज़बान में इतनी ताक़त होती कि सारे देश में उसकी आवाज़ पहुँचती, तो मैं सब स्त्रियों से कहती—बहनों, किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग न बना लो, चैन की नींद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा। अगर तुम्हारे पुरुष ने कोई तरका नहीं छोड़ा, तो तुम अकेली रहो, चाहे परिवार में, एक ही बात है। तुम अपमान और मजूरी से नहीं बच सकतीं। अगर तुम्हारे पुरुष ने कुछ छोड़ा है, तो अकेली रहकर भोग सकती हो, परिवार में रहकर तुम्हें उससे हाथ धोना पड़ेगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, काँटों की शय्या है; तुम्हारा पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जन्तु है।

संध्या हो गयी थी। गर्द भरी हुई फागुन की वायु चलनेवालों की आँखों में धूल झोंक रही थी। रतन चादर सँभालती सड़क पर चली जा रही थी। रास्ते में कई परिचित स्त्रियों ने उसे टोका, कई ने अपनी मोटर रोक ली और उसे बैठने को कहा; पर रतन को उनकी सहृदयता इस समय वाण-सी लग रही थी। वह तेज़ी से क़दम उठाती हुई जालपा के घर चली जा रही थी। आज उसका वास्तविक जीवन आरम्भ हुआ।

४२

ठीक दस बजे जालपा और देवीदीन कचहरी पहुँच गये। दर्शकों की काफ़ी भीड़ थी। ऊपर गैलरी दर्शकों से भरी हुई थी। कितने ही आदमी बरामदों में और सामने के मैदान में खड़े थे। जालपा ऊपर गैलरी में जा बैठी। देवीदीन बरामदे में खड़ा हो गया।

इजलास पर जज साहब के एक तरफ़ अहलमद था और दूसरी तरफ़ पुलिस के कई कर्मचारी खड़े थे। सामने कठघरे के बाहर दोनों तरफ़ के वकील खड़े मुक़दमा पेश होने का इन्तज़ार कर रहे थे। मुलजिमों की संख्या पन्द्रह से कम न थी। सब कठघरे के बग़ल में ज़मीन पर बैठे हुए थे। सभी के

हाथों में हथकड़ियाँ थीं, पैरों में बेड़ियाँ। कोई लेटा था, कोई बैठा, था, कोई आपस में बातें कर रहा था। दो पंजे लड़ा रहे थे। दो में किसी विषय पर बहस हो रही थी। सभी प्रसन्न-चित्त थे। घबराहट, निराशा, या शोक का किसी के चेहरे पर चिह्न न था।

ग्यारह बजते-बजते अभियोगी की पेशी हुई। पहले जाब्ते की कुछ बात हुई, फिर दो-एक पुलिस की शहादतें हुई। अन्त में तीन बजे रमानाथ गवाहों के कठघरे में लाया गया। दर्शकों में सनसनी-सी फैल गयी। कोई तम्बोली की दूकान से पान खाता हुआ भागा, किसी ने समाचार-पत्र को मरोड़कर जेब में रखा और सब इजलास के कमरे में जमा हो गये। जालपा भी सँभलकर बार्जे में खड़ी हो गयी। वह चाहती थी कि एक बार रमा की आँखें उठ जातीं और उसे देख लेतीं, लेकिन रमा सिर झुकाये खड़ा था, मानों वह इधर-उधर देखते डर रहा हो। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था! कुछ सहमा हुआ, कुछ घबराया हुआ इस तरह खड़ा था, मानो उसे किसी ने बांध रखा है और भागने की कोई राह नहीं है। जालपा का कलेजा धक्-धक् कर रहा था, मानों उसके भाग्य का निर्णय हो रहा हो।

रमा का बयान शुरू हुआ। पहला ही वाक्य सुनकर जालपा सिहर उठी, दूसरे वाक्य ने उसकी त्योरियों पर बल डाल दिये, तीसरे वाक्य ने उसके चेहरे का रंग फ़क़ कर दिया, और चौथा वाक्य सुनते ही वह एक लम्बी साँस खींचकर पीछे रखी हुई कुरसी पर टिक गयी; मगर दिल फिर न माना। जंगले पर झुककर फिर उधर कान लगा दिये। वही पुलिस की सिखायी हुई शहादत थी जिसका आशय वह देवीदीन के मुँह से सुन चुकी थी। अदालत में सन्नाटा छाया हुआ था। जालपा ने कई बार खाँसा, कि शायद अब भी रमा की आँखें ऊपर उठ जायँ; लेकिन रमा का सिर और भी झुक गया। मालूम नहीं, उसने जालपा के खाँसने की आवाज़ पहचान ली या आत्म-ग्लानि का भाव उदय हो गया। उसका स्वर भी कुछ धीमा हो गया।

एक महिला ने जो जालपा के साथ ही बैठी थीं, नाक सिकोड़कर कहा—जी चाहता है, इस दुष्ट को गोली मार दें। ऐसे-ऐसे स्वार्थी भी इस अभागे देश में पड़े हैं, जो नौकरी या थोड़े-से धन के लोभ में निरपराधों के गले पर छुरी फेरने से भी नहीं हिचकते!

जालपा ने कोई जवाब न दिया !

एक दूसरी महिला ने जो आँखों पर ऐनक लगाये हुए थीं, निराशा के भाव से कहा—इस अभागे देश का ईश्वर ही मालिक है । गवर्नरी तो लाला को कहीं मिली नहीं जाती ! अधिक-से-अधिक कहीं क्लर्क हो जायँगे । उसी के लिए अपनी आत्मा की हत्या कर रहे हैं । मालूम होता है, कोई मरभुखा नीच आदमी है, पल्ले सिरे का कमीना और छिछोरा ।

तीसरी महिला ने ऐनकवाली देवी से मुसकराकर पूछा—आदमी फैशनेबुल है और पढ़ा-लिखा भी मालूम होता है । भला, तुम इसे पा जाओ तो क्या करो ?

ऐनकबाज़ देवी ने उद्दण्डता से कहा—नाक काट लूँ ! बस, नकटा बनाकर छोड़ दूँ !

'और जानती हो, मैं क्या करूँ ?'

'नहीं । शायद गोली मार दोगी ?'

'न ! गोली न मारूँ । सरे बाज़ार खड़ा करके पाँच सौ जूते लगवाऊँ !'

'चाँद गंजी हो जाय !'

'उस पर तुम्हें ज़रा भी दया न आयेगी ?'

'यह कुछ कम दया है ? इसकी पूरी सज़ा तो यह है, कि किसी ऊँची पहाड़ी से ढकेल दिया जाय ! अगर यह महाशय अमेरिका में होते, तो ज़िन्दा जला दिये जाते ।'

एक वृद्धा ने इन युवतियों का तिरस्कार करके कहा—क्यों व्यर्थ में मुँह खराब करती हो ? यह आदमी घृणा के योग्य नहीं, दया के योग्य है । देखती नहीं हो, उसका चेहरा कैसा पीला हो गया है, जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो । अपनी मां या बहन को देख ले. तो ज़रूर रो पड़े । आदमी दिल का बुरा नहीं है । पुलिस ने धमकाकर उसे सीधा किया है । मालूम होता है, एक-एक शब्द उसके हृदय को चीर-चीर कर निकल रहा हो ।

ऐनकवाली महिला ने व्यंग्य किया—जब अपने पाँव में काँटा चुभता है, तब आह निकलती है....

जालपा अब वहाँ न ठहर सकी । एक-एक बात चिनगारी की तरह उसके दिल पर फफोले डाल देती थी । ऐसा जी चाहता था कि इसी वक्त उठकर कह

दे, यह महाशय बिल्कुल झूठ बोल रहे हैं, सरासर झूठ; और इसी वक्त इसका सबूत दे दे। वह इस आवेश को पूरे बल से दबाये हुए थी। उसका मन अपनी कायरता पर उसे धिक्कार रहा था। क्यों वह इसी वक्त सारा वृत्तान्त नहीं कह सुनाती? पुलिस उसकी दुश्मन हो जायगी, हो जाय। कुछ तो अदालत को ख़याल होगा। कौन जाने, इन गरीबों की जान बच जाय। जनता को तो मालूम हो जायगा कि यह झूठी शहादत है। उसके मुँह से एक बार आवाज़ निकलते-निकलते रह गयी। परिणाम के भय ने उसकी ज़बान पकड़ ली।

आख़िर उसने वहाँ से उठकर चले जाने ही में कुशल समझी।

देवीदीन उसे उतरते देखकर बरामदे में चला आया और दया से सने हुए स्वर में बोला—क्या घर चलती हो बहूजी?

जालपा ने आँसुओं के वेग को रोककर कहा—हाँ, यहाँ अब नहीं बैठा जाता।

हाते के बाहर निकलकर देवीदीन ने जालपा को सान्त्वना देने के इरादे से कहा—पुलिस ने जिसे एक बार बूटी सुंघा दी, उस पर किसी दूसरी चीज़ का असर नहीं हो सकता।

जालपा ने घृणा के भाव से कहा—यह सब कायरों के लिए है।

कुछ दूर दोनों चुपचाप चलते रहे। सहसा जालपा ने कहा—क्यों दादा, अब और तो कहीं अपील न होगी! क़ैदियों का यहीं फैसला हो जायगा?

देवीदीन इस प्रश्न का आशय समझ गया। बोला—नहीं, हाईकोर्ट में अपील हो सकती है।

फिर कुछ दूर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। जालपा एक वृक्ष की छाँह में खड़ी हो गयी और बोली—दादा, मेरा जी चाहता है, आज जज साहब से मिलकर सारा हाल कह दूँ! शुरू से जो कुछ हुआ सब कह सुनाऊँ। मैं सबूत दे दूँगी, तब तो मानेंगे?

देवीदीन ने आँख फाड़कर कहा—जज साहब से!

जालपा ने उसकी आँखों से आँखें मिलाकर कहा—हाँ!

देवीदीन ने दुविधे में पड़कर कहा—मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता बहूजी। हाकिम का वास्ता। न-जाने चित पड़े या पट।

जालपा बोली—क्या वह पुलिसवालों से यह नहीं कह सकता कि तुम्हारा गवाह बनाया हुआ है, झूठा है ?

'कह तो सकता है ।'

'तो आज मैं उनसे मिलूँ ? मिल तो लेता है ?

'चलो, दरियाफ्त करेंगे; लेकिन मामला जोखिम है ।'

'क्या जोखिम है बताओ !'

'भैया पर कहीं झूठी गवाही का इलजाम लगाकर सज़ा कर दे तो ?

'तो कुछ नहीं । जो जैसा करे, वैसा भोगे ।'

देवीदीन ने जालपा की इस निर्ममता पर चकित होकर कहा—एक दूसरा खटका है । सबसे बड़ा डर उसी का है ।

जालपा ने उद्धत भाव से पूछा—वह क्या ?

देवी०—पुलिसवाले बड़े कायर होते हैं । किसी का अपमान कर डालना तो इनकी दिल्लगी है । जज साहब पुलिस कमिसनर को बुलाकर यह सब कहेंगे जरूर । कमिसनर सोचेंगे कि यह औरत सारा खेल बिगाड़ रही है । इसी को गिरफ्तार कर लो । जज अँगरेज होता तो निडर होकर पुलिस को तंबीह करता । हमारे भाई तो ऐसे मुक़दमों में चूँ करते डरते हैं, कि कहीं हमारे ही ऊपर न बगावत का इलजाम लग जाय । यही बात है । जज साहब पुलिस कमिसनर से जरूर कह सुनावेंगे । फिर यह तो न होगा कि मुक़दमा उठा लिया जाय, यही होगा कि कलई न खुलने पावे । कौन जाने तुम्हीं को गिरफ़्तार कर लें ? कभी-कभी जब गवाह बदलने लगता है या कलई खोलने पर उतारू हो जाता है, पुलिसवाले उसके घरवालों को दबाते हैं । इनकी माया अपरम्पार है ।

जालपा सहम उठी । अपनी गिरफ़्तारी का उसे भय न था, लेकिन कहीं पुलिसवाले रमा पर अत्याचार न करें । इस भय ने उसे कातर कर दिया । उसे इस समय ऐसी थकान मालूम हुई, मानों सैकड़ों कोस की मंजिल मारकर आयी हो । उसका उत्साह बर्फ के समान पिघल गया ।

कुछ दूर और आगे चलने के बाद उसने देवीदीन से पूछा—अब तो उनसे मुलाकात न हो सकेगी ?

देवीदीन ने पूछा—भैया से ?

हाँ।'

'किसी तरह नहीं। पहरा और कड़ा कर दिया गया होगा। चाहे उस बँगले को छोड़ दिया हो। और अब उनमें मुलाकात हो ही गयी तो क्या फायदा? अब किसी तरह अपना बयान नहीं बदल सकते। दरोग-हलफी में फँस जायँगे।

कुछ दूर और चलकर जालपा ने कहा—मैं सोचती हूँ, घर जाऊँ। यहाँ रहकर अब क्या करूँगी?

देवीदीन ने करुणा भरी हुई आँखों से उसे देखकर कहा—नहीं, अब अभी मैं न जाने दूँगा। तुम्हारे बिना हमारा यहाँ पल-भर जी न लगेगा। बुढ़िया तो रो-रोकर परान ही दे देगी। अभी यहाँ रहो, देखो क्या फैसला होता है। भैया को मैं इतना कच्चे दिल का आदमी नहीं समझता था। तुम लोगों की बिरादरी में सभी सरकारी नौकरी पर जान देते हैं। मुझे तो कोई सौ रुपया भी तलब दे, तो नौकरी न करूँ। अपने रोज़गार की बात दूसरी ही है। इसमें आदमी कभी थकता नहीं। नौकरी में जहाँ पाँच छः घण्टे हुए कि देह टूटने लगी, जम्हाइयाँ आने लगीं।

रास्ते में और कोई बातचीत न हुई। जालपा का मन अपनी हार मानने के लिये किसी तरह राजी न होता था। वह परास्त होकर भी दर्शक की भाँति यह अभिनय देखने से संतुष्ट न हो सकती थी। वह उस अभिनय में सम्मिलित होने और अपना पार्ट खेलने के लिए विकल हो रही थी। क्या एक बार फिर रमा से मुलाकात न होगी? उसके हृदय में उन जलते हुए शब्दों का एक सागर उमड़ रहा था, जो वह उससे कहना चाहती थी। उसे रमा पर ज़रा भी दया न आती थी, उससे रत्ती भर सहानुभूति न होती थी। वह उससे कहना चाहती थी—तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो, जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुए हाथों के स्पर्श से मेरी देह में छाले पड़ जायँगे। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो! कायर!

जालपा का मुखमण्डल तेजमय हो गया। गर्व से उसकी गर्दन तन गयी। वह शायद समझते होंगे, जालपा जिस वक्त मुझे झब्बेदार पगड़ी बाँधे

घोड़े पर सवार देखेगी, फूली न समायेगी। जालपा इतनी नीच नहीं है। तुम घोड़े पर नहीं, आसमान में उड़ो, मेरी आँखों में हत्यारे हो, पूरे हत्यारे, जिसने अपनी जान बचाने के लिए इतने आदमियों की गर्दन पर छुरी चलाई। मैंने चलते-चलते समझाया था, उसका कुछ असर न हुआ? ओह! इतने धन-लोलुप हो, इतने लोभी! कोई हरज नहीं। जालपा अपने पालन और रक्षा के लिए तुम्हारी मुहताज नहीं। इन्हीं सन्तप्त भावनाओं में डूबी हुई जालपा घर पहुँची।

एक महीना गुज़र गया। जालपा कई दिन तक बहुत विकल रही। कई बार उन्माद-सा हुआ कि अभी सारी कथा किसी पत्र में छपवा दूँ, सारी कलई खोल दूँ, सारे हवाई किले ढा दूँ। धीरे-धीरे यह सभी उद्वेग शान्त हो गये। आत्मा की गहराइयों में छिपी हुई शक्ति उसकी ज़बान बन्द कर देती थी। रमा को उसने हृदय से निकाल दिया था। उसके प्रति अब उसे क्रोध न था, द्वेष न था, दया भी न थी, केवल उदासीनता थी। उसके मर जाने की सूचना पाकर भी शायद वह न रोती। हाँ, इसे ईश्वरीय विधान की एक लीला, माया का एक निर्मम हास्य, एक क्रूर क्रीड़ा समझकर थोड़ी देर के लिए वह दुःखी हो जाती। प्रणय का वह बंधन जो उसके गले में ढाई साल पहले पड़ा था, टूट चुका था; पर उसका निशान बाक़ी था। रमा को इस बीच में उसने कई बार मोटर पर अपने घर के सामने से जाते देखा। उसकी आँखें किसी को खोजती हुई मालूम होती थीं। उन आँखों में कुछ लज्जा थी, कुछ क्षमा याचना; पर जालपा ने कभी उसकी तरफ आँख न उठायी। वह शायद इस वक्त आकर उसके पैरों पर गिर पड़ता, तो भी वह उसकी ओर न ताकती। रमा की इस घृणित कायरता और महान् स्वार्थपरता ने जालपा के हृदय को मानो चीर डाला था। फिर भी उस प्रणय-बन्धन का निशान अभी बना हुआ था। रमा की वह प्रेम-विह्वल मूर्ति, जिसे देखकर एक दिन वह गद्गद् हो जाती थी, कभी-कभी उसके हृदय में छाये हुए अँधेरे में क्षीण, मलीन, निरानन्द ज्योत्स्ना की भाँति प्रवेश करती और एक क्षण के लिए वह स्मृतियाँ विलाप कर उठतीं। फिर उसी अन्धकार और नीरवता का पर्दा पड़ जाता। उसके लिए भविष्य की मृदु स्मृतियाँ न थीं केवल कठोर नीरस वर्तमान विकराल रूप से खड़ा घूर रहा था।

वह जालपा, जो अपने घर बात-बात पर मान किया करती थी, अब सेवा, त्याग और सहिष्णुता की मूर्ति थी। जग्गो मना करती, पर वह मुंह अँधेरे सारे घर में झाड़ू लगा आती, चौका-बरतन कर डालती, आँटा गूँध कर रख देती, चूल्हा जला देती। तब बुढ़िया का काम केवल रोटियाँ सेंकना था। छूत-विचार को भी उसने ताक पर रख दिया था। बुढ़िया उसे ठेल-ठालकर रसोई में ले जाती और कुछ-न-कुछ खिला देती। दोनों में माँ-बेटी का-सा प्रेम हो गया था।

मुक़दमे की सब कार्रवाई समाप्त हो चुकी थी। दोनों पक्ष के वकीलों की बहस हो चुकी थी। केवल फ़ैसला सुनाना बाकी था। आज उसकी तारीख थी। आज बड़े सवेरे घर के काम-धन्धों से फ़ुर्सत पाकर जालपा दैनिक-पत्र वाले की आवाज़ पर कान लगाये बैठी थी, मानो आज उसी का भाग्य-निर्णय होने वाला है। इतने में देवीदीन ने पत्र लाकर उसके सामने रख दिया। जालपा पत्र पर टूट पड़ी और फ़ैसला पढ़ने लगी। फ़ैसला क्या था, एक ख़याली कहानी थी, जिसका प्रधान नायक रमा था। जज ने बार-बार उसकी प्रशंसा की थी। सारा अभियोग उसके बयान पर अवलम्बित था।

देवीदीन ने पूछा—फ़ैसला छपा है ?

जालपा ने पत्र पढ़ते हुए कहा—हाँ, है तो।

'किसकी सज़ा हुई ?'

'कोई नहीं छूटा। एक को फाँसी की सजा मिली, पांच को दस-दस साल और आठ को पाँच-पाँच साल की। उसी दिनेश को फाँसी हुई।'

यह कहकर उसने समाचार-पत्र रख दिया और एक लम्बी साँस लेकर बोली—इन बेचारों के बाल-बच्चों का न जाने क्या हाल होगा ?

देवीदीन ने तत्परता से कहा—तुमने जिस दिन मुझसे कहा था, उसी दिन से मैं इन सबों का पता लगा रहा हूँ। आठ आदमियों का तो अभी तक व्याह ही नहीं हुआ, और उनके घरवाले मजे में हैं। किसी बात की तकलीफ नहीं है। पाँच आदमियों का विवाह तो हो गया है; पर घर के खुश हैं। किसी के घर रोज़गार होता है, कोई जमींदार है, किसी के बाप-चाचा नौकर हैं। मैंने कई आदमियों से पूछा। यहाँ कुछ चन्दा भी किया गया है। अगर उनके घरवाले लेना चाहें तो दिया जायगा। खाली दिनेश तबाह है। दो

छोटे-छोटे बच्चे हैं, बुढ़िया मां है, और औरत। यहाँ किसी स्कूल में मास्टर था। एक मकान किराये पर लेकर रहता था। उसी की खराबी है।

जालपा ने पूछा—उसके घर का पता लगा सकते हो?

'हाँ, इसका पता लगाना कौन मुसकिल है।'

जालपा ने याचना-भाव से कहा—तो कब चलोगे? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। अभी तो वक्त है। चलो, ज़रा देखें।

देवीदीन ने आपत्ति करके कहा—पहले मैं देख तो आऊँ। इस तरह उटक्करलैस मेरे साथ कहाँ-कहाँ दौड़ती फिरोगी?

जालपा ने मन को दबाकर लाचारी से सिर झुका लिया और कुछ न बोली।

देवीदीन चला गया। जालपा फिर समाचार-पत्र देखने लगी; पर उसका ध्यान दिनेश की ओर लगा हुआ था। बेचारा फाँसी पा जायगा। जिस वक्त उसने फाँसी का हुक्म सुना होगा, उसकी क्या दशा हुई होगी। उसकी बूढ़ी माँ और स्त्री यह ख़बर सुनकर छाती पीटने लगी होंगी। बेचारा स्कूल मास्टर ही तो था, मुश्किल से रोटियाँ चलती होंगी। और क्या सहारा होगा? उनकी विपत्ति की कल्पना करके उसे रमा के प्रति ऐसी उत्तेजनापूर्ण घृणा हुई कि वह उदासीन न रह सकी। उसके मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इस वक्त वह आ जायँ तो धिक्कारूँ, कि वह भी शायद याद करें। तुम मनुष्य हो? कभी नहीं। तुम मनुष्य के रूप में राक्षस हो, राक्षस! तुम इतने नीच हो, कि उसको प्रगट करने के लिए कोई शब्द नहीं हैं। तुम इतने नीच हो, कि आज कमीने-से-कमीना आदमी भी तुम्हारे ऊपर थूक रहा है। तुम्हें किसी ने पहले ही क्यों न मार डाला? इन आदमियों की जान तो जाती ही; पर तुम्हारे मुंह में कालिख न लगती! तुम्हारा इतना पतन हुआ कैसे! जिसका पिता इतना सच्चा, इतना ईमानदार हो, वह इतना लोभी, इतना कायर!

शाम हो गयी पर देवीदीन न आया। जालपा बार-बार खिड़की पर खड़े हो-होकर इधर-उधर देखती थी; पर देवीदीन का पता न था। धीरे-धीरे आठ बज गये और देवी न लौटा। सहसा एक मोटर द्वार पर आकर रुकी और रमा ने उतरकर जग्गो से पूछा—सब कुशल-मंगल है न, दादी! दादा कहाँ गये हैं?

जग्गो ने एक बार उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। केवल इतना बोली—कहीं गये होंगे, मैं नहीं जानती।

रमा ने सोने की चार चूड़ियाँ जेब से निकालकर जग्गो के पैरों पर रख दीं और बोला—यह तुम्हारे लिए लाया हूँ दादी। पहनों, ढीली तो नहीं है?

जग्गो ने चूड़ियाँ उठाकर जमीन पर पटक दीं और आँखें निकालकर बोली—जहाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है? भगवान् की दया से बहुत चूढ़ियाँ पहन चुकी और अब भी सेर-दो-सेर सोना पड़ा होगा; लेकिन जो खाया, पहना, अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया, पाप की गठरी सिर पर नहीं लादी, नीयत नहीं बिगाड़ी। उस कोख में आग लगे जिसने तुम जैसे कपूत को जन्म दिया। यह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आये होगे। समझते होगे, तुम्हारे रुपयों की थैली देखकर वह लट्टू हो जायगी। इतने दिन उसके साथ रह-कर भी तुम्हारी लोभी आँखें उसे न पहचान सकीं। तुम जैसे राकस उस देवी के जोग न थे। अगर अपना कुशल चाहते हो, तो इन्हीं पैरों जहाँ से आये हो वहाँ लौट जाओ, उसके सामने जाकर क्यों अपना पानी उतरवा-ओगे। तुम आज पुलिस के हाथों जख्मी होकर, मार खाकर आये होते, तुम्हें सजा हो गयी होती, तुम जेहल में डाल दिये गये होते, तो बहू तुम्हारी पूजा करती, तुम्हारे चरन धो-धोकर पीती। वह उन औरतों में है चाहे मजूरी करे, उपास करे,, फटे चीथड़े पहने, पर किसी की बुराई नहीं देख सकती। अगर तुम मेरे लड़के होते तो, तुम्हें जहर दे देती। क्यों खड़े मुझे जला रहे हो? चले क्यों नहीं जाते? मैंने तुमसे कुछ ले तो नहीं लिया है?

रमा सिर झुकाये चुपचाप सुनता रहा। तब आहत स्वर में बोला—दादी, मैंने बुराई की और इसके लिए मरते दम तक लज्जित रहूँगा। लेकिन तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, उतना नीच नहीं हूँ। अगर तुम्हें मालूम होता, कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी-कैसी सख्तियां कीं, मुझे कैसी-कैसी धमकियां दीं, तो तुम मुझे राक्षस न कहतीं।

जालपा के कानों में इन आवाज़ों की भनक पड़ी। उसने जीने से झांक-कर देखा। रमानाथ खड़ा था। सिर पर बनारसी रेशमी साफा था, रेशम का बढ़िया कोट, आंखों पर सुनहरी ऐनक। इस एक ही महीने में उसकी

देह निखर आयी थी, रंग भी कुछ अधिक गोरा हो गया था। ऐसी कांति उसके चेहरे पर कभी न दिखायी दी थी। उसके अन्तिम शब्द जालपा के कानों में पड़ गये। बाज़ की तरह कूदकर धम्-धम् करती हुई नीचे आयी और ज़हर में बुझे हुए नेत्रबाणों का उस पर प्रहार करती हुई बोली—अगर तुम सख्तियों और धमकियों से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकार नहीं! क्या सख्तियां थीं? जरा सुनूं तो? लोगों ने हँसते-हँसते सिर कटा लिये हैं, अपने बेटों को मरते देखा है, कोल्हू में पेले जाना मंजूर किया है, पर सचाई से जौ-भर भी न हटे। तुम भी तो आदमी हो, तुम क्यों धमकी में आ गये? क्यों नहीं छाती खोलकर खड़े हो गये, कि इसे गोली का निशाना बना लो; पर मैं झूठ न बोलूँगा। क्यों नहीं सिर झुका दिया? देह के भीतर इसीलिये आत्मा रखी गयी है, कि देह उसकी रक्षा करे। इसलिए नहीं कि उसका सर्वनाश कर दे। इस पाप का क्या पुरस्कार मिला? जरा मालूम तो हो?

रमा ने दबी आवाज़ से कहा—अभी तो कुछ नहीं।

जालपा ने सर्पिणी की भांति फुंकारकर कहा—यह सुनकर मुझे खुशी हुई। ईश्वर करे, तुम्हें मुंह में कालिख लगाकर भी कुछ न मिले। मेरी यह सच्चे दिल से प्रार्थना है। लेकिन नहीं, तुम जैसे मोम के पुतले को पुलिसवाले कभी नाराज न करेंगे। तुम्हें कोई जगह मिलेगी और शायद अच्छी जगह मिले; मगर जिस जाल में तुम फँसे हो, उससे निकल नहीं सकते। झूठी गवाही, झूठे मुक़दमे बनाना और पाप का व्यापार करना तुम्हारे भाग्य में लिख गया। जाओ शौक से जिन्दगी के सुख लूटो। मैंने तुमसे पहले कह दिया था और आज फिर कहती हूँ, कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया, कि तुम मर गये। तुम भी समझ लो, कि मैं मर गयी। बस, जाओ। मैं औरत हूँ। मगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे, तो चाहे उसे न मार सकूं, अपनी गर्दन पर छुरी चला दूँगी। क्या तुममें औरत के बराबर भी हिम्मत नहीं है?

रमा ने भिक्षुकों की भांति गिड़गिड़ाकर कहा—तुम मेरा कोई उज्र न सुनोगी?

जालपा ने अभिमान से कहा—नहीं।

'तो मैं मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ ?'

'तुम्हारी खुशी !'

'तुम मुझे क्षमा न करोगी ?'

'कभी नहीं, किसी तरह नहीं ?'

रमा एक क्षण सिर झुकाये खड़ा रहा, तब धीरे-धीरे बरामदे के नीचे जाकर जग्गो से बोला—दादी, दादा आयें तो कह देना, मुझसे जरा देर मिल लें। जहां कहें, आ जाऊँ।

जग्गो ने कुछ पिघलकर कहा—कल यहीं चले आना।

रमा ने मोटर पर बैठते हुए कहा—यहां अब न आऊँगा, दादी !

मोटर चली गयी, तो जालपा ने कुत्सित भाव से कहा—मोटर दिखाने आये थे, जैसे खरीद ही तो लाये हों !

जग्गो ने भर्त्सना की—तुम्हें इतना बे-लगाम न होना चाहिए था, बहू ! दिल पर चोट लगती हैं; तो आदमी को कुछ नहीं सूझता।

जालपा ने निष्ठुरता से कहा—ऐसे हयादार नहीं हैं; दादी ! इसी सुख के लिए तो आत्मा बेचो। उनसे यह सुख भला क्या छोड़ा जायगा ? पूछा नहीं; दादा से मिलकर क्या करोगे ? वह होते तो ऐसी फटकार सुनाते कि छठी का दूध याद आ जाता !

जग्गो ने तिरस्कार के भाव से कहा—तुम्हारी जगह मैं होती बहू; तो मेरे मुंह से ऐसी बातें न निकलतीं। तुम्हारा हिया बड़ा कठोर है। दूसरा मर्द होता तो इस तरह चुपका-चुपका न सुनता ? मैं तो थर-थर कांप रही थी कि कहीं तुम्हारे ऊपर हाथ न चला दें। मगर है बड़ा गमखोर !

जालपा ने उसी निष्ठुरता से कहा—इसे गमखोरी नहीं कहते दादी; यह बेहयाई है।

देवीदीन ने आकर कहा—क्या यहां भैया आये थे ? मुझे मोटर पर रास्ते में दिखायी दिये थे।

जग्गो ने कहा—हाँ; आये थे; कह गये हैं; दादा मुझसे जरा मिल लें।

देवीदीन ने उदासीन होकर कहा—मिल लूंगा। यहां कोई बातचीत हुई ?

जग्गो ने पछताते हुए कहा—बातचीत क्या हुई, पहले मैंने पूजा की और मैं चुप हुई तो बहू ने अच्छी तरह फूल-माला चढ़ाई।

जालपा ने सिर नीचा करके कहा—आदमी जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

जग्गो—अपना ही समझकर तो मिलने आये थे।

जालपा—कोई बुलाने तो न गया था। कुछ दिनेश का पता लगा दादा?

देवी०—हां, सब पूछ आया। हबड़े में घर है, पता-ठिकाना सब मालूम हो गया।

जालपा ने डरते-डरते कहा—इस वक्त चलोगे या कल किसी वक्त?

देवी०—तुम्हारी जैसी मरजी। जी चाहे इसी वक्त चलो, मैं तैयार हूँ।

जालपा—थक गये होगे?

देवी०—इन कामों में थकान नहीं होती बेटी!

आठ बज गये थे। सड़क पर मोटरों का तांता बंधा हुआ था। सड़क की दोनों पटरियों पर हजारों स्त्री-पुरुष बने-ठने हँसते-बोलते चले जाते थे। जालपा ने सोचा, दुनिया कैसी अपने राग-रंग में मस्त है। जिसे उसके लिए मरना हो मरे, वह अपनी टेक न छोड़ेगी। हर एक अपना छोटा-सा, मिट्टी का घरौंदा बनाये बैठा है। देश बह जाय, उसे परवा नहीं। उसका घरौंदा बचा रहे। उसके स्वार्थ में बाधा न पड़े। उसका भोला-भाला हृदय बाजार को बन्द देखकर खुश होता। काश! सभी आदमी शोक से सिर झुकाये, त्योरियां बदले, उन्मत्त-से नजर आते। सभी के चेहरे भीतर की जलन से लाल होते। वह न जानती थी, कि इस जन-सागर में ऐसी छोटी-छोटी कंकड़ियों के गिरने से एक हल्कोरा भी नहीं उठता, आवाज़ तक नहीं आती।

४३

रमा मोटर पर चला तो उसे कुछ सूझता न था। कुछ समझ में न आता था, कहाँ जा रहा है। जाने हुए रास्ते उसके लिए अनजान हो गये थे। उसे जालपा पर क्रोध न था, जरा भी नहीं। जग्गो पर भी क्रोध न था। क्रोध था अपनी दुर्बलता पर, अपनी स्वार्थ-लोलुपता पर, अपनी कायरता पर। पुलिस के वातावरण में उसका औचित्य-ज्ञान भ्रष्ट हो गया था। वह कितना बड़ा अन्याय कर रहा है, इसका उसे केवल उस दिन ख्याल आया था जब

जालपा ने समझाया था। फिर वह शंका मन में उठी नहीं। अफ़सरों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाकर उसे बहला रखा था। वह कहते, अजी, बीबी की कुछ फ़िक्र न करो। जिस वक्त तुम एक जड़ाऊ हार लेकर पहुँचोगे, और रुपयों की एक थैली नज़र कर दोगे, बेगम साहब का सारा गुस्सा भाग जायगा। अपने सूबे में किसी अच्छी-सी जगह पर पहुँच जाओगे, आराम से जिन्दगी कटेगी। कैसा गुस्सा! इसकी कितनी ही आंखों-देखी मिसालें दी गयीं। रमा चक्कर में आ गया। फिर उसे जालपा से मिलने का अवसर ही न मिला। पुलिस का रंग जमता गया। आज वह जड़ाऊ हार जेब में रखे जालपा को अपनी विजय की खुशखबरी देने गया था। वह जानता था कि यह हार देखकर वह जरूर खुश हो जायगी। कल ही संयुक्त प्रांत के होम-सेक्रेटरी के नाम कमिश्नर-पुलिस का पत्र उसे मिल जायगा। दो-चार दिन यहां खूब सैर करके घर की राह लेगा। देवीदीन और जग्गो को भी वह अपने साथ ले जाना चाहता था। उनका एहसान वह कैसे भूल सकता था। यही मन्सूबे मन में बांधकर वह जालपा के पास गया था, जैसे कोई भक्त फूल और नैवेद्य लेकर देवता की उपासना करने जाय। पर देवता ने वरदान देने के बदले उसके थाल को ठुकरा दिया, उसके नैवेद्य को पैरों से कुचल डाला। उसे कुछ कहने का अवसर ही न मिला। आज पुलिस के विषैले वातावरण से निकलकर उसने स्वच्छ वायु पायी थी और उसकी सुबुद्धि सचेत हो गयी थी। अब उसे अपनी पशुता अपने यथार्थ रूप में दिखयी दी—कितनी विकराल, कितनी दानवी मूर्ति थी। वह स्वयं उसकी ओर ताकने का साहस न कर सकता था। उसने सोचा, इसी वक्त जज के पास चलूँ और सारी कथा कह सुनाऊँ। पुलिस मेरी दुश्मन हो जाय, मुझे जेल में सड़ा डाले, कोई परवा नहीं। सारी कलई खोल दूँगा। क्या जज अपना फ़ैसला नहीं बदल सकता? अभी मुलजिम हवालात में हैं। पुलिसवाले खूब दांत पीसेंगे, खूब नाचें कूदेंगे; शायद मुझे कच्चा ही खा जायँ। खा जायें! इसी दुर्बलता ने तो मेरे मुख में कालिख लगा दी।

जालपा की क्रोधोन्मत्त मूर्ति उसकी आँखों के सामने फिर गयी। ओह! कितने गुस्से में थी! मैं जानता कि वह इतना बिगड़ेगी, तो चाहे दुनिया इधर-से-उधर हो जाती अपना बयान बदल देता। बड़ा चकमा दिया इन

पुलिसवालों ने। अगर कहीं जज ने कुछ नहीं सुना और मुलजिमों को बरी न किया, तो जालपा मेरा मुंह न देखेगी। मैं उसके पास कौन मुंह लेकर जाऊँगा। ज़िन्दा रहकर ही क्या करूँगा? किसके लिए?

उसने मोटर रोकी और इधर-उधर देखने लगा। कुछ समझ में न आया, कहाँ आ गया। सहसा एक चौकीदार नजर आया। उससे जज साहब के बँगले का पता पूछा। चौकीदार हँसकर बोला—हुजूर तो बहुत दूर निकल आये। यहां से तो छः-सात मील से कम न होगा, वह उधर चौरंगी की ओर रहते हैं।

रमा चौरंगी का रास्ता पूछकर फिर चला। नौ बज गये थे। उसने सोचा, जज साहब से मुलाकात न हुई, तो सारा खेल बिगड़ जायगा। बिना मिले हटूँगा ही नहीं। अगर उन्होंने सुन लिया तो ठीक ही है, नहीं कल हाईकोर्ट के जजों से कहूँगा। कोई तो सुनेगा? सारा वृत्तान्त समाचार-पत्रों में छपवा दूँगा, तब तो सबकी आँखें खुलेंगी?

मोटर तीस मील की चाल से चल रही थी। दस मिनट ही में चौरंगी आ पहुँची। यहां अभी तक वही चहल-पहल थी; मगर रमा उसी सन्नाटे से मोटर लिये जाता था। सहसा एक पुलिसमैन ने लालबत्ती दिखायी। वह रुक गया और सिर बाहर निकालकर देखा तो वही दारोगाजी!

दारोगा ने पूछा—क्या अभी तक बँगले पर नहीं गये? इतनी तेज़ मोटर न चलाया कीजिए। कोई वारदात हो जायगी। कहिए, बेगम साहब से मुलाकात हुई! मैंने तो समझा था, वह भी आपके साथ होंगी। खुश तो खूब हुई होंगी।

रमा को ऐसा क्रोध आया कि इसकी मूँछें उखाड़ ले, पर बात बनाकर बोला—जी हां, बहुत खुश हुई! बेहद!

'मैंने कहा था न? औरतों की नाराज़ी की यही दवा है। आप काँपे जाते थे।'

'मेरी हिमाकत थी।'

'चलिए, मैं भी आपके साथ चलता हूँ। एक बाजी ताश उड़े और ज़रा सरूर जमे। डिप्टी साहब और इंसपेक्टर साहब आयेंगे। जोहरा को

बुलवा लेंगे। दो घड़ी की बहार होगी। अब आप मिसेज रमानाथ को बँगले ही पर क्यों नहीं बुला लेते ? वहां उस खटिक के घर पड़ी हुई हैं।'

रमा ने कहा—अभी तो मुझे एक ज़रूरत से दूसरी तरफ जाना है। आप मोटर ले जायँ। मैं पांव पांव चला जाऊँगा।

दारोगा ने मोटर के अन्दर जाकर कहा—नहीं साहब, मुझे कोई जल्दी नहीं है। आप जहां चलना चाहें, चलिए। मैं ज़रा भी मुखिल न हूँगा।

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा—लेकिन मैं अभी बँगले पर नहीं जा रहा हूँ।

दारोगा ने मुसकराकर कहा—मैं समझ रहा हूँ; लेकिन जरा भी मुखिल न हूँगा। वहां बेगम साहब...

रमा ने बात काटकर कहा—जी नहीं, वहीं मुझे नहीं जाना है।

दारोगा—तो क्या कोई दूसरा शिकार है ? बँगले पर भी आज कुछ कम बहार न रहेगी। वहीं आपके दिल-बहलाव का कुछ सामान हाजिर हो जायगा।

रमा ने एकबारगी आंखें लाल कर कहा—क्या आप मुझे शोहदा समझते हैं ? मैं इतना जलील नहीं हूँ।

दारोगा ने कुछ लज्जित होकर कहा—अच्छा साहब, गुनाह हुआ, माफ कीजिए। अब कभी ऐसी गुस्ताखी न होगी; लेकिन अभी आप अपने को खतरे से बाहर न समझें। मैं आपको किसी ऐसी जगह न जाने दूँगा जहां मुझे पूरा इतमीनान न होगा। खबर नहीं, आपके कितने दुश्मन हैं। मैं आप ही के फायदे के खयाल से कह रहा हूँ।

रमा ने होंठ चबाकर कहा—बेहतर हो, कि आप मेरे फायदे का खयाल न करें। आप लोगों ने मुझे मटियामेट कर दिया, और अब भी मेरा गला नहीं छोड़ते। मुझे अब अपने हाल पर मरने दीजिए। मैं इस गुलामी से तंग आ गया हूँ। मैं मां के पीछे-पीछे चलनेवाला बच्चा नहीं बनना चाहता। आप अपनी मोटर चाहते हैं, शौक से ले जाइये। मोटर की सवारी और बँगले में रहने के लिए पन्द्रह आदमियों को कुर्बान करना पड़ा है। कोई जगह पा जाऊँ, तो शायद पन्द्रह सौ आदमियों को कुर्बान करना पड़े। मेरी छाती इतनी मजबूत नहीं है। आप अपनी मोटर ले जाइए।

यह कहता हुआ वह मोटर से उतर पड़ा और जल्दी से आगे बढ़ गया।

दारोगा ने कई बार पुकारा, ज़रा सुनिए, बात तो सुनिए, लेकिन उसने पीछे फिरकर देखा तक नहीं। जरा और आगे चलकर वह एक मोड़ से घूम गया। इसी सड़क पर जज का बँगला था। सड़क पर कोई आदमी न मिला। रमा कभी इस पटरी पर, और कभी उस पटरी पर जा-जाकर बँगलों के नम्बर पढ़ता चला जाता था। सहसा एक नम्बर देखकर वह रुक गया। एक मिनट तक खड़ा देखता रहा कि कोई आदमी निकले, तो उससे पूछूँ, साहब हैं या नहीं। अन्दर जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। ख़याल आया, जज ने पूछा, तुमने क्यों झूठी गवाही दी, तो क्या जवाब दूँगा। यह कहना, कि पुलिस ने मुझसे जबरदस्ती गवाही दिलवायी, प्रलोभन दिया, मारने की धमकी दी, लज्जास्पद बात है। अगर वह पूछे कि तुमने केवल दो-तीन साल की सजा से बचने के लिए इतना बड़ा कलंक सिर पर ले लिया, इतने आदमियों की जान लेने पर उतारू हो गये, उस वक्त तुम्हारी बुद्धि कहां गयी थी, तो उसका मेरे पास क्या जवाब है? ख्वाहमख्वाह लज्जित होना पड़ेगा। बेवकूफ़ बनाया जाऊँगा। वह लौट पड़ा। इस लज्जा का सामना करने की उसमें सामर्थ्य न थी। लज्जा ने सदैव वीरों को परास्त किया है। जो काल से भी नहीं डरते, वे भी लज्जा के सामने खड़े होने की हिम्मत नहीं करते। आग में कूद जाना, तलवार के सामने खड़ा हो जाना, इसकी अपेक्षा कहीं सहज है। लाज की रक्षा ही के लिए बड़े-बड़े राज्य मिट गये हैं, रक्त की नदियां बह गयी हैं, प्राणों को होली खेल डाली गयी है। उसी लाज ने आज रमा के पग भी पीछे हटा दिये। शायद जेल की सजा से वह इतना भयभीत न होता।

४४

रमा आधी रात गए सोया, तो नौ बजे दिन तक नींद न खुली। वह स्वप्न देख रहा था—दिनेश को फांसी हो रही है। सहसा एक स्त्री तलवार लिये हुए फांसी की ओर दौड़ी और फांसी की रस्सी काट दी। चारों ओर हलचल मच गयी। वह औरत जालपा थी। कोई उसके सामने जाने का साहस न कर सकता था। तब उसने एक छलांग मारकर रमा के ऊपर तलवार चलायी। रमा घबराकर उठ बैठा। देखा तो दारोगा और इंसपेक्टर कमरे में खड़े हैं, और डिप्टी साहब आराम-कुर्सी पर लेटे हुए सिगार पी रहे हैं।

दारोगा ने कहा—आज तो आप खूब सोये बाबू साहब ! कब लौटे थे ?

रमा ने एक कुर्सी पर बैठकर कहा—ज़रा देर बाद लौट आया था। इस मुकदमे की अपील तो हाईकोर्ट में होगी न ?

इंसपेक्टर—अपील क्या होगी, जाब्ते की पाबन्दी होगी। आपने मुकदमे को इतना मज़बूत कर दिया है कि वह अब किसी के हिलाये हिल नहीं सकता। हलफ़ से कहता हूँ, आपने कमाल कर दिया। अब उधर से बेफिक्र हो जाइए। हाँ, अभी जब तक फ़ैसला न हो जाय; यह मुनासिब होगा कि आपकी हिफ़ाज़त का खयाल रखा जाय। इसलिए फिर पहरे का इन्तजाम कर दिया गया है। इधर हाईकोर्ट से फैसला हुआ, उधर आपको जगह मिली।

डिप्टी ने सिगार का धुआं फेंककर कहा—यह डी० ओ० कमिश्नर साहब ने आपको दिया है, जिसमें आपको किसी तरह का शक न हो। देखिए, यू० पी० के होम सेक्रेटरी के नाम है। आप वहां ज्योंही यह डी० ओ० दिखावेंगे, वह आपको कोई बहुत अच्छी जगह दे देगा।

इंसपेक्टर—कमिश्नर साहब आपसे बहुत खुश हैं, हलफ़ से कहता हूँ।

डिप्टी—बहुत खुश हैं। वह यू० पी० को अलग डायरेक्ट चिट्टी भी लिखेगा। तुम्हारा भाग्य खुल गया।

यह कहते हुए उसने डी० ओ० रमा की तरफ बढ़ा दिया। रमा ने लिफ़ाफ़ा खोलकर देखा और एकाएक उसको फाड़कर पुरजे-पुरजे कर डाला। तीनों आदमी विस्मय से उसका मुंह ताकने लगे।

दारोगा ने कहा—रात बहुत पी गये थे क्या ? आपके हक़ में अच्छा न होगा।

इंसपेक्टर—हलफ़ से कहता हूँ, कमिश्नर साहब को मालूम हो जायगा तो बहुत नाराज़ होंगे।

डिप्टी—इसका कुछ मतलब हमारे समझ में नहीं आया। इसका क्या मतलब है ?

रमा०—इसका यह मतलब है कि मुझे इस डी० ओ० की ज़रूरत नहीं और न मैं नौकरी चाहता हूँ, मैं आज ही यहां से चला जाऊँगा।

डिप्टी—जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जाय, तब तक आप कहीं नही जा सकते।

रमा०—क्यों ?

डिप्टी—कमिश्नर साहब का यह हुक्म है ।

रमा०—मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ ।

इंसपेक्टर—बाबू रमानाथ, आप क्यों बना-बनाया खेल बिगाड़ रहे हैं ? जो कुछ होना था वह हो गया । दस-पाँच दिन में हाईकोर्ट से फैसले की तसदीक हो जायगी । आपकी बेहतरी इसी में है कि जो सिला मिल रहा है, उसे खुशी से लीजिए और आराम से जिन्दगी के दिन बसर कीजिए । खुदा ने चाहा तो एक दिन आप भी किसी ऊँचे ओहदे पर पहुँच जायँगे । इससे क्या फायदा, कि अफ़सरों को नाराज कीजिए और क़ैद की मुसीबत झेलिए । हलफ़ से कहता हूँ, कि जरा-सी निगाह बदल जाय तो आपका कहीं पता न लगे । हलफ़ से कहता हूँ, एक इशारे में आपको दस साल की सजा हो जाय । आप हैं किस ख्याल में । हम आपके साथ शरारत नहीं करना चाहते । हां, अगर आप हमें सख्ती करने पर मजबूर करेंगे, तो हमें सख्ती करनी पड़ेगी । जेल को आसान न समझियेगा । खुदा दोजख में ले जाये, पर जेल की सजा न दे । मार-धाड़, गाली-गुफ़्ता, यह तो वहाँ की मामूली सजा है । चक्की में जोत दिया तो मौत आ गयी । हलफ़ में कहता हूँ, दोजख से बदतर है जेल ।

दारोगा—यह बेचारे अपनी बेगम साहब से मजबूर हैं । वह शायद इनके जान की गाहक हो रही हैं । उनसे इनकी कोर दबती है ।

इंसपेक्टर—क्या हुआ, कल तो वह हार दिया था न ? फिर भी राजी नहीं हुई ?

रमा ने कोट की जेब से हार निकालकर मेज़ पर रख दिया और बोला—वह हार यह रखा हुआ है ।

इंसपेक्टर—अच्छा, इसे उन्होंने नहीं कबूल किया ।

डिप्टी—कोई 'प्राउड लेडी' है ।

इंसपेक्टर—कुछ उनकी भी मिज़ाज पुरसी करने की जरूरत होगी !

दारोगा—यह तो बाबू साहब के रंग-ढंग और सलीके पर मुनहसर है । अगर आप ख्वाहमख्वाह हमें मजबूर न करेंगे, तो हम आपके पीछे न पड़ेंगे ।

डिप्टी—उस खटिक से भी मुचलका लेना चाहिये ।

रमानाथ के सामने एक नई समस्या आ खड़ी हुई, पहले से कहीं जटिल,

कहीं भीषण। संभव था, वह अपने को कर्त्तव्य की वेदी पर बलिदान कर देता, दो-चार साल की सज़ा के लिए अपने को तैयार कर लेता। शायद इस समय उसने अपने आत्म-समर्पण का निश्चय कर लिया था; पर अपने साथ जालपा को भी संकट में डालने का साहस वह किसी तरह न कर सकता था। वह पुलिस के पंजे में कुछ इस तरह दब गया था कि अब उसे बेदाग़ निकल जाने का कोई मार्ग न दिखाई देता था। उसने देखा कि इस लड़ाई में मैं पेश नहीं पा सकता। उसके मिज़ाज की तेज़ी ग़ायब हो गयी। विवश होकर बोला—आखिर आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं!

इंसपेक्टर ने दारोगा की ओर देखकर आँख मारी, मानो कह रहे हों, आ गया पंजे में! और बोले—बस इतना ही कि आप हमारे मेहमान बने रहें, और मुकदमें के हाईकोर्ट से तय हो जाने के बाद यहाँ से रुखसत हो जायँ, क्योंकि उसके बाद हम आपकी हिफ़ाज़त के जिम्मेदार न होंगे। अगर कोई सार्टिफिकेट लेना चाहेंगे, तो वह दे दी जायगी; लेकिन उसे लेने या न लेने का आपको पूरा अख्तियार है। अगर आप होशियार हैं तो उसे लेकर फायदा उठायेंगे, नहीं इधर-उधर के धक्के खायेंगे। आपके ऊपर गुनाह बे-लज्ज़त की मसल साबिक़ आयेगी। इसके सिवा हम आपसे और कुछ नहीं चाहते। हलफ़ से कहता हूँ, हर-एक चीज जिसकी आपको ख्वाहिश हो, यहाँ हाजिर कर दी जायगी; लेकिन जब तक मुकदमा खत्म न हो जाय, आप आज़ाद नहीं हो सकते।

रमानाथ ने दीनता से पूछा—सैर करने तो जा सकूंगा, या यह भी नहीं?

इंसपेक्टर ने सूत्ररूप से कहा—जी नहीं!

दारोगा ने उस सूत्र की व्याख्या की—आपको वह आजादी दी गयी थी; पर आपने उसका बेजा इस्तेमाल किया। जब तक इसका इत्मीनान न हो जाय कि आप उसका जायज इस्तेमाल कर सकते हैं या नहीं, आप उस हक़ से महरूम रहेंगे।

दारोगा ने इंसपेक्टर की तरफ देखकर मानो इस व्याख्या की दाद चाही, जो उन्हें सहर्ष मिल गयी।

तीनों अफसर रुखसत हो गये और रमा एक सिगार जलाकर इस विकट परिस्थिति पर विचार करने लगा।

४५

एक महीना और निकल गया। मुक़दमे के हाइकोर्ट में पेश होने की तिथि नियत हो गयी है। रमा के स्वभाव में फिर वही पहले की-सी भीरुता और खुशामद आ गयी है, अफ़सरों के इशारे पर नाचता है। शराब की मात्रा पहले से बढ़ गयी है, विलासिता ने मानो पंजे में दबा लिया है। कभी-कभी उसके कमरे में एक वेश्या जोहरा भी आ जाती है, जिसका गाना वह बड़े शौक़ से सुनता है।

एक दिन उसने बड़ी हसरत के साथ ज़ोहरा से कहा—मैं डरता हूँ, कहीं तुमसे प्रेम न बढ़ जाय। उसका नतीजा इसके सिवा और क्या होगा कि रो-रोकर जिन्दगी काटूं। तुमसे वफ़ा की उम्मीद क्या हो सकती है!

जोहरा दिल में खुश होकर अपनी बड़ी-बड़ी रतनारी आँखों से उसकी ओर ताकती हुई बोली—हाँ साहब, हम वफ़ा क्या जानें, आखिर वेश्या ही तो ठहरीं! बेवफ़ा भी कहीं वफ़ादार हो सकती है?

रमा ने आपत्ति करके पूछा—क्या इसमें कोई शक है?

जोहरा—नहीं, जरा भी नहीं! आप लोग हमारे पास मुहब्बत से लबालब भरे दिल लेकर आते हैं, पर हम उसकी ज़रा भी कद्र नहीं करतीं। यही बात है न?

रमा०—बेशक।

जोहरा—मुआफ कीजिएगा, आप मर्दों की तरफ़दारी कर रहे हैं। हक़ यह है कि वहाँ आप लोग दिल-बहलाव के लिए जाते हैं, महज गम गलत करने के लिए, महज आनन्द उठाने के लिए। जब आपको वफ़ा की तलाश ही नहीं होती, तो यह मिले क्योंकर? लेकिन इतना मैं जानती हूँ, कि हममें जितनी बेचारियाँ मरदों की बेवफ़ाई से निराश होकर अपना आराम-चैन खो बैठती हैं, उनका पता अगर दुनिया को चले, तो आँखें खुल जायँ। यह हमारी भूल है कि तमाशबीनों से वफ़ा चाहते हैं, चील के घोंसले में मांस ढूँढ़ते हैं! पर प्यासा आदमी अन्धे कुएँ की तरफ दौड़े, तो मेरे ख़याल में उसका कोई कसूर नहीं।

उस दिन रात को चलते वक्त जोहरा ने दारोगा को खुशखबरी दी,

आज तो हजरत खूब मजे में आये। खुदा ने चाहा, तो दो-चार दिन के बाद बीबी का नाम भी न लें।

दारोगा ने खुश होकर कहा—इसीलिए तो तुम्हें बुलाया था। मजा तो जब है कि बीबी यहाँ से चली जाय। फिर हमें कोई गम न रहेगा। मालूम होता है, स्वराज्यवालों ने उस औरत को मिला लिया है। यह सब एक ही शैतान हैं।

जोहरा की आमदोरफ्त बढ़ने लगी; यहाँ तक कि रमा खुद अपने चकमे में आ गया। उसने जोहरा से प्रेम जताकर अफ़सरों की नज़र में अपनी साख जमानी चाही थी; पर जैसे बच्चे खेल में रो पड़ते हैं, वैसे ही उसका प्रेमाभिनय भी प्रेमोन्माद बन बैठा। जोहरा उसे अब वफ़ा और मुहब्बत की देवी-सी मालूम होती थी। वह जालपा की-सी सुन्दरी न सही, पर बातों में उससे कहीं चतुर, हाव-भाव में कहीं कुशल, सम्मोहन कला में कहीं पटु थी। रमा के हृदय में नये-नये मनसूबे पैदा होने लगे।

एक दिन उसने जोहरा से कहा—जोहरा, जुदाई का समय आ रहा है। दो-चार दिन में मुझे यहां से चला जाना पड़ेगा। फिर तुम्हें क्यों मेरी याद आने लगी ?

जोहरा ने कहा—मैं तुम्हें न जाने दूँगी। यहीं कोई अच्छी सी नौकरी कर लेना। फिर हम तुम आराम से रहेंगे।

रमा ने अनुरक्त होकर कहा—दिल से कहती हो जोहरा ? देखो तुम्हें मेरे सर की कसम, दग़ा मत देना।

जोहरा—अगर यह खौफ़ हो तो निकाह पढ़ा लो। निकाह के नाम से चिढ़ हो तो ब्याह कर लो। पण्डितों को बुलाओ। अब इसके सिवा मैं अपनी मुहब्बत का और क्या सबूत दूँ।

रमा निष्कपट प्रेम का यह परिचय पाकर विह्वल हो उठा। जोहरा के मुंह से निकलकर इन शब्दों की सम्मोहक-शक्ति कितनी बढ़ गई थी। यह कामिनी, जिस पर बड़े-बड़े रईस फ़िदा हैं, मेरे लिए इतना बड़ा त्याग करने को तैयार है ! जिस खान में औरों को बालू ही मिलता है, उसमें जिसे सोने के डले मिल जायँ, क्या वह परम भाग्यशाली नहीं है ? रमा के मन में कई दिनों तक संग्राम होता रहा। जालपा के साथ उसका जीवन कितना नीरस,

कितना कठिन हो जायगा। वह पग-पग पर अपना धर्म और सत्य लेकर खड़ी हो जायगी और उसका जीवन एक दीर्घ तपस्या, एक स्थायी साधना बनकर रह जायगा। सात्विक जीवन कभी उसका आदर्श नहीं रहा। साधारण मनुष्यों की भांति वह भी भोग विलास करना चाहता था। जालपा की ओर से हटकर उसका विलासासक्त मन प्रबल वेग से जोहरा की ओर खिंचा। उसको व्रत-धारिणी वेश्याओं के उदाहरण याद आने लगे। उसके साथ ही चंचलवृत्ति की गृहिणियों की मिसालें भी आ पहुँची। उसने निश्चय किया, यह सब ढकोसला हैं, न कोई जन्म से निर्दोष है, न कोई दोषी। यह सब परिस्थिति पर निर्भर है।

जोहरा रोज़ आती और बन्धन में एक गांठ और देकर चली जाती। ऐसी स्थिति में संयमी युवक का आसन भी डोल जाता, रमा तो विलासी था। अब तक वह केवल इसलिए इधर-उधर न फटक सका था, कि ज्योंही उसके पंख निकले, जालिये ने उसे अपने पिंजरे में बन्द कर दिया। कुछ दिन पिंजरे से बाहर रहकर भी उसे उड़ने का साहस न हुआ। अब उसके सामने एक नवीन दृश्य था। वह छोटा-सा कुलियोंवाला पिंजरा नहीं, बल्कि एक फूलों से लहराता हुआ बाग जहां की क़ैद में स्वाधीनता का आनन्द था। वह इस बाग़ में क्यों न क्रीड़ा का आनन्द उठाये!

४६

रमा ज्यों-ज्यों जोहरा के प्रेम-पाश में फँसता जाता था, पुलिस के अधिकारी वर्ग उसकी ओर से निश्शंक होते जाते थे। उसके ऊपर जो क़ैद लगायी गई थी, वह धीरे-धीरे ढीली होने लगी, यहाँ तक कि एक दिन डिप्टी साहब शाम को सैर करने चले तो रमा को भी मोटर पर बिठा लिया। जब मोटर देवीदीन की दूकान के सामने से होकर निकली, तो रमा ने अपना सिर इस तरह भीतर खींच लिया कि किसी की नज़र न पड़ जाय। उसके मन में बड़ी उत्सुकता हुई कि जालपा है या चली गयी; लेकिन वह अपना सिर बाहर न निकाल सका। मन में वह अब भी यही समझता था कि मैंने जो रास्ता पकड़ा है, वह कोई बहुत अच्छा रास्ता नहीं है; लेकिन यह जानते हुए भी वह उसे छोड़ना न चाहता था। देवीदीन को देखकर उसका मस्तक आप-ही-आप लज्जा से झुक जाता, वह किसी दलील से

अपना पक्ष सिद्ध न कर सकता। उसने सोचा; मेरे लिए सबसे उत्तम मार्ग यही है कि इनसे मिलना-जुलना छोड़ दूँ। उस शहर में तीन प्राणियों को छोड़कर किसी चौथे आदमी से उसका परिचय न था, जिसकी आलोचना या तिरस्कार का उसे भय होता।

मोटर इधर उधर घूमती हुई हावड़ा ब्रिज की तरफ़ चली जा रही थी, कि सहसा रमा ने एक स्त्री को सिर पर गंगा-जल का कलसा रखे घाटों के ऊपर आते देखा। उसके कपड़े बहुत मैले हो रहे थे और कृशांगी ऐसी थी कि कलसे के बोझ से उसकी गरदन दबी जाती थी। उसकी चाल कुछ-कुछ जालपा से मिलती हुई जान पड़ी। सोचा, जालपा यहाँ क्या करने आवेगी? मगर एक ही पल में कार और आगे बढ़ गयी और रमा को उस स्त्री का मुँह दिखायी दिया। उसकी छाती धक्-से हो गयी। यह जालपा ही थी। उसने खिड़की के बगल में सिर छिपा कर ग़ौर से देखा। बेशक जालपा थी, पर कितनी दुर्बल! मानो कोई वृद्धा, अनाथ हो। न वह कान्ति थी, न वह लावण्य, न वह चंचलता, न वह गर्व। रमा हृदय-हीन न था, उसकी आँखें सजल हो गयीं। जालपा इस दशा में और मेरे जीते जी! अवश्य देवीदीन ने उसे निकाल दिया होगा और वह टहलनी बनकर अपना निर्वाह कर रही होगी। नहीं देवीदीन इतना बेमुरौवत नहीं है। जालपा ने खुद उसके आश्रय में रहना स्वीकार न किया होगा। मानती तो है ही नहीं। कैसे मालूम हो, क्या बात है?

मोटर दूर निकल आयी थी। रमा की सारी चंचलता, सारी भोग-लिप्सा ग़ायब हो गयी थी। मलिन-वसना, दुःखिनी जालपा की वह मूर्त्ति आँखों के सामने खड़ी थी। किससे कहे? क्या कहे? यहाँ कौन अपना है। जालपा का नाम भी जबान पर आ जाय, तो सब के सब चौंक पड़ें और फिर घर से निकलना बन्द कर दें। ओह! जालपा के मुख पर शोक की कितनी गहरी छाया थी, आँखों में कितनी निराशा! आह, उन सिमटी हुई आँखों में जले हुए हृदय से निकलनेवाली कितनी आहें सिर पर पीटती हुई मालूम होती थीं मानो उन पर हँसी कभी आयी ही नहीं, मानो वह कली बिना खिले ही मुरझा गयी।

कुछ देर के बाद जोहरा आयी, इठलाती, मुस्कराती, लचकाती, पर रमा आज उससे भी फटा-फटा रहा।

जोहरा ने पूछा—आज किसी की याद आ रही है क्या ?

यह कहते हुए उसने अपनी गोल, नर्म, मक्खन-सी बाँह उसकी गरदन में डालकर उसे अपनी ओर खींचा। रमा ने अपनी तरफ़ ज़रा भी जोर न किया। उसके हृदय पर अपना मस्तक रख दिया, मानो अब यही उसका आश्रय है।

जोहरा ने कोमलता में डूबे हुए स्वर में पूछा—सच बताओ, आज इतने उदास क्यों हो ? मुझसे किसी बात पर नाराज हो ?

रमा ने आवेश से काँपते हुए स्वर में कहा—नहीं, जोहरा, तुमने मुझ अभागे पर जितनी दया की है, उसके लिए मैं हमेशा तुम्हारा एहसानमन्द रहूँगा। तुमने उस वक्त मुझे सँभाला, जब मेरे जीवन की टूटी हुई किश्ती गोते खा रही थी। वे दिन मेरी ज़िंदगी के सबसे मुबारक दिन हैं और उनकी स्मृति को मैं अपने दिल में बराबर पूजता रहूँगा। मगर अभागों को मुसीबत बार-बार अपनी तरफ़ खींचती है। प्रेम का बन्धन भी उन्हें उस तरफ़ खिंच जाने से नहीं रोक सकता। मैंने आज जालपा को जिस सूरत में देखा है, वह मेरे दिल को भालों की तरह छेद रही है। वह आज फटे-मैले कपड़े पहने, सिर पर गंगा-जल का कलसा लिये चली जा रही थी। उसे इस हालत में देखकर मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। मुझे अपनी ज़िन्दगी में कभी इतना रंज न हुआ था। जोहरा, कुछ नहीं कह सकता उस पर क्या बीत रही है।

जोहरा ने पूछा—वह तो उस बुड्ढे मालदार खटिक के घर पर थीं ?

रमा०—हाँ थी तो, पर नहीं कह सकता, क्यों वहाँ से चली गयी। इंसपेक्टर साहब मेरे साथ थे। उनके सामने मैं उससे कुछ पूछ तक न सका। मैं जानता हूँ, वह मुझे देखकर मुंह फेर लेती और शायद मुझे ज़लील समझती मगर कम-से-कम मुझे इतना तो मालूम हो जाता कि वह इस वक्त इस दशा में क्यों है ? जोहरा, तुम मुझे चाहे दिल में जो कुछ समझ रही हो, लेकिन मैं इस खयाल में मगन हूँ कि तुम्हें मुझसे प्रेम है। और प्रेम करने वालों से हम कम-से-कम हमदर्दी की आशा रखते हैं ? यहाँ एक भी ऐसा आदमी नहीं, जिससे मैं अपने दिल का कुछ हाल कह सकूं। तुम भी मुझे रास्ते पर लाने के लिए भेजी गयी थीं, मगर तुम्हें मुझ पर दया आयी। शायद तुमने गिरे हुए आदमी पर ठोकर मारना मुनासिब न समझा, अगर आज हम और तुम किसी वजह से रूठ जायँ, तो क्या कल तुम मुझे मुसीबत में देखकर मेरे साथ ज़रा

भी हमदर्दी न करोगी ? क्या मुझे भूखों मरते देख मेरे साथ उससे कुछ भी ज्यादा सलूक न करोगी, जो आदमी कुत्ते के साथ करता है? मुझे तो ऐसी आशा नहीं। जहाँ एक बार प्रेम ने वास किया हो वहाँ उदासीनता और विराग चाहे पैदा हो जाय, हिंसा का भाव नहीं पैदा हो सकता। तुम मेरे साथ ज़रा भी हमदर्दी न करोगी ज़ोहरा ? तुम अगर चाहो तो जालपा का पूरा पता लगा सकती हो, वह कहाँ है, क्या करती है, मेरी तरफ़ से उसके दिल में क्या ख़याल है, घर क्यों नहीं जाती, कब तक रहना चाहती है ? अगर तुम किसी तरह जालपा को प्रयाग जाने पर राज़ी कर सको ज़ोहरा, तो मैं उम्र भर तुम्हारी गुलामी करूँगा। इस हालत में मैं उसे नहीं देख सकता। शायद आज ही रात को मैं यहाँ से भाग जाऊँ। मुझ पर क्या गुज़रेगी, इसका मुझे ज़रा भी भय नहीं। मैं बहादुर नहीं हूँ, बहुत ही कमज़ोर आदमी हूँ। हमेशा ख़तरे के सामने मेरा हौसला पस्त हो जाता है; लेकिन मेरी बेगैरती भी यह चोट नहीं सह सकती।

ज़ोहरा वेश्या थी, उसको अच्छे-बुरे सभी तरह के आदमियों से साबिका पड़ चुका था। उसकी आँखों में आदमियों की परख थी। उसको इस परदेशी युवक में और अन्य व्यक्तियों में एक बड़ा फ़र्क दिखायी देता था। पहले वह यहाँ भी पैसे की ग़ुलाम बनकर आयी थी; लेकिन दो-चार दिन के बाद ही उसका मन रमा की ओर आकर्षित होने लगा। प्रौढ़ा स्त्रियाँ अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकतीं। रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन में ज़ोहरा को यह पहला आदमी ऐसा मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया, जिसने उससे कोई परदा न रखा। ऐसे अनुराग-रत्न को वह खोना न चाहती थी, उसकी बातें सुनकर उसे ज़रा भी ईर्ष्या न हुई; बल्कि उसके मन में एक स्वार्थमय सहानुभूति उत्पन्न हुई। इसी युवक को, जो प्रेम के विषय में इतना सरल था, वह प्रसन्न करके हमेशा के लिए अपना गुलाम बना सकती थी। उसे जालपा से कोई शंका न थी। जालपा कितनी ही रूपवती क्यों न हो, ज़ोहरा अपने कला-कौशल से, अपने हाव-भाव से उसका रंग फीका कर सकती थी। इसके पहले उसने कई महान् सुन्दरी खत्रानियों को रुलाकर छोड़ दिया था। फिर जालपा किस गिनती में थी ?

ज़ोहरा ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा—तो इसके लिए तुम क्यों इतना रंज करते हो प्यारे ! ज़ोहरा तुम्हारे लिए सब-कुछ करने को तैयार है। मैं कल ही जालपा का पता लगाऊँगी और वह यहाँ रहना चाहेगी तो उसके आराम के सब सामान कर दूँगी, जाना चाहेगी, तो रेल पर भेज दूँगी।

रमा ने बड़ी दीनता से कहा—एक बार मैं उससे मिल लेता तो मेरे दिल का बोझ उतर जाता।

ज़ोहरा चिन्तित होकर बोली—यह तो मुश्किल है, प्यारे ! तुम्हें यहाँ से कौन जाने देगा ?

रमा०—कोई तदबीर बताओ।

ज़ोहरा—मैं उसे पार्क में खड़ी कर आऊँगी। तुम डिप्टी साहब के साथ वहाँ जाना और किसी बहाने से उससे मिल लेना। इसके सिवा तो मुझे और कुछ नहीं सूझता।

रमा अभी कुछ कहना ही चाहता था, कि दारोगाजी ने पुकारा—मुझे खिलवत में आने की इजाज़त है ?

दोनों सँभल बैठे और द्वार खोल दिया। दारोगाजी मुसकराते हुए आये और ज़ोहरा की बग़ल में बैठकर बोले—यहाँ आज सन्नाटा कैसा ! क्या आज खजाना खाली है ! ज़ोहरा, आज अपने दस्ते हिनाई से एक जाम भर कर दो। रमानाथ, भाई जान, नाराज़ न होना।

रमा ने कुछ तुर्श होकर कहा—इस वक्त तो रहने दीजिए, दारोगाजी। आप तो पिये हुए नज़र आते हैं ?

दारोगाजी ने ज़ोहरा का हाथ पकड़कर कहा—बस, एक जाम ज़ोहरा। और एक बात और, आज मेरी मेहमानी क़बूल करो !

रमा ने तेवर बदलकर कहा—दारोगाजी, आप इस वक्त यहाँ से जायँ। मैं यह गवारा नहीं कर सकता।

दारोगा ने नशीली आँखों से देखकर कहा—क्या आपने पट्टा लिखा लिया है ?

रमा ने कड़ककर कहा—जी हाँ, मैंने पट्टा लिखा लिया है।

दारोगा—तो आपका पट्टा खारिज !

रमा—मैं कहता हूँ, यहाँ से चले जाइए।

दारोगा—अच्छा ! अब तो मेढ़की को भी जुकाम पैदा हुआ। क्यों न हो। चलो ज़ोहरा, इन्हें यहाँ बकने दो।

यह कहते हुए उन्होंने ज़ोहरा का हाथ पकड़कर उठाया।

रमा ने उनके हाथ को झटका देकर कहा—मैं कह चुका, आप यहाँ से चले जायँ। ज़ोहरा इस वक्त नहीं जा सकती। अगर वह गयी तो मैं उसका और आपका—दोनों का खून पी जाऊँगा। ज़ोहरा मेरी है, और जब तक मैं हूँ, कोई उसकी तरफ़ आँख नहीं उठा सकता—

यह कहते हुए उसने दारोगा साहब का हाथ पकड़कर दरवाज़े के बाहर निकाल दिया और दरवाज़ा जोर से बन्द करके सिटकिनी लगा दी। दारोगा जी बलिष्ठ आदमी थे; लेकिन इस वक्त नशे ने उन्हें दुर्बल कर दिया था। बाहर बरामदे में खड़े होकर वह गालियाँ बकने और द्वार पर ठोकर मारने लगे।

रमा ने कहा—कहो जाकर बचा को बरामदे के नीचे ढकेल दूँ ! शैतान का बच्चा !

ज़ोहरा—बकने दो, आप ही चला जायगा।

रमा०—चला गया !

ज़ोहरा ने मगन होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया, सूअर को निकाल बाहर किया। मुझे ले जाकर दिक़ करता। क्या तुम सचमुच उसे मारते ?

रमा०—मैं उसकी जान लेकर छोड़ता। मैं उस वक्त अपने आपे में न था। न जाने मुझमें उस वक्त कहाँ से इतनी ताक़त आ गयी थी।

ज़ोहरा—और जो वह कल से मुझे न आने दे तो ?

रमा०—कौन, अगर इस बीच में उसने ज़रा भी भाँजी मारी तो गोली मार दूँगा। वह देखो ताक पर पिस्तौल रखा हुआ है। तुम अब मेरी हो, ज़ोहरा ! मैंने अपना सब कुछ तुम्हारे क़दमों पर निसार कर दिया और तुम्हारा सब कुछ पाकर ही मैं सन्तुष्ट हो सकता हूँ। तुम मेरी हो, मैं तुम्हारा हूँ। किसी तीसरी औरत या मर्द को हमारे बीच में आने का मजाल नहीं है—जब तक मैं मर न जाऊँ।

ज़ोहरा की आँखें चमक रही थीं। उसने रमा की गरदन में हाथ डालकर कहा—ऐसी बात मुंह से न निकालो प्यारे !

सारे दिन रमा उद्वेग के जंगलों में भटकता रहा। कभी निराशा की अंधकारमय घाटियाँ सामने आ जातीं कभी आशा की लहराती हुई हरियाली। ज़ोहरा गयी भी होगी! यहाँ से तो लंबे-चौड़े वादे करके गई थी। उसे क्या ग़रज़ है? आकर कह देगी, मुलाक़ात ही नहीं हुई। कहीं धोखा तो न देगी? जाकर डिप्टी साहब से सारी कथा कह सुनाये तो बेचारी जालपा पर बैठे-बिठाये आफत आ जाय। क्या ज़ोहरा इतनी नीच प्रकृति हो सकती है? कभी नहीं। अगर ज़ोहरा इतनी बेवफ़ा, इतनी दग़ाबाज है, तो यह दुनिया रहने के लायक नहीं, जितनी जल्द आदमी मुंह में कालिख लगा डूब मरे, उतना ही अच्छा। नहीं जोहरा मुझसे दग़ा न करेगी। उसे वह दिन याद आये, जब उसके दफ्तर से आते ही जालपा उसकी जेब टटोलती थी और रुपये निकाल लेती थी। वही जालपा आज इतनी सत्यवादिनी हो गयी। तब वह प्यार करने की वस्तु थी, अब वह उपासना करने की वस्तु है। जालपा, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। जिस ऊँचाई पर तुम मुझे ले जाना चाहती हो, वहाँ तक पहुँचने की मुझमें शक्ति नहीं है। वहाँ पहुँचकर शायद चक्कर खाकर गिर पड़ूँ। मैं अब भी तुम्हारे चरणों पर सिर झुकाता हूँ। मैं जानता हूँ, तुमने मुझे अपने हृदय से निकाल दिया है, तुम मुझसे विरक्त हो गयी हो, तुम्हें अब न मेरे डूबने का दुःख है न तैरने की खुशी; पर शायद अब भी मेरे मरने या किसी घोर संकट में फँस जाने की खबर पाकर तुम्हारी आँखों से आँसू निकल आयेंगे। शायद तुम मेरी लाश देखने आओ। हा! प्राण ही क्यों नहीं निकल जाते कि तुम्हारी निगाह में इतना नीच तो न रहूँ।

रमा को अब अपनी उस ग़लती पर घोर पश्चाताप हो रहा था, जो उस ने जालपा की बात न मानकर की थी। अगर उसने उसके आदेशानुसार जज के इजलास में अपना बयान बदल दिया होता, धमकियों में न आता, हिम्मत मजबूत रखता, तो उसकी यह दशा क्यों होती। उसे यह विश्वास था, जालपा के साथ यह सारी कठिनाइयाँ झेल ले जाता। उसकी श्रद्धा और प्रेम का कवच पहनकर वह अजेय हो जाता। अगर उसे फाँसी भी हो जाती, तो वह हँसते-हँसते उस पर चढ़ जाता।

मगर पहले उससे चाहे जो भूल हुई, इस वक्त तो वह भूल से नहीं,

जालपा की ख़ातिर ही यह कष्ट भोग रहा था। क़ैद भोगनी ही है, तो उसे रो-रोकर भोगने से तो यह कहीं अच्छा है कि हँस-हँस भोगा जाय। आख़िर पुलिस-अधिकारियों के दिल में अपना विश्वास जमाने के लिए वह और क्या करता। यह दुष्ट जालपा को सताते, उसका अपमान करते, उस पर झूठ मुक़दमा चलाकर उसे सज़ा दिलाते। वह दशा तो और भी असह्य होती। वह दुर्बल था, सब अपमान सह सकता था; जालपा तो शायद प्राण ही दे देती।

उसे आज ज्ञात हुआ कि वह जालपा को नहीं छोड़ सकता, और ज़ोहरा को त्याग देना भी उसके लिए असंभव-सा जान पड़ता था। क्या वह दोनों रमणियों को प्रसन्न रख सकता था? क्या इस दशा में जालपा उसके साथ रहना स्वीकार करेगी? कभी नहीं। वह शायद उसे कभी नहीं क्षमा करेगी। अगर उसे यह मालूम भी हो जाय कि उसी के लिए वह यह यातना भोग रहा है, तो भी वह उसे क्षमा न करेगी। वह कहेगी, मेरे लिए तुमने अपनी आत्मा को क्यों कलंकित किया? मैं अपनी रक्षा आप कर सकती थी।

वह दिन भर इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा। आँखें सड़क की ओर लगी हुई थीं। नहाने का समय टल गया, भोजन का समय टल गया, किसी बात की परवा न थी। अख़बार से दिल बहलाना चाहा, उपन्यास लेकर बैठा; मगर किसी काम में चित्त न लगा। आज दारोगाजी भी नहीं आये। या तो रात की घटना से रुष्ट, या लज्जित थे। या कहीं बाहर चले गये। रमा ने किसी से इस विषय में कुछ पूछा भी नहीं।

सभी दुर्बल मनुष्यों की भाँति रमा भी अपने पतन से लज्जित था। वह जब एकान्त में बैठता, तो उसे अपनी दशा पर दुःख होता—क्यों उसकी विलास-वृत्ति इतनी प्रबल है? वह इतना विवेक-शून्य न था कि अधोगति में भी प्रसन्न रहता; लेकिन ज्योंही और लोग आ जाते, शराब की बोतल आ जाती, ज़ोहरा सामने आकर बैठ जाती, उसका सारा विवेक और धर्म-ज्ञान भ्रष्ट हो जाता।

रात के दस बज गये, पर जोहरा का कहीं पता नहीं। फाटक बन्द हो गया। रमा को अब उसके आने की आशा न रही; लेकिन फिर भी उसके कान लगे हुए थे। क्या बात हुई? क्या जालपा उसे मिली ही नहीं, या वह

गयी हो नहीं ? उसने इरादा किया, अगर कल ज़ोहरा न आयी, तो उसके घर किसी को भेजूँगा। उसे दो-एक झपकियाँ आयीं और सबेरा हो गया। फिर वही विकलता शुरू हुई, किसी को उसके घर भेज कर बुलवाना चाहिए। कम-से-कम यह तो मालूम हो जाय, कि वह घर पर है या नहीं।

दारोगा के पास जाकर बोला—रात तो आप आपे में न थे।

दारोगा ने ईर्ष्या को छिपाते हुए कहा—यह बात न थी ! मैं महज़ आपको छेड़ रहा था।

रमा०—जोहरा रात आयी नहीं, ज़रा किसी को भेजकर पता तो लगवाइये बात क्या है। कहीं नाराज़ तो नहीं हो गयी ?

दारोगा ने बेदिली से कहा—उसे गरज़ होगी खुद आयेगी। किसी को भेजने की ज़रूरत नहीं है।

रमा ने फिर आग्रह न किया। समझ गया, यह हज़रत आज बिगड़ गये। चुपके से चला आया। अब किससे कहे ? सबसे यह बात कहना लज्जा-स्पद मालूम होता था। समझेंगे, यह महाशय एक ही रसिया निकले। दारोगा से जो थोड़ी-सी घनिष्ठता हो गयी थी।

एक हफ़्ते तक उसे ज़ोहरा के दर्शन न हुए। अब उसके आने की कोई आशा न थी। रमा ने सोचा, आखिर बेवफ़ा निकली। उससे कुछ आशा करना मेरी भूल थी। मुमकिन है, पुलिस-अधिकारियों ने उसके आने की मनाही कर दी हो। कम-से-कम मुझे एक पत्र लिख सकती थी। मुझे कितना धोखा हुआ। व्यर्थ उससे अपने दिल की बात कही। इन लोगों से कह दे, तो उल्टी आँतें गले पड़ जायँ। मगर जोहरा बेवफ़ाई नहीं कर सकती। रमा की अन्तरात्मा इसकी गवाही देती थी। इस बात को किसी तरह स्वी-कार न करती थी। शुरू के दस-पाँच दिन तो जरूर जोहरा ने उसे लुब्ध करने की चेष्टा की थी फिर अनायास ही उसके व्यवहार में परिवर्तन होने लगा था। वह क्यों बार-बार सजल-नेत्र होकर कहती थी, देखो बाबूजी, मुझे भूल न जाना ! उसकी वह हसरत-भरी बातें याद आ-आकर कपट की शंका को दिल से निकाल देतीं। जरूर कोई-न-कोई बात हो गयी है। वह अक्सर एकान्त में बैठकर जोहरा की याद करके बच्चों की तरह रोता। शराब से उसे घृणा हो गयी। दारोगा आते, इंसपेक्टर साहब आते; पर

रमा को उनके साथ दस-पाँच मिनट बैठना भी अखरता। वह चाहता था, मुझे कोई न छेड़े, कोई न बोले। रसोइया खाने को बुलाने आता, तो उसे घुड़क देता। कहीं घूमने या सैर करने को इच्छा ही न होती। यहाँ कोई उसका हमदर्द न था, कोई इसका मित्र न था, एकान्त में मन मारे बैठे रहने में ही उसके चित्त को शान्ति होती थी। स्मृतियों में भी अब कोई आनन्द न था। नहीं, वह स्मृतियाँ भी मानो उसके हृदय से मिट गयी थीं। एक प्रकार का विराग उसके दिल पर छाया रहता था।

सातवाँ दिन था। आठ बज गये थे। आज एक बहुत अच्छा फ़िल्म होने वाला था। एक प्रेम-कथा थी। दारोगा ने आकर रमा से कहा, तो वह चलने को तैयार हो गया। कपड़े पहन रहा था कि जोहरा आ पहुँची। रमा ने उसकी तरफ एक बार आँख उठाकर देखा, फिर आईने में अपने बाल सँवारने लगा। न कुछ बोला, न कुछ कहा। हाँ, जोहरा का वह सादा आभरणहीन स्वरूप देखकर उसे कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ। वह केवल एक साड़ी पहने हुए थी। आभूषण का एक तार भी उसकी देह पर न था। ओंठ मुरझाये हुए और चेहरे पर क्रीड़ामय चंचलता की जगह तेजमय गम्भीरता झलक रही थी।

वह एक मिनट खड़ी रही, तब रमा के पास जाकर बोली—क्या मुझसे नाराज़ हो? बेकसूर, बिना कुछ पूछे-बूछे?

रमा ने फिर भी कुछ जवाब न दिया। जूते पहनने लगा। जोहरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—क्या यह ख़फ़गी इसलिए है, कि मैं इतने दिनों आयी क्यों नहीं?

रमा ने रुखाई से जवाब दिया—अगर तुम अब भी न आतीं, तो मेरा क्या अख्तियार था। तुम्हारी दया थी कि चली आयीं।

यह कहने के साथ उसे खयाल आया, कि मैं इसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। लज्जित नेत्रों से उसकी ओर ताकने लगा।

जोहरा ने मुसकराकर कहा—यह अच्छी दिल्लगी है! आपने ही तो एक काम सौंपा और जब वह काम करके लौटी, तो आप बिगड़ रहे हैं! क्या तुमने वह काम इतना आसान समझा था कि चुटकी बजाते पूरा हो जायगा? तुमने मुझे उस देवी से वरदान लेने भेजा, जो ऊपर

से फूल है, पर भीतर से पत्थर; जो इतनी नाजुक होकर भी इतनी मज़बूत है।

रमा ने बेदिली से पूछा—है कहाँ ? क्या करती है ?

ज़ोहरा—उसी दिनेश के घर हैं जिसको फांसी की सज़ा हो गयी है। उसके दो बच्चे हैं, औरत है और मां है। दिन भर उन्हीं बच्चों को खेलाती हैं, बुढ़िया के लिए नदी से पानी लाती हैं, घर का सारा काम-काज करती हैं और उनके लिए बड़े-बड़े आदमियों से चन्दा मांग कर लाती हैं। दिनेश के घर में न कोई जायदाद थी; न रुपये थे। लोग बड़ी तकलीफ़ में थे। कोई मददगार तक न था, जो जाकर उन्हें ढाढ़स तो देता। जितने साथी सोहबती थे, सब के सब मुँह छिपा बैठे। दो-तीन फ़ाक़े तक हो चुके थे। जालपा ने जाकर उनको जिला लिया।

रमा की सारी बेदिली काफ़ूर हो गयी। जूता छोड़ दिया और कुरसी पर बैठकर बोला—तुम खड़ी क्यों हो, शुरू से बताओ; तुमने तो बीच में से शुरू किया। एक बात भी मत छोड़ना। तुम पहले उसके पास कैसे पहुँची ? पता कैसे लगा ?

ज़ोहरा—कुछ नहीं, पहले उसी देवीदीन खटिक के पास गयी। उसने दिनेश के घर का पता दिया। चटपट पहुँची।

रमा०—तुमने जाकर उसे पुकारा ? तुम्हें देखकर कुछ चौंकी नहीं ? कुछ झिझकी तो ज़रूर होगी !

ज़ोहरा मुसकराकर बोली—मैं इस रूप में न थी। देवीदीन के घर से मैं अपने घर गयी और ब्रह्म-समाजी लेडी का स्वांग भरा। न जाने मुझमें ऐसी कौन-सी बात है जिससे दूसरों को फौरन पता चल जाता है कि मैं कौन हूँ, या क्या हूँ और ब्राह्म लेडियों को देखती हूँ, कोई उनकी तरफ आँखें तक नहीं उठाता। मेरा पहनावा-ओढ़ावा वही है, भड़कीले कपड़े या फज़ूल के गहने बिलकुल नहीं पहनती, फिर भी सब मेरी तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देखते हैं। मेरी असलियत नहीं छिपती। यही खौफ़ मुझे था, कि कहीं जालपा भांप न जाय; लेकिन मैंने दांत खूब साफ कर लिये थे, पान का निशान तक न था। मालूम होता था किसी कालेज की लेडी-टीचर होगी। इस शक्ल में मैं वहाँ पहुँची। ऐसी सूरत बना ली, कि वह क्या, कोई भी न भाँप सकता

थ। । परदा ढँका रह गया । मैंने दिनेश की माँ से कहा—मैं यहाँ यूनिवर्सिटी में पढ़ती हूँ । अपना घर मुंगेर बतलाया । बच्चों के लिए मिठाई ले गयी थी। हमदर्द का पार्ट खेलने गयी थी । और मेरा खयाल है कि मैंने खूब खेला । दोनों औरतें बेचारी रोने लगीं । मैं भी ज़ब्त न कर सकी । उनसे कभी-कभी मिलते रहने का वादा किया । जालपा इसी बीच में गंगा-जल लिये पहुँची । मैंने दिनेश की मां से बँगला में पूछा—क्या यह कहारिन है, उसने कहा, नहीं, यह भी तुम्हारी तरह हम लोगों के दुःख में शरीक होने आ गई हैं । यहाँ इनके शौहर किसी दफ़्तर में नौकर हैं । और तो कुछ मालूम नहीं। रोज़ सबेरे आ जाती हैं, और बच्चों को खेलाने ले जाती हैं । मैं अपने हाथ से गंगाजल लाया करती थी । मुझे रोक दिया और खुद लाती हैं । हमें तो इन्होंने जीवन-दान दिया । कोई आगे-पीछे न था । बच्चे दाने-दाने को तरसते थे । जब से यह आ गयी हैं, हमें कोई कष्ट नहीं है। न जाने किस शुभ कर्म का यह वरदान हमें मिला है ।

उस घर के सामने ही एक छोटा-सा पार्क है । मुहल्ले भर के बच्चे वहीं खेला करते हैं । शाम हो गयी थी। जालपा देवी ने दोनों बच्चों को साथ लिया और पार्क की तरफ चलीं । मैं जो मिठाई ले गयी थी, उसमें से बूढ़ी ने एक-एक मिठाई दोनों बच्चों को दी थी । दोनों कूद-कूदकर नाचने लगे । बच्चों की इस खुशी पर मुझे रोना आ गया । दोनों मिठाइयाँ खाते हुए जालपा के साथ हो लिये । जब पार्क में दोनों बच्चे खेलने लगे, तब जालपा से मेरी बातें होने लगीं ।'

रमा ने कुर्सी और क़रीब खींच ली, और आगे को झुक गया । बोला—तुमने किस तरह बातचीत शुरू की ?

जोहरा—कह तो रही हूँ । मैंने पूछा—जालपा देवी, तुम कहाँ रहती हो ? घर की दोनों औरतों से तुम्हारी बड़ाई सुनकर तुम्हारे ऊपर आशिक हो गयी हूँ ।

रमा०—यही लफ्ज़ कहा था तुमने !

जोहरा—हाँ, जरा मज़ाक करने की सूझी । मेरी तरफ़ ताज्जुब से देखकर बोलीं—तुम तो बंगालिन नहीं मालूम होतीं । इतनी साफ़ हिन्दी कोई बंगालिन नहीं बोलती । मैंने कहा—मैं मुंगेर की रहनेवाली हूँ और

वहाँ मुसलमान औरतों के साथ बहुत मिलती-जुलती रही हूँ। आपसे कभी-कभी मिलने का जी चाहता है। आप कहाँ रहती हैं। कभी-कभी दो घड़ी के लिए चली आऊँगी। आपके पास घड़ी भर बैठकर मैं भी आदमियत सीख जाऊँगी।

जालपा ने शरमाकर कहा—तुम तो मुझे बनाने लगीं। कहाँ तुम, कॉलेज की पढ़नेवाली, कहाँ मैं अपढ़ गँवार औरत। तुमसे मिलकर मैं अलबत्ता आदमी बन जाऊँगी। जब जी चाहे, यहीं चली आना। यही मेरा घर समझो।

मैंने कहा—तुम्हारे स्वामीजी ने तुम्हें इतनी आज़ादी दे रखी है। बड़े अच्छे ख़यालों के आदमी होंगे। किस दफ़्तर में नौकर हैं?

जालपा ने अपने नाखूनों को देखते हुए कहा—पुलिस में उम्मेदवार हैं।

मैंने ताज्जुब से पूछा—पुलिस के आदमी होकर वह तुम्हें यहाँ आने की आज़ादी देते हैं?

जालपा इस प्रश्न के लिए तैयार न मालूम होती थी। कुछ चौंककर बोली—वह मुझसे कुछ नहीं कहते....मैंने उनसे यहाँ आने की बात नहीं कही....वह घर बहुत कम आते हैं। वहीं पुलिसवालों के साथ रहते हैं।

उन्होंने एक साथ तीन जवाब दिये। फिर भी उन्हें शक हो रहा था, कि इनमें कोई जवाब इत्मीनान के लायक़ नहीं है। वह कुछ खिसियानी-सी होकर दूसरी तरफ़ ताकने लगीं।

मैंने पूछा—तुम अपने स्वामी से कहकर किसी तरह मेरी मुलाकात उस मुख़बिर से करा सकती हो, जिसने क़ैदियों के खिलाफ़ गवाही दी है?

रमानाथ की आँखें फैल गयीं और छाती धक-धक करने लगी। जोहरा बोली—यह सुनकर जालपा ने मुझे चुभती हुई आँखों से देखकर पूछा—तुम उनसे मिलकर क्या करोगी!

मैंने कहा—तुम मुलाकात करा सकती हो या नहीं? मैं उनसे यही पूछना चाहती हूँ, कि तुमने इतने आदमियों को फँसाकर क्या पाया? देखूँगी वह क्या जवाब देते हैं।

जालपा का चेहरा सख्त पड़ गया। बोली—वह यह कह सकता है,

मैंने अपने फ़ायदे के लिए, किया ! सभी आदमी अपना फायदा सोचते हैं। मैंने भी सोचा। जब पुलिस के सैकड़ों आदमियों से कोई यह प्रश्न नहीं करता, तो उससे यह प्रश्न क्यों किया जाय ? इससे कोई फायदा नहीं।

मैंने कहा—अच्छा मान लो, तुम्हारा पति ऐसी मुख़बिरी करता तो तुम क्या करतीं ?

जालपा ने मेरी तरफ़ सहमी हुई आँखों से देखकर कहा—तुम मुझसे यह सवाल क्यों करती हो ? तुम खुद अपने दिल में इसका जवाब क्यों नही ढूँढ़तीं ?

मैंने कहा—मैं तो उनसे कभी न बोलती; न कभी उनकी सूरत देखती।

जालपा ने गम्भीर चिन्ता के भाव से कहा—शायद मैं भी ऐसा ही समझती—या न समझती—कुछ कह नहीं सकती। आख़िर पुलिस के अफ़सरों के घर में भी तो औरतें हैं। क्यों नहीं अपने आदमियों को कुछ कहतीं हैं ? जिस तरह उनके हृदय अपने मरदों के-से हो गये हैं, सम्भव है, मेरा हृदय भी वैसा ही हो जाता।

इतने में अँधेरा हो गया। जालपा देवी ने कहा—मुझे देर हो रही है। बच्चे साथ हैं। कल हो सके तो फिर मिलियेगा। आपकी बातों में बड़ा आनन्द आता है।

मैं चलने लगी, तो उन्होंने चलते-चलते मुझसे फिर कहा—ज़रूर आइयेगा। यहीं मैं मिलूँगी।

लेकिन दस क़दम के बाद फिर रुककर बोलीं—मैंने आपका नाम तो पूछा ही नहीं। अभी तुमसे बातें करने से जी नहीं भरा। देर न हो रही तो आओ कुछ देर और गप-शप करें।

मैं तो चाहती ही थी। अपना नाम जोहरा बतला दिया।'

रमा ने पूछा—सच !

जोहरा—हाँ, हर्ज क्या था। पहले तो जालपा भी ज़रा चौंकी, पर कोई बात न समझी। समझ गयी, बंगाली मुसलमान होगी। हम दोनों उसके घर गयीं। उस जरा-से कठघरे में न-जाने वह कैसे बैठती है। एक तिल भी जगह नहीं। कहीं मटके हैं, कहीं पानी, कहीं खाट, कहीं बिछावन। सील और बदबू से नाक फटी जाती थी। खाना तैयार हो गया था। दिनेश की बहू बरतन धो रही थी। जालपा ने उसे उठा दिया—जाकर बच्चों को

खिलाकर सुला दो, मैं बरदन धोये देती हूँ। और खुद बरतन माँजने लगीं। उसकी यह खिदमत देखकर मेरे दिल पर इतना असर हुआ कि मैं भी वहीं बैठ गयी और माँजे बरतनों को धोने लगी। जालपा ने मुझे वहाँ से हट जाने के लिए कहा, पर मैं न हटी। बराबर बरतन धोती रही। जालपा ने तब पानी का मटका अलग हटाकर कहा—मैं पानी न दूँगी, तुम उठ जाओ, मुझे शर्म आती है। तुम्हें मेरी कसम, हट जाओ, यहाँ आना तो तुम्हारी सज़ा हो गयी; तुमने ऐसा काम अपनी जिन्दगी में क्यों किया होगा। मैंने कहा—तुमने भी तो कभी न किया होगा; जब तुम करती हो, तो मेरे लिए क्या हर्ज है।

जालपा ने कहा—मेरी और बात है।

मैंने पूछा—क्यों जो बात तुम्हारे लिए है, वही मेरे लिए भी है। कोई महरी क्यों नहीं रख लेती हो?

जालपा ने कहा—महरियाँ आठ-आठ रुपये माँगती हैं।

मैं बोली—मैं आठ रुपये महीने दे दिया करूँगी।

जालपा ने ऐसी निगाहों से मेरी तरफ़ देखा, जिसमें सच्चे प्रेम के साथ सच्चा उल्लास, सच्चा आशीर्वाद भरा हुआ था। वह चितवन! आह! कितनी पाकीज़ा थी, कितनी पाक करने वाली! उनकी इस बेग़रज़ ख़िदमत के सामने मुझे अपनी ज़िन्दगी कितनी जलील, कितनी क़ाबिले-नफरत मालूम हो रही थी! उन बरतनों के धोने में जो आनन्द मिला, उसे मैं बयान नहीं कर सकती!

बरतन धोकर उठीं, तो बुढ़िया के पाँव दबाने बैठ गयीं। मैं चुपचाप खड़ी थी। मुझसे बोलीं—तुम्हें देर हो रही हो तो जाओ, कल फिर आना।

मैंने कहा—नहीं मैं, तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचाकर उधर ही से निकल जाऊँगी।

ग़रज़ नौ बजे के बाद वह वहाँ से चलीं। रास्ते में मैंने कहा—जालपा, तुम सचमुच देवी हो।

जालपा ने छूटते ही कहा—ज़ोहरा, ऐसा मत कहो। मैं ख़िदमत नहीं कर रही हूँ, अपने पापों का प्रायश्चित कर रही हूँ। बहुत दुःखी हूँ। मुझसे बड़ी अभागिनी संसार में न होगी।

मैंने अनजान बनकर कहा—इसका मतलब मैं नहीं समझी।

जालपा ने सामने ताकते हुए कहा—कभी समझ जाओगी। मेरा प्रायश्चित इस जन्म में न पूरा होगा। इसके लिए मुझे कई जन्म लेने पड़ेंगे।

मैंने कहा—तुम तो मुझे चक्कर में डाले देती हो बहन। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। जब तक तुम इसे समझा न दोगी, मैं तुम्हारा गला न छोड़ूँगी।

जालपा ने एक लम्बी सांस लेकर कहा—ज़ोहरा किसी बात को ख़ुद छिपाये रहना इससे ज्यादा आसान है कि दूसरों पर वह बोझ रखूँ।

मैंने आर्तकंठ से कहा—हाँ, पहली मुलाकात में अगर आपको मुझ पर इतना एतबार न हो, तो मैं आपको इलज़ाम न दूँगी; मगर कभी-न-कभी आपको मुझ पर एतबार करना पड़ेगा। मैं आपको छोड़ूँगी नहीं।

कुछ दूर तक हम दोनों चुपचाप चलती रहीं। एकाएक जालपा ने काँपती हुई आवाज़ में कहा - ज़ोहरा अगर इस वक्त तुम्हें मालूम हो जाय कि मैं कौन हूँ, तो शायद तुम नफ़रत से मुँह फेर लोगी और मेरे साये से भी दूर भागोगी।

इन लफ्ज़ों में न मालूम क्या जादू था कि मेरे सारे रोएँ खड़े हो गये। यह एक रंज और शर्म से भरे हुए दिल की आवाज़ थी और उसने मेरी स्याह ज़िन्दगी की सूरत मेरे सामने खड़ी कर दी। मेरी आँखों में आँसू भर आये। ऐसा जी में आया कि अपना सारा स्वांग खोल दूँ, न जाने उनके सामने मेरा दिल क्यों ऐसा हो गया था। मैंने बड़े-बड़े काइयाँ और छँटे हुए शोहदों और पुलिस अफ़सरों को चपरगट्टू बनाया है, पर उसके सामने मैं जैसे भीगी बिल्ली बनी हुई थी। फिर मैंने न जाने कैसे अपने को सँभाल लिया।

मैं बोली तो मेरा गला भी भरा हुआ था—यह तुम्हारा खयाल ग़लत है देवी! शायद तब मैं तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ूंगी। अपनी या अपनों की बुराइयों पर शर्मिन्दा होना सच्चे दिलों ही का काम है।

जालपा ने कहा—लेकिन तुम मेरा हाल जानकर करोगी क्या? बस, इतना ही समझ लो, कि एक गरीब अभागिन औरत हूँ, जिसे अपने ही जैसे अभागे और गरीब आदमियों के साथ मिलने-जुलने में आनन्द आता है।

इसी तरह वह बार-बार टालती रही; लेकिन मैंने पीछा न छोड़ा। आख़िर उसके मुँह से बात निकाल ही ली।

रमा ने कहा—यह नहीं, सब कुछ कहना पड़ेगा।

ज़ोहरा—अब आधी रात तक की कथा कहाँ तक सुनाऊँ। घण्टों लग जायेंगे। जब मैं बहुत पीछे पड़ी, तो उन्होंने आख़िर में कहा—मैं उसी मुखबिर की बदनसीब औरत हूँ, जिसने इन क़ैदियों पर आफ़त ढाई है। यह कहते-कहते वह रो पड़ी। फिर ज़रा आवाज़ को सँभालकर बोली—हम लोग इलाहाबाद के रहनेवाले हैं। एक ऐसी बात हुई, कि इन्हें वहाँ से भागना पड़ा। किसी से कुछ कहा न सुना, भाग आये। कई महीनों में पता चला, कि वह यहाँ हैं।

रमा ने कहा—इसका भी किस्सा है। तुमसे बताऊँगा कभी, जालपा के सिवा और किसी को यह न सूझती।

ज़ोहरा बोली—यह सब मैंने दूसरे दिन जान लिया। अब मैं तुम्हारे रग-रग से वाक़िफ़ हो गयी। जालपा मेरी सहेली है। शायद ही अपनी कोई बात उन्होंने मुझसे छिपाई हो।

कहने लगीं—जोहरा, मैं बड़ी मुसीबत में फँसी हुई हूँ। एक तरफ़ तो एक आदमी की जान और कई खानदानों की तबाही है, दूसरी तरफ़ अपनी तबाही है। मैं चाहूँ, तो आज इन सबों की जान बचा सकती हूँ। मैं अदालत को ऐसा सबूत दे सकती हूँ, कि फिर मुख़बिर की शहादत की कोई हक़ीक़त ही न रह जायगी; पर मुख़बिर को सजा से नहीं बचा सकती। बहन, इस दुविधे में मैं पड़ी नरक का कष्ट झेल रही हूँ। न यही होता है कि इन लोगों को मरने दूँ, और न यही हो सकता है, कि रमा को आग में झोंक दूँ। यह कहकर वह रो पड़ी और बोली—बहन मैं ख़ुद मर जाऊँगी; पर उनका अनिष्ट मुझसे न होगा। न्याय पर उन्हें भेंट नहीं कर सकती। अभी देखती हूँ, क्या फ़ैसला होता है। नहीं कह सकती, उस वक्त मैं क्या कर बैठूँ। शायद वहीं हाईकोर्ट में सारा किस्सा कह सुनाऊँ, शायद उसी दिन ज़हर खाकर सो रहूँ।

इतने में देवीदीन का घर आ गया। हम दोनों विदा हुईं। जालपा ने मुझसे बहुत इसरार किया, कि कल इसी वक्त फिर आना। दिन-भर तो उन्हें बात करने की फ़ुरसत नहीं रहती। बस यही शाम को मौक़ा मिलता

था। वह इतने रुपये जमा कर देना चाहती हैं, कि कम-से-कम दिनेश के घर वालों को कोई तकलीफ न हो। दो सौ रुपये से ज्यादा जमा कर चुकी हैं। मैंने भी पाँच रुपये दिये। मैंने दो-एक बार ज़िक्र किया, कि आप इन झगड़ों में न पड़िये अपने घर चली जाइये; लेकिन मैं साफ-साफ कहती हूँ, मैंने कभी ज़ोर देकर यह बात न कही। जब-जब मैंने इसका इशारा किया, उन्होंने ऐसा मुँह बनाया, गोया वह बात सुनना भी नहीं चाहती। मेरे मुँह से पूरी बात कभी न निकलने पायी। एक बात है, कहो तो कहूँ ?

रमा ने मानो ऊपरी मन से कहा—क्या बात है ?

ज़ोहरा—डिप्टी साहब से कह दूँ, जालपा को इलाहाबाद पहुँचा दें। उन्हें कोई तकलीफ़ न होगी। बस, औरतें उन्हें स्टेशन तक बातों में लगा ले जायँगी। वहाँ गाड़ी तैयार मिलेगी; वह उसमें बैठा दी जायँगी। या कोई और तदबीर सोचो।

रमा ने ज़ोहरा की आंखों से आंख मिलाकर कहा—क्या यह मुनासिब होगा ?

ज़ोहरा ने शरमाकर कहा—मुनासिब तो न होगा।

रमा ने चटपट जूते पहन लिये और ज़ोहरा से पूछा—देवीदीन के ही घर पर रहती है न ?

ज़ोहरा उठ खड़ी हुई और उसके सामने आकर बोली—तो क्या इस वक्त जाओगे !

रमा०—हाँ, ज़ोहरा इसी वक्त चला जाऊँगा। बस, उनसे दो बातें करके उस तरफ़ चला जाऊँगा जहाँ मुझे अब से बहुत पहले चला जाना चाहिए था।

ज़ोहरा—मगर कुछ सोच तो लो, नतीजा क्या होगा।

रमा०—सब सोच चुका, ज्यादे-से-ज्यादे तीन-चार साल की कैद दरोग-बयानी के जुर्म में। बस, अब रुखसत ! भूल मत जाना ज़ोहरा, शायद फिर कभी मुलाक़ात हो !

रमा बरामदे से उतरकर सहन में आया और एक क्षण में फाटक के बाहर था। दरबान ने कहा—हुजूर ने दारोगाजी को इत्तला कर दी है ?

रमा—इसकी कोई जरूरत नहीं।

चौकीदार—मैं जरा उनसे पूछ लूँ। मेरी रोजी क्यों ले रहे हैं हुजूर?

रमा ने कोई जवाब न दिया। तेजी से सड़क पर चल खड़ा हुआ। ज़ोहरा निस्पंद खड़ी हसरत भरी आँखों से देख रही थी। रमा के प्रति प्यार, ऐसा विकल करनेवाला प्यार, उसे कभी न हुआ था, जैसे कोई वीर-बाला अपने प्रियतम को समर-भूमि की ओर जाते देखकर गर्व से फूली न समाती हो।

चौकीदार ने लपककर दारोगाजी कहा। वह बेचारे खाना खाकर लेटे ही थे। घबराकर निकले, रमा के पीछे दौड़े और पुकारा—बाबू साहब, जरा सुनिए तो, एक मिनट रुक जाइए, इससे क्या फायदा—कुछ मालूम तो हो, आप कहाँ जा रहे हैं? आखिर बेचारे एक बार ठोकर खाकर गिर पड़े। रमा ने लौटकर उन्हें उठाया और पूछा—कहीं चोट तो नहीं आयी?

दारोगा—कोई बात न थी, ज़रा ठोकर खा गया था। आखिर आप इस वक्त कहाँ जा रहे हैं? सोचिए, तो इसका नतीजा क्या होगा?

रमा०—मैं एक घंटे में लौट आऊँगा। जालपा को शायद मुखालिफों ने बहकाया है, कि तू हाईकोर्ट में एक अर्ज़ी दे दे। जरा उसे जाकर समझाऊँगा।

दारोगा—यह आपको कैसे मालूम हुआ?

रमा०—ज़ोहरा कहीं सुन आयी है।

दारोगा—बड़ी बेवफ़ा औरत है। ऐसी औरत का तो सिर काट लेना चाहिए।

रमा०—इसीलिए तो जा रहा हूँ। या तो इसी वक्त उसे स्टेशन पर भेजकर आऊँगा, या इस बुरी तरह पेश आऊँगा, कि वह भी याद करेगी। ज्यादा बातचीत का मौक़ा नहीं है। रातभर के लिए मुझे इस क़ैद से आज़ाद कर दीजिए।

दारोगा—मैं भी चलता हूँ, ज़रा ठहर जाइए।

रमा०—जी नहीं, बिल्कुल मामला बिगड़ जायगा। मैं अभी आता हूँ।

दारोगा लाजवाब हो गये। एक मिनट तक खड़े सोचते रहे, फिर लौट पड़े और ज़ोहरा से बातें करते हुए पुलिस स्टेशन की तरफ़ चले गये। उधर रमा ने आगे बढ़कर एक तांगा किया और देवीदीन के घर जा पहुँचा।

जालपा दिनेश के घर से लौटी थी और बैठी जग्गो और देवीदीन से बातें कर रही थी। वह इन दिनों एक ही वक्त खाना खाया करती थी। इतने में रमा ने नीचे से आवाज़ दी। देवीदीन उसकी आवाज पहचान गया, बोला—भैया हैं शायद।

जालपा—कह दो, यहाँ क्या करने आये हैं। वहीं जायँ।

देवी—नहीं बेटी, ज़रा पूछ तो लूं, क्या कहते हैं। इस वखत कैसे उन्हें छुट्टी मिली?

जालपा—मुझे समझाने आये होंगे और क्या। मगर मुँह धो रखें!

देवीदीन ने द्वार खोल दिया। रमा ने अन्दर आकर कहा—दादा, तुम मुझे यहाँ देखकर इस वक्त ताज्जुब कर रहे होगे। एक घण्टे की छुट्टी लेकर आया हूँ। तुम लोगों से अपने बहुत-से अपराधों को क्षमा कराना था। जालपा ऊपर है?

देवीदीन बोला—हाँ, हैं तो, अभी आई हैं। बैठो, कुछ खाने को लाऊँ।

रमा०—नहीं, मैं खाना खा चुका हूँ। बस, जालपा से दो बातें करना चाहता हूँ।

देवी०—वह मानेंगी नहीं, नाहक शर्मिन्दा होना पड़ेगा। माननेवाली औरत नहीं हैं।

रमा०—मुझसे दो-दो बातें करेंगी या मेरी सूरत ही नहीं देखना चाहतीं? ज़रा जाकर पूछ लो।

देवी०—इसमें पूछना क्या है, दोनों बैठी तो हैं, जाओ। तुम्हारा घर जैसे तब था, वैसे अब भी है।

रमा०—नहीं दादा, उनसे पूछ लो। मैं यों न जाऊँगा।

देवीदीन ने ऊपर जा करके कहा—तुमसे कुछ कहना चाहते हैं बहू!

जालपा मुँह लटकाकर बोली—तो कहते क्यों नहीं, मैंने कुछ ज़बान बन्द कर दी है? जालपा ने यह बात इतने ज़ोर से कही थी कि नीचे रमा ने भी सुन ली। कितनी निर्ममता थी! उसकी सारी मिलन-लालसा मानो उड़ गई। नीचे ही से खड़े-खड़े बोला—वह अगर मुझसे नहीं बोलना चाहतीं, तो कोई जबरदस्ती नहीं। मैंने अब साहब से सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाने का निश्चय कर लिया है। इसी इरादे से इस वक्त चला हूँ। मेरी वजह से

इनको इतने कष्ट हुए, इसका मुझे खेद है। मेरी अक्ल पर परदा पड़ा हुआ था। स्वार्थ ने मुझे अन्धा कर रखा था। प्राणों के मोह ने, कष्टों के भय ने बुद्धि हर ली थी। कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके अनुष्ठानों ने उस ग्रह को शान्त कर दिया। शायद दो-चार साल के लिए सरकार की मेहमानी खानी पड़े। इसका भय नहीं। जीता रहा तो फिर भेंट होगी। नहीं, मेरी बुराइयों को माफ़ करना और मुझे भूल जाना। तुम भी देवी दादा और दादी, मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगों ने मेरे ऊपर जो दया की है, वह मरते दम तक न भूलूँगा। अगर जीता लौटा, तो शायद तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ। मेरी तो ज़िन्दगी सत्यानाश हो गयी। न दीन का हुआ न दुनिया का। यह भी कह देना, कि उनके गहने मैंने ही चुराये थे। सराफ़ को देने के लिए रुपये न थे। गहने लौटाना ज़रूरी था। इसलिए यह कुकर्म करना पड़ा। उसी का फल आज तक भोग रहा हूँ और शायद जब तक प्राण न निकल जायँगे, भोगता रहूँगा। अगर उसी वक्त सफ़ाई से सारी कथा कह दी होती, तो चाहे उस वक्त इन्हें बुरा लगता, लेकिन यह विपत्ति सिर पर न आती। तुम्हें भी मैंने धोखा दिया था, दादा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, कायस्थ हूँ। तुम जैसे देवता से मैंने कपट किया। न जाने इसका क्या दंड मिलेगा। सब कुछ क्षमा करना। बस, यही कहने आया था।

रमा बरामदे के नीचे उतर पड़ा और तेज़ी से क़दम उठाता हुआ चल दिया। जालपा भी कोठे से उतरी; लेकिन नीचे आयी तो रमा का पता न था। बरामदे के नीचे उतरकर देवीदीन से बोली—किधर गये हैं दादा ?

देवीदीन ने कहा—मैंने कुछ नहीं देखा बहू। मेरी आंखें आंसू से भरी हुई थीं। वह अब न मिलेंगे। दौड़ते हुए गये थे।

जालपा कई मिनट तक सड़क पर निःस्पन्द-सी खड़ी रही। उन्हें कैसे रोक लूँ ? इस वक्त वह कितने दुःखी हैं, कितने निराश हैं! मेरे सिर पर न जाने क्या शैतान सवार था, कि उन्हें बुला न लिया। भविष्य का हाल कौन जानता है। न-जाने कब भेंट होगी। विवाहित जीवन के इन दो-ढाई सालों में कभी उनका हृदय अनुराग से इतना प्रकम्पित न हुआ था। विलासिनी-रूप में वह केवल प्रेम के आवरण के दर्शन कर सकी। आज त्यागिनी बनकर उसने उसका असली रूप देखा। कितना मनोहर, कितना विशुद्ध, कितना

विशाल, कितना तेज़ोमय ! विलासिनी ने प्रेमोद्यान की दीवारों को देखा था, वह उसी में खुश थी, त्यागिनी बनकर वह उस उद्यान के भीतर पहुँच गयी थी—कितना रम्य दृश्य था, कितनी सुगंध, कितना वैचित्र्य, कितना विकास। इसकी सुगन्ध में, इसकी रम्यता में, देवत्व भरा हुआ था। प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँचकर देवत्व से मिल जाता है। जालपा को अब कोई शंका नहीं है; इस प्रेम को पाकर वह जन्म-जन्मान्तरों तक सौभाग्यवती बनी रहेगी। इसी प्रेम ने उसे वियोग, परिस्थिति और मृत्यु के भय से मुक्त कर दिया – उसे अभय-दान दे दिया। इस प्रेम के सामने अब सारा संसार और उसका अखंड विभव तुच्छ है।

इतने में ज़ोहरा आ गयी। जालपा को पटरी पर खड़ी देखकर बोली—यहाँ कैसे खड़ी हो बहन ? आज तो मैं न आ सकी। चलो, आज मुझे तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं।

दोनों ऊपर चली गयीं।

४८

दारोगा को भला कहाँ चैन ? रमा के जाने के बाद एक घण्टे तक उसका इंतजार करते रहे, फिर घोड़े पर सवार हुए देवीदीन के घर पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ, कि रमा को यहाँ से गये आध घंटे के ऊपर हो गया। फिर थाने लौटे। यहाँ रमा का अब तक पता न था। समझे देवीदीन ने धोखा दिया। कहीं उन्हें छिपा रखा होगा। सरपट साइकिल दौड़ाते हुए फिर देवीदीन के घर पहुँचे और धमकाना शुरू किया। देवीदीन ने कहा—विश्वास न हो, घर की खाना-तलाशी ले लीजिए, और क्या कीजिएगा। कोई बहुत बड़ा भी तो नहीं है। एक कोठरी नीचे है, एक ऊपर।

दारोगा ने साइकिल से उतर कर कहा—तुम बतलाते क्यों नहीं, वह कहाँ गये ?

देवी०—मुझे कुछ मालूम हो तब तो बताऊँ साहब ! यहाँ आये, अपनी घरवाली से तकरार की और चले गये।

दारोगा—वह कब इलाहाबाद जा रही हैं ?

देवी०—इलाहाबाद जाने की तो बाबू जी ने कोई बातचीत नहीं की। जब तक हाईकोर्ट का फ़ैसला न हो जायगा, वह यहाँ से न जायेंगी।

दारोगा—मुझे तुम्हारी बातों का यकीन नहीं आता।

यह कहते हुए दारोगा नीचे की कोठरी में घुस गये और हरएक चीज को गौर से देखा। फिर ऊपर चढ़ गये। वहाँ तीन औरतों को देखकर चौंके। ज़ोहरा को शरारत सूझी, तो उसने लम्बा-सा घूँघट निकाल लिया और अपने हाथ साड़ी में छिपा लिये। दारोगाजी को शक हुआ, शायद हजरत यह भेस बदले तो नहीं बैठे हैं।

देवीदीन से पूछा—यह तीसरी औरत कौन है?

देवीदीन ने कहा—मैं नहीं जानता। कभी-कभी बहू से मिलने आ जाती हैं।

दारोगा—मुझसे उड़ते हो बचा। साड़ी पहनाकर मुलज़िम को छिपाना चाहते हो! इनमें कौन जालपा देवी हैं। उनसे कह दो, नीचे चली जायँ। दूसरी औरत को वहीं रहने दो!

जालपा हट गयी, तो दारोगा ने ज़ोहरा के पास जाकर कहा—क्यों हज़रत मुझसे यह चालें! क्या कहकर वहाँ से आये थे और यहाँ आकर मौज में आ गये? सारा गुस्सा हवा हो गया। अब यह भेस उतारिये और मेरे साथ चलिए। देर हो रही है।

यह कहकर उन्होंने ज़ोहरा का घूँघट उठा दिया। ज़ोहरा ने ठट्ठा मारा। दारोगाजी मानो फिसलकर विस्मय सागर में गिर पड़े। बोले—अरे, तुम हो ज़ोहरा? तुम यहाँ कहाँ?

ज़ोहरा—अपनी ड्यूटी बजा रही हूँ।

'रमानाथ कहाँ गये? तुम्हें तो मालूम होगा?'

'वह तो मेरे यहाँ आने के पहले ही चले गये थे। फिर मैं यहीं बैठ गयी और जालपा देवी से बातें करने लगी।'

'अच्छा ज़रा मेरे साथ आओ। उसका पता लगाना है।'

ज़ोहरा ने बनावटी कुतूहल से कहा–क्या अभी तक बँगले पर नहीं पहुँचे?

'ना! न-जाने कहाँ रह गये?'

ज़ोहरा—मैंने खूब पट्टी पढ़ाई है। उसके पास जाने की अब ज़रूरत नहीं है। शायद रास्ते पर आ जाय। रमानाथ ने बुरी तरह डाँटा है। धमकियों से डर गयी है।

दारोगा—तुम्हें यकीन है, कि अब यह कोई शरारत न करेगी ?

ज़ोहरा—हाँ, मेरा तो यही ख्याल है।

दारोगा—तो फिर यह कहाँ गया ?

ज़ोहरा—कह नहीं सकती।

दारोगा—मुझे इसकी रिपोर्ट करनी होगी। इंसपेक्टर साहब और डिप्टी साहब को इत्तला देना जरूरी है। ज्यादा पी तो नहीं गया था ?

ज़ोहरा—पिये हुए तो थे!

दारोगा—तो कहीं गिर-गिरा पड़ा होगा। इसने बहुत दिक किया। तो मैं जरा उधर जाता हूँ। तुम्हें पहुँचा दूँ, तुम्हारे घर तक ?

ज़ोहरा—बड़ी इनायत होगी।

दारोगा ने ज़ोहरा को मोटर साइकिल पर बिठा लिया और उसको जरा देर में घर के दरवाजे पर उतार दिया; मगर इतनी देर में मन चंचल हो गया। बोले—अब तो जाने का जी नहीं चाहता ज़ोहरा! चलो, आज कुछ गप-शप हो। बहुत दिन हुए, तुम्हारी करम की निगाह नहीं हुई।

ज़ोहरा ने जीने के ऊपर एक कदम रखकर कहा—जाकर पहले इंसपेक्टर साहब से इत्तला तो कीजिए। यह गप-शप का मौका नहीं है।

दारोगा ने मोटर साइकिल से उतरकर कहा—नहीं, अब न जाऊँगा, ज़ोहरा। सुबह देखी जायगी। मैं भी आता हूँ।

ज़ोहरा—आप मानते नहीं हैं। शायद डिप्टी साहब आते हों। आज उन्होंने कहला भेजा था।

दारोगा—मुझे चकमा दे रही हो, ज़ोहरा? देखो, इतनी बेवफ़ाई अच्छी नहीं।

ज़ोहरा ने ऊपर चढ़कर द्वार बन्द कर लिया और ऊपर जाकर खिड़की से सिर निकालकर बोली—आदाब अर्ज!

४६

दारोगा घर जाकर लेट रहे। ग्यारह बज रहे थे। नींद खुली तो आठ बज गये थे। उठकर बैठे ही थे, कि टेलीफ़ोन पर पुकार हुई। जाकर सुनने लगे, डिप्टी साहब बोल रहे थे—इस रमानाथ ने बड़ा गोलमाल कर दिया

है। उसे किसी दूसरी जगह ठहराया जायगा। उसका सब सामान कमिश्नर साहब के पास भेज देना होगा। रात को वह बँगले पर था या नहीं ?

दारोगा ने कहा—जी नहीं, रात मुझसे बहाना करके अपनी बीबी के पास चला गया था।

टेलीफ़ोन—तुम उसको क्यों जाने दिया ? हमको ऐसा डर लगता है, कि उसने जज से सब हाल कह दिया। मुकदमा का जाँच फिर से होगा। आपसे बड़ा भारी 'ब्लंडर' हुआ है। सारा मिहनत पानी में फिर गया। उसको ज़बरदस्ती रोक लेना चाहिए था।

दारोगा—तो क्या वह जज साहब के पास गया था ?

डिप्टी—हाँ साहब, वहीं गया था; और जज भी कायदा को तोड़ दिया। वह फिर से मुक़दमा का पेशी करेगा। रमा अपना बयान बदलेगा। अब इसमें कोई 'डाउट' नहीं है। और यह सब आपका 'बंगलिंग' है। हम सब उस बाढ़ में बह जायगा। ज़ोहरा भी दग़ा दिया।

दारोग़ा उसी वक्त रमानाथ का सब सामान लेकर पुलिस-कमिश्नर के बँगले की तरफ चले। रमा पर ऐसा गुस्सा आ रहा था, कि पायें तो समूचा ही निगल जायँ! कम्बख़्त को कितना समझाया, कैसी-कैसी खातिर की; पर दगा कर ही गया। इसमें ज़ोहरा की भी सांठ-गांठ है। बीबी की डांट-फटकार करने का महज बहाना था। ेहरा बेगम की तो आज ही खबर लेता हूँ। कहाँ जाती हैं। देवीदीन से भी समझूँगा।

एक हफ्ते तक पुलिस-कर्मचारियों में जो हलचल रही उसका जिक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं। रात-की-रात और दिन-के-दिन इसी फ़िक्र में चक्कर खाते रहते थे। अब मुकदमे से कहीं ज्यादा अपनी फिक्र थी। सबसे ज़्यादा घबराहट दारोगा को थी। बचने की कोई उम्मीद नहीं नज़र आती थी। इंसपेक्टर और डिप्टी—दोनों ने सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी और खुद बिलकुल अलग हो गये।

इस मुकदमे की फिर पेशी होगी, इसकी सारे शहर में चर्चा होने लगी। अँगरेजी न्याय के इतिहास में यह घटना सर्वथा अभूतपूर्व थी। कभी ऐसा नहीं हुआ। वकीलों में इस पर कानूनी बहसें होतीं। जज साहब ऐसा कर भी सकते हैं ? मगर जज दृढ़ था। पुलिसवालों ने बड़े-बड़े जोर लगाये।

पुलिस कमिश्नर ने यहाँ तक कहा, कि इससे सारा पुलिस विभाग बदनाम हो जायगा, लेकिन जज ने किसी की न सुनी। झूठे सबूतों पर पन्द्रह आदमियों की जिन्दगी बरबाद करने की जिम्मेदारी सिर पर लेना उसकी आत्मा के लिए असह्य था। उसने हाईकोर्ट को सूचना दी और गवर्नमेंट को भी।

इधर पुलिसवाले रात-दिन रमा की तलाश में दौड़-धूप करते रहते थे, लेकिन रमा न जाने कहां जा छिपा था, कि उसका पता ही न चलता था।

हफ्तों सरकारी कर्मचारियों में लिखा-पढ़ी होती रही। मनों काग़ज स्याह कर दिये गये। उधर समाचार-पत्रों में इस मामले पर नित्य आलोचना होती रहती थी। एक पत्रकार ने जालपा से मुलाकात की, और उसका बयान छाप दिया। दूसरे ज़ोहरा का बयान छाप दिया। इन दोनों बयानों ने पुलिस की बखिया उधेड़ दी। ज़ोहरा ने तो लिखा कि मुझे पचास रुपये रोज़ इसलिए दिये जाते थे कि रमानाथ को बहलाती रहूँ और कुछ सोचने या विचार करने का अवसर न मिले। पुलिस ने इन बयानों को पढ़ा, तो दाँत पीस लिये। ज़ोहरा और जालपा, दोनों कहीं और जा छिपीं, नहीं तो पुलिस ने ज़रूर उनको शरारत का मजा चखाया होता।

आखिर दो महीने के बाद फैसला हुआ। इस मुकदमे पर विचार करने के लिए एक सिविलियन नियुक्त किया गया। शहर के बाहर एक बँगले में विचार शुरू हुआ, जिसमें ज्यादा भीड़-भाड़ न हो। फिर भी रोज़ दस-बारह हज़ार आदमी जमा हो जाते थे। पुलिस ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया, कि मुलजिमों में कोई मुखबिर बन जाय, पर उसका उद्योग सफल न हुआ। दारोगा जी चाहते तो नई शहादतें बना सकते थे, पर अपने अफ़सरों की स्वार्थपरता पर वह इतने खिन्न हुए कि दूर से तमाशा देखने के सिवा और कुछ न किया। जब सारा यश अफ़सरों को मिलता है और सारा अपयश मातहतों को, तो दारोगाजी को क्या ग़रज़ पड़ी थी कि नई शहादतों की फ़िक्र में सिर खपाते? इस मुआमले में अफ़सरों ने सारा दोष दारोगा ही के सिर मढ़ा। उन्हीं की लापवाही से रमानाथ हाथ से निकला। अगर ज़्यादा सख्ती से निगरानी की जाती, तो जालपा कैसे उसे ख़त लिख सकती, और वह कैसे रात को उससे मिल सकता।

ऐसी दशा में मुक़दमा उठा लेने के सिवा और क्या किया जा सकता था! तबेले की बला बन्दर के सिर गयी। दारोगा तनज्जुल हो गये और नायब-दारोगा का तराई में तबदला कर दिया गया।

जिस दिन मुलज़िमों को छोड़ा गया, आधा शहर उनका स्वागत करने को जमा था। पुलिस ने दस बजे रात को उन्हें छोड़ा, पर दर्शक जमा हो ही गये। लोग जालपा को भी खींच ले गये। पीछे-पीछे देवीदीन भी पहुँचा। जालपा पर फूलों की वर्षा हो रही थी और 'जालपा देवी की जय!' से आकाश गूँज रहा था।

मगर रमानाथ की परीक्षा अभी समाप्त न हुई थी। उन पर दरोग़-बयानी का अभियोग चलाने का निश्चय हो गया।

५०

उसी बँगले में ठीक दस बजे मुक़दमा पेश हुआ। सावन की झड़ी लगी हुई थी। कलकत्ता दलदल हो रहा था, लेकिन दर्शकों का एक अपार समूह सामने मैदान में खड़ा था। महिलाओं में दिनेश की पत्नी और माता भी आयी हुई थीं। पेशी से दस-पन्द्रह मिनट पहले जालपा और ज़ोहरा भी बन्द गाड़ियों में आ पहुँचीं। महिलाओं को अदालत के कमरे में जाने की आज्ञा मिल गयी।

पुलिस की शहादतें शुरू हुईं। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, इंसपेक्टर, दारोगा, नायब दारोगा—सभी के बयान हुए। दोनों तरफ़ के वकीलों ने जिरहें भी कीं, पर इन कार्रवाइयों में उल्लेखनीय कोई बात न थी। जाब्ते की पाबन्दी की जा रही थी। पर इनके बाद रमानाथ का बयान हुआ, पर उसमें भी कोई नई बात न थी। उसने अपने जीवन के गत एक वर्ष का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। कोई बात न छिपाई। वकील के पूछने पर उसने कहा—जालपा के त्याग, निष्ठा और सत्य-प्रेम ने मेरी आँखें खोलीं, और उससे भी ज्यादा ज़ोहरा के सौजन्य और निष्कपट व्यवहार ने। मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ, कि मुझे उस तरफ़ से प्रकाश मिला, जिधर से औरों को अन्धकार मिलता है। विष में मुझे सुधा प्राप्त हो गयी।

इसके बाद सफ़ाई की तरफ से देवीदीन, जालपा और ज़ोहरा के बयान हुए। वकीलों ने इनसे भी सवाल किया, पर सच्चे गवाह क्या उखड़ते।

ज़ोहरा का बयान बहुत ही प्रभावोत्पादक था। उसने कहा, जिस प्राणी को जंजीरों से जकड़ने के लिए वह भेजी गयी है, वह ख़ुद दर्द से तपड़ रहा है, उसे मरहम की ज़रूरत है, जंजीरों की नहीं। वह सहारे का हाथ चाहता है, धक्के का झोंका नहीं। जालपा देवी के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका अटल विश्वास देखकर मैं अपने को भूल गयी। मुझे अपनी नीचता, अपनी स्वार्थान्धता पर लज्जा आयी! मेरा जीवन कितना अधम, कितना पतित है, यह मुझपर उस वक्त खुला, और जब मैं जालपा से मिली तो उसकी निष्काम सेवा, उसका उज्ज्वल तप देखकर मेरे मन के रहे-सहे संस्कार भी मिट गये। विलास युक्त जीवन से मुझे घृणा हो गयी। मैंने निश्चय कर लिया, इसी अंचल में मैं भी आश्रय लूँगी।

मगर इससे भी ज्यादा मार्के का बयान जालपा का था। उसे सुनकर दर्शकों की आँखों में आँसू आ गये। उसके अन्तिम शब्द थे—मेरे पति निर्दोष हैं। ईश्वर की दृष्टि में ही नहीं, नीति की दृष्टि में भी वह निर्दोष हैं। उनके भाग्य में मेरी विलासासक्ति का प्रायश्चित करना लिखा था, वह उन्होंने किया। वह बाज़ार से मुँह छिपाकर भागे। उन्होंने मुझ पर अगर कोई अत्याचार किया, तो वह यही कि मेरी इच्छाओं को पूरा करने में उन्होंने सदैव कल्पना से काम लिया। मुझे प्रसन्न करने के लिये, मुझे सुखी रखने के लिये उन्होंने अपने ऊपर बड़े-से-बड़े भार लेने में कभी संकोच नहीं किया। वह यह भूल गये कि विलास-वृत्ति संतोष करना नहीं जानती। जहाँ मुझे रोकना उचित था वहाँ उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया, और इस अवसर पर भी मुझे पूरा विश्वास है, मुझ पर अत्याचार करने की धमकी देकर ही उनकी जबान बन्द की गयी। अगर अपराधिनी हूँ, तो मैं हूँ, जिसके कारण उन्हें इतने कष्ट झेलने पड़े। मानती हूँ कि मैंने उन्हें अपना बयान बदलने के लिये मजबूर किया। अगर मुझे विश्वास होता वह डाकों में शरीक हुए, तो सबसे पहले मैं उनका तिरस्कार करती। मैं यह नहीं सह सकती थी, कि वह निरपराधियों की लाश पर अपना भवन खड़ा करें। जिन दिनों यहाँ डाके पड़े, उन तारीख़ों में मेरे स्वामी प्रयाग में थे। अदालत चाहे तो टेलीफोन द्वारा इसका जाँच कर सकती है। अगर ज़रूरत हो, तो म्युनिसिपिल बोर्ड के अधिकारियों का बयान लिया जा सकता है।

ऐसी दशा में मेरा कर्तव्य इसके सिवा कुछ और हो ही नहीं सकता था जो मैंने किया।

अदालत ने सरकारी वकील से पूछा—क्या प्रयाग से इस मुआमले की कोई रिपोर्ट माँगी गयी थी!

वकील ने कहा—जी हाँ; मगर हमारा उस विषय पर कोई विवाद नहीं है।

सफ़ाई के वकील ने कहा—इससे यह तो सिद्ध हो जाता है, कि मुलज़िम डाके में शरीक नहीं था। अब केवल यह बात रह जाती है; कि वह मुखबिर क्यों बना?

वादी वकील—स्वार्थ-सिद्धि के सिवा और क्या हो सकता है।

सफ़ाई का वकील—मेरा कथन है, उसे धोखा दिया गया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से उसने पुलिस के हाथों की कठपुतली बनाना स्वीकार किया था, वह उसका भ्रम था, तो उसे धमकियाँ दी गयीं।

अब सफ़ाई का कोई गवाह न था। सरकारी वकील ने बहस शुरू की—योर ऑनर, आज आपके सम्मुख एक ऐसा अभियोग उपस्थित हुआ है जैसा सौभाग्य से बहुत कम हुआ करता है। आपको जनकपुर की डकैती का हाल मालूम है। जनकपुर के आस-पास कई गाँव में लगातार डाके पड़े और पुलिस डकैतों की खोज करने लगी। महीनों पुलिस कर्मचारी अपनी जान हथेली पर लिये, डकैतों को ढूँढ़ निकालने की कोशिश करते रहे। आख़िर उनकी मेहनत सफल हुई और डाकुओं की खबर मिली। यह लोग एक घर के अन्दर बैठे पाये गये। पुलिस ने एकबारगी सबों को पकड़ लिया; लेकिन आप जानते हैं, ऐसे मामलों में अदालतों के लिए सबूत पहुँचाना कितना मुश्किल होता हैं। जनता इन लोगों से कितना डरती है, प्राणों के भय से शहादत देने को तैयार नहीं होती। यहाँ तक कि जिनके घरों में डाके पड़े थे, वे भी शहादत देने का अवसर आया तो साफ़ निकल गये।

महानुभावों, पुलिस इसी उलझन में पड़ी हुई थी कि एक युवक आता है और इन डाकुओं का सरग़ना होने का दावा करता है। वह उन डकैतियों का ऐसा सजीव, ऐसा प्रमाणपूर्ण वर्णन करता है, कि पुलिस धोखे में आ जाती है। पुलिस ऐसे अवसर पर ऐसा आदमी पाकर इसको दैवी मदद

समझती है। यह युवक इलाहाबाद से भाग आया था और यहाँ भूखों मरता था। अपने भाग्य निर्माण का सुअवसर पाकर उसने उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने का निश्चय कर लिया। मुख़बिर बनकर सज़ा का तो उसे कोई भय था ही नहीं, पुलिस की सिफारिश से कोई अच्छी नौकरी पा जाने का विश्वास था। पुलिस ने उसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे अपना मुखबिर बना लिया। बहुत सम्भव था, कि कोई शहादत न पाकर पुलिस इन मुलज़िमों को छोड़ देती और उनपर कोई मुकदमा नहीं चलाती; पर इस युवक के चकमे में आकर उसने अभियोग चलाने का निश्चय कर लिया। उसमें चाहे और कोई गुण हो या न हो, उसकी रचना शक्ति की प्रखरता से इनकार नहीं किया जा सकता। उसने डकैतियों का ऐसा यथार्थ वर्णन किया, कि जंजीर की एक कड़ी भी कहीं से गायब न थी। अंकुर से फल निकलने तक की सारी बातों की उसने कल्पना कर ली थी। पुलिस ने मुकदमा चला दिया।

पर ऐसा मालूम होता हैं, कि इस बीच में उसे स्वभाग्य-निर्माण का इससे भी अच्छा अवसर मिल गया। बहुत सम्भव है, सरकार की विरोधिनी संस्थाओं ने उसे प्रलोभन दिये हों और उन प्रलोभनों ने स्वार्थ-सिद्धि का यह नया रास्ता सुझा दिया हो, जहाँ धन के साथ यश भी था, वाह-वाही भी थी; देशभक्ति का गौरव भी था। वह अपने स्वार्थ के लिये सब कुछ कर सकता है! वह स्वार्थ के लिए किसी के गले पर छुरी चला सकता है और साधु-वेश भी धारण कर सकता है। यही उसके जीवन का लक्ष्य है। हम खुश हैं, कि उसकी सद्‌बुद्धि ने अन्त में उसपर विजय पायी, चाहे उसका हेतु कुछ भी क्यों न हो। निरपराधियों को दण्ड देना पुलिस के लिए उतना ही आपत्तिजनक है, जितना अपराधियों को छोड़ देना। वह अपनी कारगुजारी दिखाने के लिए ही ऐसे मुकदमे नहीं चलाती। न गवर्नमेंट इतनी न्याय शून्य है, कि वह पुलिस के बहकावे मे आकर सारहीन मुकदमे चलाती फिरे; लेकिन इस युवक की चकमेबाज़ियों से पुलिस की जो बदनामी हुई और सरकार के हजारों रुपये ख़र्च हो गये, इसका जिम्मेदार कौन है? ऐसे आदमी को आदर्श दण्ड मिलना चाहिए, ताकि फिर किसी को ऐसी चकमेबाजी का साहस न हो। ऐसे मिथ्या का संसार रचनेवाले प्राणी को मुक्त रहकर समाज को ठगने का

मार्ग बन्द कर देना चाहिए। उसके लिए इस समय सबसे उपयुक्त स्थान वह है, जहाँ उसे कुछ दिन आत्म-चिन्तन का अवसर मिले। शायद वहाँ के एकान्तवास में उसको आन्तरिक जागृति प्राप्त हो जाय। आपको केवल यह विचार करना है, कि उसने पुलिस को धोखा दिया या नहीं। इस विषय में अब कोई सन्देह नहीं रह जाता, कि उसने धोखा दिया। अगर धमकियाँ दी गयी थीं तो वह पहली अदालत के बाद जज की अदालत में अपना बयान वापस ले सकता था; पर उस वक्त भी उसने ऐसा नहीं किया। इससे यह स्पष्ट है, कि धमकियों के आक्षेप मिथ्या हैं। उसने जो कुछ किया, स्वेच्छा से किया। ऐसे आदमी को यदि दण्ड न दिया गया, तो उसे अपनी कुटिल नीति से काम लेने का फिर साहस होगा और उसकी हिंसक मनोवृत्तियां और भी बलवान हो जायँगी।

फिर सफ़ाई के वकील ने जवाब दिया—यह मुक़दमा अँगरेज़ी इतिहास ही में नहीं, शायद सार्वदेशीय न्याय के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। रमानाथ एक साधारण युवक है। उसकी शिक्षा भी बहुत मामूली हुई है। वह ऊँचे विचारों का आदमी नहीं है। वह इलाहाबाद के म्युनिसिपल आफ़िस में नौकर है। वहाँ उसका काम चुंगी के रुपये वसूल करना है। वह व्यापारियों से प्रथानुसार रिश्वत लेता है। और अपनी आमदनी की परवाह न करता हुआ अनाप-शनाप खर्च करता है। आखिर एक दिन मीज़ान में गलती हो जाने से उसे शंका होती है, कि उससे कुछ रुपये उठ गये। वह इतना घबरा जाता है, कि किसी से कुछ नहीं कहता, बस घर से भाग खड़ा होता है। वहाँ दफ्तर में उसपर सुबहा होता है और उसके हिसाब की जाँच होती है। तब मालूम होता है, कि उसने कुछ ग़बन नहीं किया, सिर्फ हिसाब की भूल थी।

फिर रमानाथ के पुलिस के पंजे में फँसने, फरजी मुखबिर बनने और शहादत देने का जिक्र करके उसने कहा—

अब रमानाथ के जीवन में एक नया परिवर्तन होता है, ऐसा परिवर्तन जो एक विलास-प्रिय, पद-लोलुप युवक को धर्मनिष्ठ और कर्तव्यशील बना देता है। उसकी पत्नी जालपा, जिसे देवी कहा जाय तो अतियोक्ति न होगी, उसकी तलाश में प्रयाग से यहाँ आती है और यहाँ जब उसे मालूम होता है, कि रमा एक मुक़दमे में पुलिस का मुखबिर हो गया है; तो वह उससे

छिपकर मिलने जाती है। रमा अपने बँगले में आराम से पड़ा हुआ है। फाटक पर सन्तरी पहरा दे रहा है। जालपा को पति से मिलने में असफलता नहीं होती। तब वह एक पत्र लिखकर उसके सामने फेंक देती है। और देवीदीन के घर चली जाती है। रमा यह पत्र पढ़ता है और उसकी आँखों के सामने से परदा हट जाता है। वह छिपकर जालपा के पास आता है। जालपा उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाती है और उससे अपना बयान वापस लेने पर जोर देती है। रमा पहले शंकाएँ करता है; पर बाद को राजी हो जाता है और बँगले पर लौट जाता है। वहाँ वह पुलिस-अफ़सरों से साफ कह देता है, कि मैं अपना बयान बदल दूँगा। अधिकारी उसे तरह-तरह के प्रलोभन देते हैं, पर जब इसका रमा पर कोई असर नहीं होता और उन्हें मालूम हो गया कि उस पर ग़बन का मुकदमा नहीं है, तो वे उसे जालपा को गिरफ्तार करने की धमकी देते हैं। रमा की हिम्मत टूट जाती है। वह जानता है, पुलिस जो चाहे कर सकती है, इसलिए वह अपना इरादा तबदील कर देता है। और जज के इजलास में अपने पहले बयान का समर्थन कर देता है। अदालत मातहत में रमा से सफ़ाई ने जिरह नहीं किया था। यहाँ उससे जिरह की गयी; लेकिन इस मुक़दमे से कोई सरोकार न रखने पर भी उसने जिरहों के ऐसे जवाब दिये, कि जज को भी शक न हो सका और मुलजिमों की सजा हो गयी। रमानाथ की और भी खातिरदारियाँ होने लगीं। उसे एक सिफ़ारिशी खत दिया गया और शायद उसकी यू० पी० गवर्नमेंट से सिफ़ारिश भी की गयी।

फिर जालपा देवी ने फाँसी की सजा पाने वाले मुलजिम दिनेश के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करने का निश्चय किया। इधर-उधर से चन्दे माँग-माँग कर वह उनके लिए जिन्दगी की जरूरतें पूरी करती थीं, उनके घर का काम-काज अपने हाथों करती थीं, उनके बच्चों को खेलाने को ले जाती थीं।

एक दिन रमानाथ मोटर पर सैर करता हुआ जालपा को सिर पर एक पानी का मटका रखे देख लेता है। उसकी आत्म-मर्यादा जाग उठती है। जोहरा को पुलिस-कर्मचारियों ने रमानाथ के मनोरंजन के लिए नियुक्त कर दिया है। जोहरा युवक की मानसिक वेदना देखकर द्रवित हो जाती है

और वह जालपा का पूरा समाचार लाने के इरादे से चली जाती है। दिनेश के घर उसकी जालपा से भेंट होती है। जालपा का त्याग, सेवा और साधना देखकर इस वेश्या का हृदय इतना प्रभावित हो जाता है, कि वह अपने जीवन पर लज्जित हो जाती है और दोनों में बहनापा हो जाता है। वह एक सप्ताह के बाद जाकर रमा से सारा वृत्तान्त कह सुनाती है। वह उसी वक्त वहाँ से चल पड़ता है और जालपा से दो-चार बातें करके जज के बँगले पर चला जाता है। उसके बाद जो कुछ हुआ, वह हमारे सामने है।

मैं यह नहीं कहता, कि उसने झूठी गवाही नहीं दी; लेकिन उस परिस्थिति और उन प्रलोभनों पर ध्यान दीजिए, तो इस अपराध की गहनता बहुत कुछ घट जाती है। उस झूठी गवाही का परिणाम अगर यह होता, कि किसी निरपराध को सजा मिल जाती तो दूसरी बात थी। इस अवसर पर तो पन्द्रह युवकों की जान बच गई। क्या अब भी वह झूठी गवाही का अपराधी है? उसने खुद ही तो अपनी झूठी गवाही का एकबाल किया है। क्या इसका उसको दण्ड मिलना चाहिए? उसकी सरलता और सज्जनता ने एक वेश्या तक को मुग्ध कर दिया और वह उसे बहकाने और कहलाने के बदले उसके मार्ग का दीपक बन गयी। जालप देवी को कर्तव्यपरायणता क्या दण्ड के योग्य है? जालपा ही इस ड्रामा की नायिका है। उसी के सदनुराग, उसके सरल प्रेम, उसकी धर्मपरायणता, उसकी पतिभक्ति, उसके स्वार्थ त्याग, उसकी सेवा-निष्ठा, किस-किस गुण की प्रशंसा की जाय! आज वह रंग-मंच पर न आती, तो पन्द्रह परिवारों के चिराग गुल हो जाते। उसने पन्द्रह परिवारों को अभय-दान दिया है। उसे मालूम था, कि पुलिस का साथ देने से सांसारिक भविष्य कितना उज्ज्वल हो जायगा, वह जीवन की कितनी ही चिन्ताओं से मुक्त हो जायगी। सम्भव है, उसके पास भी मोटरकार हो जायगी, नौकर-चाकर हो जायेंगे, अच्छा-सा घर हो जायगा, बहुमूल्य आभूषण होंगे। क्या एक युवती रमणी के हृदय में इन सुखों का कुछ भी मूल्य नहीं है? लेकिन वह यातना सहने के लिए तैयार हो जाती है। क्या यही उसके धर्मानुराग का उपहार होगा कि वह पति-वंचित होकर जीवन-पथ पर भटकती फिरे? एक साधारण स्त्री में जिसने उच्चकोटि की शिक्षा नहीं पाई, क्या इतनी निष्ठा, इतना त्याग, इतना

विमर्ष किसी दैवी प्ररणा का परिचायक नहीं है ? क्या एक पतिता का ऐसे कार्य में सहायक हो जाना कोई महत्व नहीं रखता ? मैं तो समझता हूँ, रखता है। ऐसे अभियोग रोज नहीं पेश होते। शायद आप लोगों को अपने जीवन में फिर ऐसा अभियोग सुनने का मौक़ा न मिले। यहाँ आप एक अभियोग का फैसला करने बैठे हुए हैं; मगर इस कोर्ट के बाहर एक और बहुत बड़ा न्यायलय है, जहाँ आप लोगों के न्याय पर विचार होगा। जालपा का वही फैसला न्यायानुकूल होगा जिसे बाहर का विशाल न्यायालय स्वीकार करे। न्यायालय कानून की बारीकियों में नहीं पड़ता, जिसमें उलझकर, जिनकी पेचीदगियों में फँसकर, हम अक्सर पथ-भ्रष्ट हो जाया करते हैं, अक्सर दूध का पानी और पानी का दूध कर बैठते हैं। अगर आप झूठ पर पश्चात्ताप करके सच्ची बात कह देने के लिए, भोग-विलास-मुक्त जीवन व्यतीत करने के लिए किसी को अपराधी ठहराते हैं, तो आप संसार के सामने न्याय का कोई ऊँचा आदर्श नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

सरकारी वकील ने इसका प्रत्युत्तर देते हुए कहा—धर्म और आदर्श अपने स्थान पर बहुत ही आदर की चीजें हैं, लेकिन जिस आदमी ने जान बूझकर झूठी गवाही दी, उसने अपराध अवश्य किया। और इसका उसे दण्ड मिलना चाहिये। यह सत्य है, कि उसने प्रयाग में कोई ग़बन नहीं किया था और उसे इसका भ्रम-मात्र था; लेकिन ऐसी दशा में एक सच्चे आदमी का यह कर्तव्य था, कि वह गिरफ्तार हो जाने पर अपनी सफ़ाई देता। उसने सजा के भय से झूठी गवाही देकर पुलिस को क्यों धोखा दिया ? यह विचार करने की बात है।

अगर आप समझते हैं, कि उसने अनुचित काम किया, तो आप उसे अवश्य दण्ड देंगे।

अब अदालत के फैसला सुनाने की बारी आयी। सभी को रमा से सहानुभूति हो गयी थी, पर इसके साथ ही यह भी मानी हुई बात थी कि उसे सजा होगी। क्या सजा होगी, यही देखना था। लोग बड़ी उत्सुकता से फ़ैसला सुनने के लिए और सिमट गये, कुर्सियाँ और आगे खींच ली गयीं, और कनबतियाँ भी बन्द हो गयीं।

'मुआमला केवल यह है, कि एक युवक ने अपनी प्राण-रक्षा के लिए

पुलिस का आश्रय लिया और जब उसे मालूम हो गया कि जिस भय से वह पुलिस का आश्रय ले रहा है वह सर्वथा निर्मूल है, तो उसने अपना बयान वापस ले लिया। रमानाथ में अगर सत्यनिष्ठा होती, तो वह पुलिस का आश्रय ही क्यों लेता; लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि पुलिस ने उसे रक्षा का यह उपाय सुझाया और इस तरह से झूठी गवाही देने का प्रलोभन दिया। मैं यह नहीं मान सकता कि इस मुआमले में गवाही देने का प्रस्ताव स्वतः उसके मन में पैदा हो गया। उसे प्रलोभन दिया गया, जिसे उसने दण्ड-भय से स्वीकार कर लिया। उसे यह विश्वास दिलाया गया होगा, कि जिन लोगों के विरुद्ध उसे गवाही देने के लिये तैयार किया जा रहा था, वे वास्तव में अपराधी थे, क्योंकि रमानाथ में जहाँ दण्ड का भय है, वहाँ न्याय-भक्ति भी है। वह उन पेशेवर गवाहों में नहीं है, जो स्वार्थ के लिए निरपराधियों को फँसाने से भी नहीं हिचकते। अगर ऐसी बात न होती, तो वह अपनी पत्नी के आग्रह से बयान बदलने पर कभी राजी न होता। यह ठीक है कि पहली अदालत के बाद ही उसे मालूम हो गया था, कि उस पर ग़बन का कोई मुकदमा नहीं है और जज की अदालत में वह अपने बयान को वापस ले सकता था। उस वक्त उसने यह इच्छा प्रकट भी अवश्य की; पर पुलिस की धमकियों ने फिर उस पर विजय पाई। पुलिस का बदनामी से बचने के लिए इस अवसर पर उसे धमकियाँ देना स्वाभाविक है, क्योंकि पुलिस को मुलजिमों के अपराधी होने के विषय में कोई सन्देह न था। रमानाथ धमकियों में आ गया, यह उसकी दुर्बलता अवश्य है; पर परिस्थिति को देखते हुए क्षम्य है। इसलिए मैं रमानाथ को बरी करता हूँ।'

५१

चैत्र की शीतल, सुहावनी, स्फूर्तिमयी सन्ध्या, गंगा का तट, टेसुओं से लहलहाता हुआ ढाक का मैदान, बरगद का छायादार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गायें-भैंसे, कद्दू और लौकी की बेलों से लहराती हुई झोपड़ियाँ, न कहीं गर्द न गुबार, न शोर न गुल, सुख और शान्ति के लिए क्या इससे भी अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गंगा लाल, काले, नीले आवरण से चमकती हुई, मन्द स्वरों में गाती, कहीं लपकती, कहीं झिझकती, कहीं चपल, कहीं गम्भीर अनन्त अन्धकार की ओर चली जा रही है, जैसे बहुरंजित बालस्मृति

क्रीड़ा और विनोद की गोद में खेलती हुई, चिन्तामय, संघर्षमय, अंधकारमय भविष्य की ओर चली जा रही हो। देवी और रमा ने यहीं प्रयाग के समीप आकर आश्रय लिया है।

तीन साल गुजर गये हैं, देवीदीन ने जमीन ली, बाग़ लगाया, खेती जमाई, गाय-भैंसें खरीदीं और कर्मयोग में, अविरत उद्योग में, सुख, सन्तोष और शान्ति का अनुभव कर रहा है। उसके मुँह पर अब वह जर्दी, वह झुर्रियाँ नहीं हैं, बल्कि एक नई स्फूर्ति, एक नई कान्ति झलक रही है।

शाम हो गयी है, गायें, भैंसें हार से लौटीं। जग्गो ने उन्हें खूँटे से बाँधा और थोड़ा-थोड़ा भूसा लाकर उनके सामने डाल दिया। इतने में देवी और गोपी भी बैलगाड़ी पर डाँठ लादे हुए आ पहुँचे। दयानाथ ने बरगद के नीचे जमीन साफ़ कर रखी है। वहीं डाँठें उतारी गयीं। यही इस छोटी-सी बस्ती का खलिहान है। दयानाथ नौकरी से बरखास्त हो गये थे और अब देवी के असिस्टेंट हैं। उनको समाचार-पत्रों से अब भी वही प्रेम है, रोज कई पत्र आते हैं, और शाम को फुर्सत पाने के बाद मुंशीजी पत्रों को पढ़कर सुनाते और समझाते हैं। श्रोताओं में बहुधा आस-पास के गाँवों के दस-पाँच आदमी भी आ जाते हैं और रोज एक छोटी-मोटी सभा हो जाती है।

रमा को इस जीवन से इतना अनुराग हो गया है, कि अब शायद उसे थानेदारी ही नहीं, चुंगी की इंसपेक्टरी भी मिल जाय, तो शहर का नाम न ले। प्रातःकाल उठकर गंगा-स्नान करता है, फिर कुछ कसरत करके दूध पीता है और दिन निकलते-निकलते अपनी दवाओं का सन्दूक लेकर आ बैठता है। उसने वैद्यक की कई किताबें पढ़ ली हैं और छोटी-मोटी बीमारियों की दवा दे देता है। दस-पाँच मरीज रोज आ जाते हैं, और उसकी कीर्ति दिन दिन बढ़ती जाती है। इस काम से छुट्टी पाते ही वह अपने बगीचे में चला जाता है, वहाँ कुछ साग-भाजी भी लगी है, कुछ फल-फूलों के वृक्ष हैं और कुछ जड़ी-बूटियाँ हैं। अभी तो बाग से केवल तरकारी मिलती है; पर आशा है कि तीन-चार साल में नीबू, अमरूद, बेर, नारंगी, आम, केले, आँवले, कटहल, बेल आदि फलों की अच्छी आमदनी होने लगेगी।

देवी ने बैलों को गाड़ी से खोलकर खूँटे से बाँध दिया और दयानाथ से बोला—अभी भैया नहीं लौटे?

दयानाथ ने डाँठों को समेटते हुए कहा—अभी तो नहीं लौटे। मुझे तो अब इनके अच्छे होने की आशा नहीं है, जमाने का फेर है। कितने सुख से रहती थीं। गाड़ी थी, मोटर थी, बँगला था, दरजनों नौकर थे। अब यह हाल है। सामान सब मौजूद है, वकील साहब ने अच्छी सम्पत्ति छोड़ी थी; मगर भाई-भतीजों ने हड़प ली।

देवी०—भैया कहते थे, अदालत करतीं तो सब मिल जाता, पर कहती हैं, मैं झूठ अदालत में न बोलूँगी। औरत बड़े ऊँचे विचार की है।

सहसा रामेश्वरी एक छोटे-से शिशु को गोदी में देती हुई देवीदीन से बोली—भैया, जरा चलकर रतन को देखो, जाने कैसी हुई जाती है। जोहरा और बहू दोनों रो रही हैं। बच्चा जाने कहाँ रह गये?

देवीदीन ने दयानाथ के कहा—चलो लाला देखें।

रामेश्वरी बोली—यह जाकर क्या करेंगे, बीमार को देखकर इनकी नानी पहले ही मर जाती है।

देवीदीन ने रतन की कोठरी में जाकर देखा—रतन बाँस की एक खाट पर पड़ी थी। देह सूख गयी थी। वह सूर्यमुखी का-सा खिला हुआ चेहरा मुरझाकर पीला हो गया था। वह रङ्ग जिन्होंने चित्र को जीवन और स्पन्दन प्रदान कर रखा था, उड़ गये थे; केवल आकार शेष रह गया था। वह श्रवण-प्रिय प्राण-पद, विकास और आह्लाद में डूबा हुआ सङ्गीत मानो आकाश में विलीन हो गया था, केवल उसकी क्षीण उदास प्रतिध्वनि रह गयी थी। जोहरा उसके ऊपर झुकी उसे करुण, विवश, कातर, निराश तथा तृष्णामय नेत्रों से देख रही थी। आज साल-भर से उसने रतन की सेवा-शुश्रूषा में दिन को दिन और रात को रात न समझा था। रतन ने उसके साथ जो स्नेह किया था, उस अविश्वास और बहिष्कार के वातावरण में जिस खुले निःसंकोच भाव से उसके साथ बहनापा निभाया था, उसका एहसान वह किस तरह मानती। जो सहानुभूति उसे जालपा से भी न मिली, वह रतन ने प्रदान की। दुःख और परिश्रम ने दोनों को मिला दिया, दोनों की आत्माएँ संयुक्त हो गयीं। यह घनिष्ट स्नेह उसके लिए एक नया ही अनुभव था, जिसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। इस मैत्री में उसके वंचित हृदय ने पति-प्रेम और पुत्र-स्नेह दोनों ही पा लिया।

देवीदीन ने रतन के चेहरे की ओर सचिन्त नेत्रों से देखा, तब उसकी नाड़ी हाथ में लेकर पूछा—कितनी देर से नहीं बोलीं ?

जालपा ने आँखें पोंछकर कहा—अभी तो बोलती थीं। एकाएक आँखें ऊपर चढ़ गयीं और बेहोश हो गयीं। वैद्य जी को लेकर अभी तक नहीं आये?

देवीदीन ने कहा—इनकी दवा वैद्य के पास नहीं है !

यह कहकर उसने थोड़ी-सी राख ली; रतन के सिर पर हाथ फेरा, मुंह में बुदबूदाया और एक चुटकी राख उसके माथे पर लगा दी। तब पुकारा—रतन बेटी, आँखें खोलो !

रतन ने आँखें खोल दीं और इधर-उधर सकपकाई हुई आँखों से देखकर बोली—मेरी मोटर आई थी न ? कहाँ गया वह आदमी ? उससे कह दो थोड़ी देर के बाद लाये। जोहरा, आज मैं तुम्हें अपने बग़ीचे की सैर कराऊँगी। हम दोनों झूले पर बैठेंगी।

जोहरा फिर रोने लगी। जालपा भी अपने आँसुओं के वेग को न रोक सकी। रतन एक क्षण तक छत की ओर ताकती रही। फिर एकाएक जैसे उसकी स्मृति जाग उठी हो, वह लज्जित होकर एक उदास मुसकराहट के साथ बोली—मैं सपना देख रही थी दादा ?

लोहित आकाश पर कालिमा का पर्दा पड़ गया था। उसी वक्त रतन के जीवन पर मृत्यु ने परदा डाल दिया।

रमानाथ वैद्यजी को लेकर पहर-रात को लौटे, तो यहाँ मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। रतन की मृत्यु का शोक वह शोक न था, जिसमें आदमी हाय-हाय करता है, बल्कि वह शोक जिसमें हम मूक-रुदन करते हैं, जिसकी याद कभी नहीं भूलती, जिसका बोझ दिल से कभी नहीं उतरता।

रतन के बाद जोहरा अकेली हो गयी। दोनों साथ साथ सोती थीं, बैठती थीं, साथ काम करती थीं। अब अकेली जोहरा का जी किसी काम में न लगता था। कभी नदी-तट पर जाकर रतन की याद करती और रोती, कभी उन आम के पौधों के पास जाकर घण्टों खड़ी रहती, जिन्हें उन दोनों ने लगाया था, मानो उसका सुहाग लुट गया हो। जालपा को बच्चे के पालन और भोजन बनाने से इतना अवकाश न मिलता था; कि उसके

साथ बहुत उठती-बैठती; और बैठती भी तो रतन की चर्चा होने लगती और रोने लगती।

भादों का महीना था। पृथ्वी और जल में रण छिड़ा हुआ था। जल की सेनाएँ वायुयान पर चढ़कर आकाश से जल-शरों की वर्षा कर रही थीं। उसकी थल सेनाओं ने पृथ्वी पर उत्पात मचा रखा था। गंगा गाँवों और कस्बों को निगल रही थी। गाँव-के-गाँव बहते चले जाते थे। जोहरा नदी के तट पर बाढ़ का तमाशा देखने लगी। वह कृशांगी गंगा इतनी विशाल हो सकती है, इसका वह अनुभव भी न कर सकती थी। लहरें उन्मत्त होकर गरजतीं, मुँह से फेन निकालती हाथों उछल रही थीं, चतुर फिकैतों की तरह पैंतरे बदल रही थीं। कभी एक कदम आगे आतीं, फिर पीछे लौट पड़तीं और चक्कर खा फिर आगे को लपकतीं। कहीं कोई झोपड़ा डगमगाता तेजी से बहा जा रहा था, मानों कोई शराबी दौड़ा जाता है; कहीं कोई वृक्ष डाल-पत्तों समेत डूबता-उतराता किसी पाषाण-युग के जन्तु की भाँति तैरता चला जाता था। गायें और भैंसें खाट-तख्ते मानो तिलस्मी चित्रों की भाँति आँखों के सामने से निकल जाते थे।

सहसा एक किश्ती नजर आई। उस पर कई स्त्री-पुरुष बैठे थे। बैठे क्या थे, चिमटे हुए थे। किश्ती कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती। उससे यही मालूम होता था, कि अब उलटी तब उलटी; पर वाह रे साहस! सब अभी भी 'गंगा माता की जय!' पुकारते जाते थे। स्त्रियाँ अब भी गंगा के यश के गीत गाती थीं। जीवन और मृत्यु का ऐसा संघर्ष किसने देखा होगा? दोनों तरफ़ के आदमी किनारे खड़े, एक तनाव की दशा में हृदय को दबाये खड़े थे। जब किश्ती करवट लेती, तो लोगों के दिल उछल-उछलकर ओठों तक आ जाते। रस्सियाँ फेंकने की कोशिश की जाती; पर रस्सी बीच ही में गिर पड़ती थी। एकाएक एक बार किश्ती उलट ही गयी। सभी प्राणी लहरों में समा गये। एक क्षण कई स्त्री-पुरुष डूबते उतराते दिखायी दिये, फिर निगाहों से ओझल हो गये। केवल एक उजली-सी चीज किनारे की ओर चली आ रही थी। वह एक रेले में तट से कोई बीस गज तक आ गयी। समीप से मालूम हुआ, स्त्री है। जोहरा, जालपा और रमा—तीनों खड़े थे। स्त्री की गोद में एक बच्चा भी नजर आता था। दोनों को निकाल लाने के लिये

तीनों विकल हो उठे; पर बीस गज तैरकर उस तरफ जाना आसान न था। फिर रमा तैरने में बहुत कुशल न था। कहीं लहरों के जोर में पाँव उखड़ जायँ, तो फिर बंगाल की खाड़ी के सिवा और कहीं ठिकाना न लगे।

जोहरा ने कहा—मैं जाती हूँ।

रमा ने लजाते हुए कहा—जाने को मैं तैयार हूँ; लेकिन वहाँ तक पहुँच भी सकूँगा, इसमें सन्देह है। कितना तोड़ है!

जोहरा ने एक कदम पानी में रखकर कहा—नहीं, मैं अभी निकाले लाती हूँ।

वह कमर तक पानी में चली गयी। रमा ने सशंक होकर कहा—क्यों नाहक जान देने जाती हो? वहाँ शायद एक गड्ढा है। मैं तो जा ही रहा था।

जोहरा ने हाथों से मना करते हुए कहा—नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी क़सम तुम न आना। मैं अभी लिये आती हूँ। मुझे तैरना आता है।

जालपा ने कहा—लाश होगी और क्या?

रमा०—शायद अभी जान हो।

जालपा—अच्छा! जोहरा तो तैर भी लेती है। जभी हिम्मत हुई।

रमा ने जोहरा की ओर चिन्तित आँखों से देखते हुए कहा—हाँ, कुछ जानती तो है। ईश्वर करे लौट आये। मुझे अपनी कायरता पर लज्जा आ रही है।

जालपा ने बेहयाई से कहा—इसमें लज्जा की कौन बात है? मिरी लाश के लिए जान को जोखिम में डालने से फायदा? जीती होती तो मैं खुद तुमसे कहती जाकर निकाल लाओ।

रमा ने आत्म-धिक्कार के भाव से कहा—यहाँ से कौन जान सकता है, जान है या नहीं? सचमुच, बाल-बच्चों वाला आदमी नामर्द हो जाता है। मैं खड़ा रहा और जोहरा चली गयी।

सहसा एक जोर की लहर आयी और लाश को फिर धारा में बहा ले गयी। जोहरा लाश के पास पहुँच चुकी थी। उसे पकड़कर खींचना ही चाहती थी, कि इस लहर ने उसे दूर कर दिया। जोहरा खुद उसके जोर में आ गयी और प्रवाह की ओर कई हाथ वह गयी। वह फिर सँभली; पर एक दूसरी लहर ने उसे ढकेल दिया।

रमा व्यग्र होकर पानी में कूद पड़ा और जोर-जोर से पुकारने लगा—जोहरा जोहरा ! मैं आता हूँ ।

मगर जोहरा में अब लहरों से लड़ने की शक्ति न थी । वह वेग से लाश के साथ ही धारा में बही जा रही थी । उसके हाथ-पाँव हिलना बन्द हो गये थे ।

एकाएक ऐसा रेला आया कि दोनों ही उसमें समा गयीं । एक मिनट के बाद जोहरा के काले बाल नज़र आये । केवल एक क्षण तक ! यही अन्तिम झलक थी । फिर वह नजर न आयी ।

रमा कोई सौ गज तक जोरों के साथ हाथ-पाँव मारता हुआ गया लेकिन इतनी ही दूर में लहरों के वेग के कारण उसका दम फूल गया । अब आगे जाय कहाँ ? जोहरा का तो कहीं पता भी न था । वही आखिरी झलक आँखों के सामने थी ।

किनारे पर जालपा खड़ी हाय-हाय कर रही थी । यहाँ तक कि वह भी पानी में कूद पड़ी । रमा अब आगे न बढ़ सका । एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे । आगे की शक्ति में अनुराग था, निराशा थी, बलिदान था पीछे की शक्ति में कर्तव्य था, स्नेह था, बन्धन था ! बन्धन ने रोक लिया । वह लौट पड़ा ।

कई मिनट तक जालपा और रमा घुटनों तक पानी में खड़े उसी तरफ़ ताकते रहे । रमा की जबान आत्म-धिक्कार ने बन्द कर रखी थी, जालपा की शोक और लज्जा ने ।

आखिर रमा ने कहा—पानी में क्यों खड़ी हो ? सर्दी हो जायगी ।

जालपा पानी से निकलकर तट पर खड़ी हो गयी, पर मुँह से कुछ न बोली—मृत्यु के इस आघात ने उसे पराभूत कर दिया था । जीवन कितना अस्थिर है, यह घटना आज दूसरी बार उसकी आँखों के सामने चरितार्थ हुई । रतन के मरने की पहले से आशंका थी । मालूम था कि वह थोड़े दिनों की मेहमान है; मगर ज़ोहरा की मौत तो वज्रपात के समान थी ! अभी आध घड़ी पहले तीनों आदमी प्रसन्नचित्त, जलक्रीड़ा देखने चले थे । किसे शंका थी, मृत्यु की ऐसी भीषण क्रीड़ा उनको देखनी पड़ेगी ?

इन चार सालों में ज़ोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग और सरल

स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। अपने अतीत को मिटाने के लिए, अपने पिछले दागों को धो डालने के लिए, उसके पास इसके सिवा और क्या साधन था। उसकी सारी कामनाएँ; सारी वासनाएँ सेवा में लीन हो गयीं। कलकत्ते में वह विलास और मनोरंजन की वस्तु थी। शायद कोई भला आदमी उसे अपने घर में न घुसने देता। यहाँ सभी उसके साथ अपने प्राणी का-सा व्यवहार करते थे। दयानाथ और रामेश्वरी को यह कहकर शान्त कर दिया गया था, कि वह देवीदीन की विधवा बहू है। जोहरा ने कलकत्ते में जालपा से केवल उसके साथ रहने की भिक्षा माँगी थी। उसे अपने जीवन से घृणा हो गयी थी। जालपा की विश्वासमय उदारता ने उसे आत्मशुद्धि के पथ पर डाल दिया। रतन का पवित्र निष्काम जीवन उसे प्रोत्साहित किया करता था।

थोड़ी देर बाद रमा भी पानी से निकले और शोक में डूबे हुए घर की ओर चले। मगर अक्सर वह और जालपा नदी के किनारे आ बैठते और जहाँ जोहरा डूबी थी उस तरफ घण्टों देखा करते। कई दिनों तक उन्हें यह आशा बनी रही कि शायद जोहरा बच गयी हो और किसी तरफ़ से चली आये; लेकिन धीरे-धीरे यह क्षीण आशा शोक के रूप में खो गयी। मगर अभी तक जोहरा की सूरत उनकी आँखों के सामने फिरा करती है। उसके लगाये हुए पौधे, उसकी पाली हुई बिल्ली, उसके हाथों के सिले हुए कपड़े, उसका कमरा—यह सब उसकी स्मृति के चिह्न हैं और उनके पास जाकर रमा की आँखों के सामने जोहरा की तस्वीर खड़ी हो जाती है।

★